हेमू और उनका युग

लेखक

मोती लाल मार्गव, एम० ए० बी० टिल

विद्यालय उप-निरीक्षक शिक्षा सचालक कार्यालय (शिविर) तथा भूतपूर्व

रिसर्च अधिकारी स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति

सचिवालय—उ० प्र० सरकार

१९६०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य—५)

सजिल्द—६)

मुद्रक—नव भारत प्रेस भादान महल रोड, लखनऊ।

मध्यकालीन भारत के
अमर शहीदों
को

पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशन कराने के सम्बन्ध में मुझे जो प्रेरणा व सहायता पं० ज्वाला प्रसाद जी प्रयाग से मिली उसे भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन उन्हीं के अनवरत प्रयत्न का फल है।

प्रकाशकों व मुद्रकों में इतनी शीघ्रता से पुस्तक मुद्रित करके पाठकों के हाथों में पहुँचाना यह भी प्रशंसनीय है।

१४—१—१९६०

मो० ला० भार्गव

मध्यकालीन भारत के
अमर शहीदों
को

प्रस्तावना

मुसलमान शासकों से रचनात्मक सहयोग करनेवाले हिन्दुओं में हेम राज। हेमू। सबसे योग्य और अग्रणी कहा जा सकता है। उसका जन्म एक साधारण धूसर (धूसर) वैश्यवंश गार्हस्थ्य के परिवार में हुआ जिनके पास न तो विशेष धन न राज और न सामन्ती बल था। एक साधारण व्यापारी से उसने जीवन आरम्भ किया और अपनी सैनिकोचित प्रतिभा उत्साह उद्यम एवं योग्यता से उसने अपनी प्रबन्ध शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे सूरी वंश के इस्लाम शाह का और विशेष रूप से उसके चाचाजाद भाई एवं साले मुबारिज खाँ का ध्यान आकर्षित हुआ। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद जब मुबारिज खाँ गद्दी के सिंहासन पर बैठा तब उसने हेमराज को आमंत्रित कर पाकशाला का निरीक्षक नियुक्त किया जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि यह सुल्तान का विश्वास पात्र था।

मुबारिज में यह योग्यता न था जिससे वह दुर्दमनीय अफगान सरदारों को अपने वश में रख सकता। सरदारों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सुल्तान और उसकी सल्तनत को विनष्ट कर देंगे। ऐसी भयंकर विपत्ति में सुल्तान का हेमराज ने आश्वासन दिया। विश्वासपात्र समझकर सुल्तान ने हेमराज को अपना मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। सल्तनत के इतिहास में हेमराज ही एकमात्र हिन्दू था जिसको यह महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने का गौरव प्राप्त हुआ। हेमराज को अपनी प्रतिभा और प्रबन्ध शक्ति का पूर्ण विकास पाने का अवसर मिला। सबसे विलक्षण योग्यता उसने सेनापतित्व में प्रदर्शित की। सैन्य संगठन शासन तथा संचालन में उसने जो दक्षता दिखाई वह अद्वितीय थी। उसकी समता मुगल साम्राज्य का कोई हिन्दू सेनापति अथवा मुसलमान अमीरुल उमरा भी संभवतः न कर सका। उसने बाईस युद्ध किए और प्रत्येक में विजय श्री उसको प्राप्त हुई। विद्रोही अफगान सरदार उसमें जितना भय खाते थे उतना ही उसके अफगान अनुयायी उससे अनुरक्त थे। अपने सहभागी अफगान सरदारों और सैनिकों में उसने जो उत्साह साहस और विश्वास उत्पन्न कर दिया था वैसा न तो कभी उसके पहले और न बाद को मुसलमान शासनकाल के इतिहास में देखने में आया। हेमराज से हुमायूँ और उसके उद्भट सेनानायक भी बहुत घबराते थे। यदि संयोगवश

विषय-सूची

		पृष्ठ
	प्रस्तावना	i
	दो शब्द	ii
	विषय-प्रवेश	१
१	जन्म व पितृ-परंपरा	११
२	अफगानों का उत्थान तथा हेमू	२४
३	हेमू का उत्थान	४०
४	हेमू की विजय	४७
५	हुमायूँ का अल्पकालीन शासन तथा हेमू	४८
६	दिल्ली पर आक्रमण तथा सिंहासनारोहण	७३
७	पानीपत की दूसरी लड़ाई	८४
८	हेमू का शहीद होना	९६
९	परिणाम व प्रतिक्रिया	१०३
१०	दूसरों और अफगानों से मुगलों का राजीनामा	११३
	उपसंहार	१२१
	परिशिष्ट—क	१२५
	परिशिष्ट—ख	१२८

चित्र-सूची

		पृष्ठ के सामने
१	हेमू वीर	
२	हेमू का जन्म स्थान (अलवर का मानचित्र)	१०
३	ग्वालियर दुर्ग	३६
४	चुनार दुर्ग	५०
५	दिल्ली विजय	७३
६	हेमू का शिविर	७६

प्रस्तावना

मुसलमान शासकों से रचनात्मक सहयोग करनेवाले हिन्दुओं में हेम राज । हेमू । सबसे श्रेष्ठ और अग्रणी कहा जा सकता है । उसका जन्म एक साधारण कुमार (कुमर) वैश्य परिवार में हुआ जिसके पास न तो विशेष धन न राज और न सामन्ती बल था । एक साधारण व्यापारी से उसने दीवान आरम्भ किया और अपनी असाधारण प्रतिभा उत्साह उद्यम एवं सफलता से उसने अपनी प्रबल शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे पूरी बंग के इस्लाम शाह का और विशेष रूप से उसके आशावान भाई एवं भावी मुबारिज खाँ का ध्यान आकर्षित हुआ । इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद जब मुबारिज खाँ देहली के सिंहासन पर बैठा तब उसने हेमराज को आमन्त्रित कर पाकशाला का निरीक्षक नियुक्त किया जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि वह सुल्तान का विश्वस्त पात्र था ।

मुबारिज में वह योग्यता न था जिससे वह दुर्दमनीय अफगान सरदारों को अपने वश में रख सकता । सरदारों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया । ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सुल्तान और उसकी सल्तनत का विनाश कर देंगे । इसी भयंकर स्थिति में सुल्तान को हेमराज में आशावान दिखा । विश्वासपात्र समझकर सुल्तान ने हेमराज को अपना मुख्यमन्त्री नियुक्त कर दिया । सम्भवतः के इतिहास में हेमराज ही एकमात्र हिन्दू था जिसको यह महत्वपूर्ण स्थान मिलने का गौरव प्राप्त हुआ । हेमराज की असाधारण प्रतिभा और प्रबल शक्ति का पूर्ण विकास पानीपत का मैदान पर किया । सबसे विश्वस्त सेनापति उसने मेवात में प्रदर्शित की । पाँच सौ पठान सरदार तथा सोलहवें में उसने जो दक्षता दिखाई वह अविस्मरणीय थी । उसकी समस्त सुदृढ़ व्यवस्था का कोई हिन्दू सेनापति अथवा मुसलमान अमीर उनका भी सम्पन्न न कर सका । उसने सारे पुल किए और प्रत्येक में विजय श्री उसको प्राप्त हुई । विश्वासी सरदार उसके विरुद्ध सब कुछ थे उनका ही उसके अधीनस्थ सहायक उसके अनुचर थे । अतः महत्वाकांक्षी अफगान सरदारों और सैनिकों में उसका उत्साह, साहस और विश्वास उत्पन्न कर दिया था वैसा न कर सकी उसके दास और न कर की मुसलमान सामन्तवाद के इतिहास में केवल वे ही थे । हेमराज के हमेशा और उसके उद्दण्ड सेनानायक भी बहुत असन्तुष्ट थे । [illegible]

बाण से आहत होकर वह मूर्छित न हो जाता तो बहुत संभव था कि पानीपत के दूसरे युद्ध में उसी को विजय श्री प्राप्त होती जिससे कि तत्कालीन इतिहास की कुछ दूसरी गतिविधि हो जाती। आश्चर्य-सा लगता है कि एक व्यक्ति जो न तो हृष्ट-पुष्ट न लम्बा चौड़ा न सवारी-शिकारी अथवा व्यायाम का व्यसनी उतना शूरवीर, साहसी पराक्रमी और सैन्य संचालक कैसे हो गया।

हेमराज जैसे अद्वितीय व्यक्ति के जीवन चरित की इतिहास लेखकों ने अभी तक उपेक्षा ही की। इसका कारण संभवतः यह होगा कि उसके संबंध में यथेष्ट सामग्री का अभी तक अभाव है और जो कुछ सामग्री प्राप्त है वह भी इधर-उधर बिखरी-सी रही। हर्ष का विषय है कि डा० मोतीलाल भार्गव जी ने बिखरी तथा अद्यावधि प्राप्त सामग्री का केवल संकलन ही नहीं वरन् उसको पृष्ठ भूमि के साथ पाठकों के सामने उपस्थित करने का स्तुत्य कार्य भी किया है। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी प्रत्येक धारणा सर्व स्वीकृत की जाय। हेमू का धर्म अथवा उसका देहली का सिंहासन पर आरूढ़ होना आदि ऐसे कुछ विषय हैं जिन पर पाठकों को कुछ शंकाएँ उत्पन्न हों। सब शंकाओं का अन्तिम निर्णय तो दुरसाध्य है किन्तु यह सम्भव है कि उसमें इतिहास प्रेमी तत्संबंधी सामग्री की खोज और ऊहापोह में प्रवृत्त हो सकें। इतना कुतूहल और ऐसी प्रेरणा भी यदि कुछ अध्यवसायी पाठकों में उत्पन्न हो जाय तो लेखक का प्रयत्न सफल मानना चाहिए। डा० भार्गव जी ने जो सामग्री एकत्रित की है और जिस प्रकार से उसको प्रस्तुत किया है उसके लिए इतिहास के प्रेमी उनके आभारी रहेंगे। आशा है कि इतिहास के पाठक पुस्तक का यथोचित मान करेंगे और हिन्दी प्रेमियों का यह गर्व हो सकेगा कि हेमराज का जीवन-चरित्र सबसे पहले हिन्दी भाषा में ही प्रकाशित हुआ। दोनों भावों से प्रेरित होकर मैं लेखक को सहर्ष बधाई का पात्र समझता हूँ।

लखनऊ
७-३-६०

रामप्रसाद त्रिपाठी

दो शब्द

मध्यकालीन भारत के विस्मृत प्रतिभाशाली सेना-नायक हेमू के विषय में अन्वेषण की ओर अनेक लेखक गत सौ वर्षों से अग्रसर व प्रयत्नशील रहे। परन्तु पशाकथा साहित्य के अतिरिक्त समस्त उपलब्ध सामग्री का संकलन एक स्थान पर न हो पाया। स्वर्गीय हेमू के वंशजों में से साधू धर्म मित्र कानीड निवासी एवं मेजर मनोहर लाल जी ने इस ओर सराहनीय कार्य किया। इधर कुछ वर्षों से उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीयुत कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी जी ने हेमू विषयक अन्वेषण की ओर पुनः ध्यान दिलाया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना से इस कार्य को सम्पन्न करने का परामर्श किया। डा० सक्सेना के आदेशानुसार तथा प्रयाग निवासी पं० श्यामा प्रसाद भार्गव के आग्रह पर मैंने यह भार ग्रहण किया।

गत चार वर्षों के सतत परिश्रम के उपरान्त इतनी सामग्री संकलित हो सकी कि उसको पुस्तक का रूप दिया जा सके। इस कार्य में मुझे न्यायमूर्ति पं विष्णु दत्त भार्गव व श्रीयुत कृष्ण सहाय जी इलाहाबाद व श्री राजेन्द्र बहादुर रिसर्च एसिसटेन्ट स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति लखनऊ से पर्याप्त सहायता मिली। उनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

संकलित सामग्री का उपयोग करने व उसका ऐतिहासिक पृष्ठि भूमि में मूल्यांकन करने में मुझे श्रीयुत के० एम मुंशी डा० राम प्रसाद त्रिपाठी प्रसिद्ध इतिहास कार, अध्यक्ष हिन्दी समिति लखनऊ, व भूतपूर्व उपकुलपति सागर विश्वविद्यालय श्रीयुत कृष्णदयाल भार्गव डायरेक्टर नेशनल आरकाईव्स नयी दिल्ली तथा डा सक्सेना से समय समय पर जो परामर्श मिल उनसे अन्वेषण का कार्य सरल होता गया। यह सब धन्यवाद के पात्र हैं। डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना ने तो अपना अमूल्य समय देकर पाण्डुलिपि को आद्योपान्त देखा व उसमें संशोधन भी किये इसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ। हिन्दी संस्करण प्रस्तुत करने में मेरे लघु भ्राता जवाहर लाल खचिदानन्द उ० प्र० लखनऊ ने जो कार्य किया व सहायता की वह सराहनीय है।

पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशन कराने के सम्बन्ध में मुझे जो प्रेरणा व सहायता व उल्लास प्रसाद की प्रयास से मिली उसे भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन उन्हीं के अनवरत प्रयत्न का फल है।

प्रकाशकों व मुद्रकों ने इतनी शीघ्रता से पुस्तक मुद्रित कराके पाठकों के हाथों में पहुँचाया यह भी प्रशंसनीय है।

४—१—१९६०

मो० ला० माथुर

VEER HEMU

From an old portrait preserved by Hemu's descendents at Rewari

विषय प्रवेश

भारतीय इतिहास का कौन ऐसा विद्यार्थी होगा जो हेमू व अकबर के नाम से परिचित न हो। परन्तु अभी तक किसी भी समकालीन अथवा आधुनिक इतिहासकार ने मुगल सम्राट अकबर के मुख्य प्रतिद्वन्द्वी हेमू अथवा हेम विक्रमादित्य के विषय में उपलब्ध सामग्री के संकलन करने का प्रयास नहीं किया। जिन इतिहासकारों ने हेमू के विषय में लिखा भी तो बड़ी ही बुरा कर है। इसके विपरीत समकालीन वर्णनकर्ताओं ने हेमू के संबंध में बड़ी अत्यन्त प्रशंसात्मक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण बातें लिखी हैं कि ऐतिहासिक तथ्य विमुख म हो गए हैं। इन्हीं वर्णनों के आधार पर मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहास कारों ने हेमू की जीवनी तथा उसके कार्यों पर अपना मत प्रकट किया है कार्य हेमू की बंगालकी तथा विजयपरम्परा के विषय में अपना अज्ञान प्रकट करता है तो कोई अपनी अल्प योग्यता प्रदर्शित करते हुए हेमू को 'बकराम सिंह कर अपना वर्णन समाप्त करता है कोई उसको एक बणिक का कार्य करते हुए दिल्ली की गलियों में घूमने वाला एक साधारण व्यक्ति समझता है। परन्तु वास्तव १६ वीं शताब्दी का अद्वितीय व आश्चर्यजनक प्रतिभाशाली सेनानायक तथा हिन्दू व अफगानों की अदम्य सत्ता का संगठन कर्ता इन अपना का इति हासकारों का अज्ञानतावश शिकार बन गया है क्योंकि ऐतिहासिक वास्तविकता का हनन कहीं निम्न है।

पानीपत के तीन युद्ध —

हेमू विषयक —समस्त सामग्री में सबसे अधिक वर्णन पानीपत के द्वितीय युद्ध का मिलता है। परन्तु इस द्वितीय युद्ध की महानता तथा जटिलता का समझने के लिए पानीपत के तीनों युद्धों का ज्ञान आवश्यक है। प्रमुखता व महत्व में पानीपत के तीनों ही युद्ध अद्वितीय हैं। पानीपत के प्रथम युद्ध में १५२६ ई० में भारत में तैमूर वंशीय मध्य एशिया निवासी मुगलों का आक्रमण हुआ जिसको अफगानों ने रोकने का प्रयत्न किया। सन १५२६ ई० में मुगलों को भारत से बाहर निकल जाने से हेमू की आकस्मिक मृत्यु ने बचाया। सभी प्रकार १५५६ ई० में पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों तथा मुगलों को विदेशी आक्रमणकर्ता ने पराजित किया। तीनों बार रणभूमि का चुनाव आकस्मिक था अथवा जानबूझकर किया गया यह कहना कठिन है परन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि तीनों बार उस रणभूमि में विजय-श्री विदेशियों के हाथ में रही।

पानीपत के तीनों ऐतिहासिक युद्धों की प्रकृति और स्वरूप प्रकट करते हैं कि संघर्ष में, एक ओर भारतियों तथा दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारी के मध्य एक सीधे युद्ध का आकार धारण किया। भारतियों का तात्पर्य हिन्दू व मुसलमानों दोनों से है। प्रथम दो युद्धों में अफगान भारतीय पक्ष में लड़े तृतीय में विदेश से आए हुए मुगलों ने अपने भारतीयकरण के पश्चात मराठा से मिलकर अहमद शाह अब्दाली से युद्ध किया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—

उपरोक्त दृष्टिकोण को सामने रखते हुए हेमू तथा मुगलों के मध्य हुआ पानीपत का द्वितीय युद्ध और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उसका वास्तविक स्वरूप असत्य कथनों के मध्य दृष्टि से ओझल सा हो गया है। सन १५५६ ई में हेमू का यथार्थ कार्य भाग अब भी रहस्यमय है और आकस्मिक पाठक को उसके उज्ज्वल उत्थान और वीरतापूर्ण संघर्ष का संकेत मात्र मिलता है। परन्तु जैसे जैसे वर्णन सम्मुख आते हैं हेमू व अफगानों के पारस्परिक सम्बन्ध का आभास मिलता है। जिन विशेष परिस्थितियों के कारण हेमू २२ युद्धों का विजेता हुआ तथा दिल्ली जीत कर सम्राट बना उनकी केवल कल्पना ही हो सकती है। राजपूतों व अफगानों का हेमू को किस प्रकार इतना सहयोग प्राप्त था यह उसकी महानता का द्योतक है। मुगलों के प्रतिद्वन्द्वी सैनिकों में केवल एक ध्येय प्रधान था कि किसी प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों को भारत वर्ष से निकाल दिया जाए। हिन्दुओं में यह भावना होना स्वाभाविक ही थी परन्तु शेरशाह के समय से ही अफगानों में भी यह भावना ओत-प्रोत थी। १५५६ ई में अकबर की विजय के उपरान्त भी मुगलों को अफगानों से लगभग २ वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। हेमू व अन्य अफगान सेना-नायकों में आपसी वैमनस्यता व ईर्ष्या की कथाएं कल्पित ही जान पड़ती हैं क्योंकि द्वितीय पानीपत के पश्चात् भी अदली के बुसाम तथा हेमू के सेना-नायक अफगान मुगलों से संघर्ष करते रहे जैसे हाजी खां मेवाती तथा संग्राम खां।

प्रथम प्रयास—

ऐसे फुटकर वर्णनों के आधार पर हेमू की वास्तविक महत्ता को समझना समस्त उपलब्ध सामग्री का एक बार एकत्रीकरण तथा अध्ययन किए बिना कठिन जान पड़ता है। इसलिए प्रथम प्रयास में समकालीन तथा मध्यकालीन समस्त वृत्तान्त लेखकों के उद्धरणों का संकलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसका मुख्य ध्येय यह है कि एक बार सब सामग्री संकलित हो जाने से जो हेमू की जीवनी व कृतियों का आभास मिलेगा उस पर आगे गवेषणा हो सकेगी। अस्तु ऐतिहासिक तथ्य संकलन में यह प्रथम पग है, अन्तिम नहीं।

...मभी खोज—

इस पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री निम्नलिखित स्रोतों से संग्रही है—

१—समकालीन इतिहासकारों के फारसी इतिहासों का अनुवाद।

२—अकबर के विविध इतिहासों के अनुवाद।

३—अन्य विविध इतिहासकारों जैसे तथा विभिन्न आधारभूत।

४—उपाख्यानों सम्प्रदाय की हिन्दी में मुद्रित हस्तलिखित पुस्तक अमरूप रसिक यात्रा का हो प्रतिया।

५—लेखों के संग्रह द्वारा प्रदत्त पत्रकार सामग्री।

फारसी हस्तलेखों के अंग्रेजी अनुवाद—

सबसे प्रमुख समकालीन वृत्तान्त जो हमें और उसके युग के विषय में सामग्री उपलब्ध कराते हैं अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल द्वारा दिए गए हैं। उसको ये सब सुविधाएं प्राप्त थीं जो एक पदाधिकारी अभिभवन-रक्षक को प्राप्त हो सकती थीं। उसने प्रत्यक्ष परिवार में प्राप्त न अवस्था में और राज्य के संकटों में सामग्री प्राप्त की। वह स्वयं कहता है—मैंने बुद्धिमान सत्यवादी वृद्ध पुरुषों तथा तीव्र मस्तिष्क वाले एवं उचित काम करने वाले मुखरा होने की अन्वेषणशील की और उनके कथनों का सिलसिलेवार कर लिया। हों अपनी टिप्पणियों और स्मरण-पत्रों की प्रतिलिपियां बनाएं और उनको सरकार में प्रस्तुत करें। उसने मध्यकालीन भारत के विषय में सूक्ष्मतम विवरण दिया है। उसकी इतिहासों मौलिकता एवं ऐतिहासिक महत्व में अनन्य कोटी है। उसकी दो स्मरणीय कृतियां हैं—(१) अकबर नामा जो एक• अकबर के विधि-विधान अनुवादित है और (२) आइन-ए-अकबरी अर्थात् अकबर के शासन जिसका अनुवाद ब्लाकमैन तथा जैरेट द्वारा तीन खण्डों में किया गया है। काम की दो अन्य प्रमुख कृतियां हैं—शाहजादा अकबरी (निजामुद्दीन द्वारा अबुल फजल द्वारा छोड़ गए अधिकृत कार्यों के अतिरिक्त अकबर के शासन की मुन्तखाब-उ-लवारीख। प्रथम का अनुवाद बा• ड द्वारा तथा दूसरी का रैन्किन व साथ साथ द्वारा नाथा में किया गया है।

अबुल फजल की कृति का मूल्यांकन करते हुए विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा है—"अबुल फजल की किताब में ऐतिहासिक विवरण कठिन एवं अलंकारमय बनने के रूप में छिप गया है और अकबर नामक का परवाहीन प्रशंसक—अकबर कभी-कभी सत्य को छिपाता है, या कभी-कभी जानबूझ कर उसे भी

'आन बूझकर सत्य का उलट देने' के उसने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—(१) अकबर की जन्म तिथि को उसके नामकरण का वर्णन। (२) मनीरगढ़ पर अधिकार होने का वर्णन। इसके अतिरिक्त जहाँ तक हेमू का समायोजन है उसकी उत्पत्ति विषयक विवरण एक ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर वृत्तान्तकारों के राजनैतिक पक्षपात और पूर्व पक्षी ढंग का विम्दर्शन कराते हैं। उसके द्वारा किये गए हेमू की मृत्यु का वर्णन का लड़न जहाँगीर सदृश लेखक ने अपने सर्वाधिक अविच्छिन्न स्मृति लेखा म किया है। जहाँ तक तिथि-निर्धारण का सम्बन्ध है समकालीन उपलब्ध अभिलेखों म केवल अबुल फजल का अभिलेख अविच्छिन्न है लेकिन कुछ स्थान पर तिथियाँ पूर्णत संदेह से मुक्त नहीं हैं। हेमू के उच्चतम उत्थान से सम्बद्ध सबसे प्रमुख घटना उसका दिल्ली पर अधिकार है जो ६ अक्तूबर १५५६ ई को किया गया कहा जाता है और पानीपत का युद्ध ५ नवम्बर १५५६ ई को। इस प्रकार हेमू ने केवल २९ दिन शासन किया और तारखी अय ना २६ जनवरी १५५६ ई से ६ अक्तूबर १५५६ ई० अर्थात लगभग ९ मास तक दिल्ली का गवर्नर था। आश्चर्य है कि इस लम्बी अवधि में सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी अकबर कालानौर से दिल्ली न आ सका। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् के अबुल फजल द्वारा दिए गए विवरण इतने विच्छिन्न हैं तथा २९ दिन के विवरण इतने असंख्य हैं कि दिल्ली पर हेमू के अधिकार तथा उसके सिंहासनारूढ़ होने की तीन तिथियों के सम्बन्ध म एक उचित संदेह उत्पन्न होता है। कहा जाता है कि हेमू न सिक्के चढ़वाए थे पर प्रकाश म अभी कोई नहीं आया। यदि एक सिक्का भी उपलब्ध हो जाए तो वह न केवल १६ वी शताब्दी के प्रख्यात वीर और उसके दिल्ली के शासन पर वरन् अकबर के दरबारी इतिहासकार के सत्य और यथार्थता पर प्रकाश डाल सकेगा।

विन्सेंट स्मिथ लिखता है— 'फिर भी गंभीर और प्रत्यक्ष दोषों के होते हुए भी अकबरनामा' अकबर के शासन के इतिहास की नींव के रूप म माना जाना चाहिए। इसकी तिथि-निर्धारण निजामुद्दीन और बदाऊनी द्वारा लिखित प्रतिद्वंदी पुस्तकों से अधिक सही और विवरण पूर्ण है और यह उनकी अपेक्षा बाद की तिथि तक की कथा का वर्णन करता है।" यह उच्चतम प्रशंसा का पात्र है जैसा कि स्मिथ आगे चलकर कहता है— 'यूरोप तक म आधुनिक समय युग तक इस प्रकार का अविच्छिन्न संग्रह पाना कठिन होगा ...'। अकबर पर अल-बदायूनी की इति अधिकतर निजामुद्दीन की तबाकात-ए अकबरी पर आधारित है जिसका भारतीय मध्यकालीन इतिहासकारों म एक ऊँचा स्थान है। वह अकबर की बहुत आलोचना करता है यहाँ तक कि जहाँगीर के शासनारूढ़ होने तक उसकी इति का मुख रखना पड़ा। लेकिन वह हेमू के

प्रति उतना ही आलोचनात्मक और सावधानीपूर्ण है जितना अबुल फजल, अतएव उसकी कृति में हेमू के जीवन वृत्तान्त पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता है। केवल उससे हेमू के तथा अदेली के उन अफगान दासों के जो १५५६ ई० में हेमू की मृत्यु के उपरांत भी अकबर से संघर्ष करते रहे थे विषय में कुछ विवरण प्राप्त हो जाते हैं।

तबकात-ए-अकबरी अथवा अकबर-शाही जो तारीख-ए-निजामी के नाम से प्रसिद्ध है अकबर के शासनकाल के प्रथम ३९ वर्षों का (अर्थात् १५९३-९४ ई० तक का) विवरण देती है। इसका तिथि-निर्धारण दोषयुक्त तथा विवरण प्रमुख घटनाओं से रहित कहा जाता है। जो हो कृति का अंश बदायूनी और एक अन्य मध्यकालीन लेखक फिरिश्ता द्वारा व्यवस्थित बताया गया है। फिरिश्ता के कथनानुसार "उन सब इतिहासों में जो उसने देखे यही एक ऐसा है जो उसे पूर्ण मिला। इस पुस्तक का अनुवाद इलियट व डाउसन द्वारा किया गया है।

फिरिश्ता की पुस्तक में दक्षिण के राज्यों का विस्तृत इतिहास तथा सम्पूर्ण भारत का सामान्य वर्णन किया गया है। उसके इतिहास में हेमू और अफगानों के विषय में प्रमुख विवरण उपलब्ध है। हस्तलेख का अनुवाद अंगरेजी भाषा में जान ब्रिग्स द्वारा किया गया है, जो 'हिस्ट्री ऑफ दि राइज ऑफ दि मोहम्मडन पावर इन इंडिया टिल दी इयर ए डी १६१२ (४ भाग १८२९) के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) अफगान स्रोत—

अकबर के दरबारी इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों द्वारा छोड़े गए अभिलेखों के अतिरिक्त अफगानों पर अनेक कृतियाँ संतति को प्राप्त हुई हैं। अकबर के शासनकाल में १५९५ ई० के लगभग अहमद यादगार द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' में हेमू की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन दिया है। १५५६ ई० में पानीपत के दूसरे युद्ध के लिए तथा हेमू के अभियान के लिए यह एक अच्छा अभिलेख हस्तलेख है। अफगानों का दूसरा इतिहास जिसमें से हेमू की विजयों से संबंधित विवरण लिए गए हैं, 'मखजन-ए-अफगाना' अर्थात् 'अफगानों का इतिहास' के नाम से निआमतउल्ला द्वारा लिखा गया था जिसका अंगरेजी भाषा में अनुवाद डार्न द्वारा किया गया है। निआमतुल्ला की इसी नाम की एक अन्य कृति भी है, जिसका शीर्षक है तारीख-ए-इस्लाम-ए-जहांगीरी मादी-बा-मखजन-ए अफगाना। मौलिक हस्तलेख, लंदन में 'कामन वैल्थ रिलेशन्स आफिस'—Commonwealth Relations Office London में सुरक्षित रखा कहा जाता है। अब्बास सरवानी द्वारा लिखित तारीख-ए-शेरशाही तथा निजामुद्दीन की 'तबकात-ए-अकबरी' में उसने बड़े परिमाण में सामग्री उधार भी है।

'आन बूझकर सत्य का उलट बने' के उसने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—(१) अकबर की जन्म तिथि का उसके नामकरण का वर्णन। (२) मसीरगढ़ पर अधिकार होने का वर्णन। इसके अतिरिक्त जहां तक हेमू का समायाजन है उसकी उत्पत्ति विषयक विवरण एक ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर वृत्तान्तकारों के राजनीतिक पक्षपात और पूर्व पक्षी ढंग का विदर्शन कराते हैं। उसके द्वारा किए गए हेमू की मृत्यु का वर्णन का लक्षन जहांगीर सदृश संरक्षक ने अपने सर्वाधिक अधिकृत स्मृति लेखों में किया है। जहां तक तिथि-निर्धारण का सम्बन्ध है समकालीन उपलब्ध अभिलेखों में केवल अबुल फजल का अभिलेख अधिकृत है लेकिन कुछ स्थान पर तिथियां पूर्णतः संदेह से मुक्त नहीं है। हेमू के उज्ज्वल उत्थान से सम्बद्ध सबसे प्रमुख घटना उसका दिल्ली पर अधिकार है जो ६ अक्तूबर १५५६ ई को किया गया कहा जाता है और पानीपत का युद्ध ५ नवम्बर १५५६ ई को। इस प्रकार हेमू ने केवल २९ दिन शासन किया और तारदी बेग का २५ जनवरी १५५६ ई से ६ अक्तूबर १५५६ ई अर्थात लगभग ९ मास तक दिल्ली का गवर्नर था। आश्चर्य है कि इस लम्बी अवधि में सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी अकबर कालानौर से दिल्ली न आ सका। हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् के अबुल फजल द्वारा दिए गए विवरण इतने विभिन्न हैं तथा २९ दिन के विवरण इतने असत्य हैं कि दिल्ली पर हेमू के अधिकार तथा उसके सिंहासनारूढ़ होने की ठीक तिथियों के सम्बन्ध में एक उचित संदेह उत्पन्न होता है। कहा जाता है कि हेमू ने सिक्के चलवाए थे पर प्रकाश में अभी कोई नहीं आया। यदि एक सिक्का भी उपलब्ध हो जाए तो वह न केवल १६ वीं शताब्दी के प्रख्यात वीर और उसके दिल्ली के शासन पर वरन् अकबर के दरबारी इतिहासकार के सत्य और यथार्थता पर प्रकाश डाल सकता।

विन्सेंट स्मिथ ठीक कहता है—'फिर भी संभीर और प्रत्यक्ष दोषों के होते हुए भी 'अकबरनामा' अकबर के शासन के इतिहास की नींव के रूप में माना जाना चाहिए। इसकी तिथि-निर्धारण निजामुद्दीन और बदाऊनी द्वारा लिखित प्रतिद्वंदी पुस्तकों से अधिक सही और विवरण पूर्ण है और यह उसकी अपना बाद की तिथि तक की कथा का वर्णन करता है। यह उच्चतम प्रशंसा का पात्र है जैसा कि स्मिथ आगे चलकर कहता है— यूरोप तक में आधुनिक तम युग तक इस प्रकार का अभिकृत संग्रह पाना कठिन होगा"—।

अकबर पर अल-बदायूनी की कृति अधिकतर निजामुद्दीन की तबकात-ए अकबरी पर आधारित है जिसका भारतीय मध्यकालीन इतिहासकारों में एक ऊँचा स्थान है। वह अकबर की बहुत आलोचना करता है यहां तक कि जहांगीर के सिंहासनारूढ़ होने तक उसकी कृति का गुप्त रखना पड़ा। लेकिन वह हेमू के

प्रति उसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक और प्रमाणपूर्ण है जिसका अनुसरण करते हुए उत्तरवर्ती कृतियों में हेमू के जीवन वृत्तान्त पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता है। केवल उसमें हेमू के पिता और उसके अफगान शासक के जो १५२६ ई० में हेमू की मृत्यु के उपरान्त भी अकबर के समय जीवित रहे थे विषय में कुछ विवरण प्राप्त हो जाते हैं।

तबकात-ए-अकबरी अथवा अकबर-नामा जो तारीख-ए-निजामी के नाम से प्रसिद्ध है अकबर के शासनकाल के प्रथम ३९ वर्षों का (अर्थात् १५५६ ई० तक का) विवरण देती है। इसका निधि-निर्धारण दायपूर्ण तथा विवरण प्रमुख घटनाओं से घटित किया जाता है। जो हो कृति का अब बदायूनी और एक अन्य समकालीन लेखक खिरिश्ता द्वारा अंग्रेजियत बनाया गया है। खिरिश्ता के कथनानुसार "उस सब इतिहासों में जो उसने देखे यही एक ऐसा है जो उसे पूर्ण मिला।" इस पुस्तक का अनुवाद इलियट व डाउसन द्वारा किया गया है।

खिरिश्ता की पुस्तक में दक्षिण के राज्यों का विस्तृत इतिहास तथा उस काल का सामान्य वर्णन किया गया है। उसके इतिहास में हेमू और अफगानों के विषय में प्रमुख विवरण उपलब्ध है। इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में जान ब्रिग्स द्वारा किया गया है जो 'हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मोहम्मडन पावर इन इंडिया टिल दी इयर ए डी १६१२ (अनुवाद १८२९) के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) अफगान स्रोत—

अकबर के दरबारी इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों द्वारा छोड़े गए अभिलेखों के अतिरिक्त अफगानों पर अनेक कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। अकबर के शासनकाल में १५९७ ई० के लगभग अहमद यादगार द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सलातीन-ए अफगाना' में हेमू की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन किया है। १५७६ ई० में पानीपत के दूसरे युद्ध के लिए तथा हेमू के अभिशाप के लिए यह एक अच्छा अधिकृत इतिहास है। अफगानों का दूसरा इतिहास जिसमें से हेमू की विजयों में सर्वाधिक विवरण लिए गए हैं 'मखजन-ए-अफगाना' अर्थात् 'अफगानों का भण्डार' के नाम से निआमतउल्ला द्वारा लिखा गया था जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी द्वारा किया गया है। निआमतुल्ला की इसी नाम की एक अन्य कृति भी है जिसका शीर्षक है तारीख-ए-खान-ए जहान लोदी-वा-मखजन-ए-अफगाना। मौलिक हस्तलेख लंदन में 'कामन वैल्थ रिलेशन्स आफिस'—Commonwealth Relations Office, London. में सुरक्षित रखा कहा जाता है। अब्बास सरवानी द्वारा लिखित तारीख-ए-शेरशाही तथा निजामुद्दीन की 'तबकात-ए अकबरी' में इस कृति के परिज्ञान में सामग्री उधार ली है।

अब्बास सरवानी द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सरवाही' में सरवाह और अफगान बादशाहों का बहुत अधिक एवं विशद वर्णन है। यद्यपि हस्तलेखों में हेमू से संबंधित विवरण उपलब्ध नहीं है परन्तु उनसे वह वास्तविक पृष्ठ भूमि प्राप्त हो जाती है जिसकी परिस्थितियों में हेमू को अपनी प्रतिभा दर्शाने का एक अवसर प्रदान किया। यह भी सरवाह की मृत्यु के लगभग ८ वर्ष पश्चात् अकबर के आदेश से लिखी गयी। अफगानों के उपर्युक्त इतिहास के अतिरिक्त अबुल्फजा द्वारा लिखित एक अन्य हस्तलेख तारीख-ए-बाबरी है जिसमें हेमू के सहायकों के विषय में कुछ विवरण दिया हुआ है।

(३) अन्य स्रोत—

उपर्युक्त हस्तलेखों के अतिरिक्त हुमायूं की बहिन गुलबदन बेगम का हुमायूं-नामा जिसका अनुवाद श्रीमती बेवरिज द्वारा किया गया है १५८ ई में हुमायूं के निष्कासन तथा उसके विभिन्न प्रदेशों में घूमने-फिरने का विवरण देता है। हुमायूं के एक व्यक्तिगत सेवक जौहर द्वारा अकबर के समय में लिखित तास्कीयत-उल-वाकियात मारफत से मुगल सम्राट के निष्कासन और उसकी हिंद में वापसी का कुछ विवरण मिलता है। जहांगीर नामा में संग्रहीत जहांगीर के स्मृति लेख अकबर के शासन काल की विविध घटनाओं और स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं। हेमू की हत्या के विषय में उसका प्रमाण विश्वासकारी है। ये व्यक्तिगत स्मृति-लेख अधिकतर स्वयं उसके द्वारा अपने शासन काल के प्रथम १८ वर्षों में लिखे गए और बख्शी मुहम्मद खां द्वारा शासन के १९ वें वर्ष में। इस कृति का अनुवाद अंगरेजी भाषा में रोजर्स द्वारा तथा हिन्दी में भी बुजरत्न द्वारा—नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण १ ५७ में किया गया है।

कुछ ईसाई मिशनरियों ने जिन्होंने अकबर के दरबार में शरण ली थी और विदेशी यात्रियों ने जो उस समय भारत में आए थे घटनाओं तथा उनके परिणामों का आँखों देखा वर्णन किया है। उनमें से कुछ ने राजधानी में प्रचलित सूचनाओं को अपने कथनों का आधार बनाया है। जान कार्विया अफ फोन्सेका द्वारा Jesuit Letters and Indian History (१९२३) में प्रकाशित जेसियट मिशनरियों के और डी-सायत के भारत के वर्णन तथा Fragment of Indian History—१६२३ ई० में अकबर और महेशदास के शासन का स्पष्टीकरण दिया गया है। डी-सायत द्वारा हेमू की मृत्यु के विषय में छोड़े गए विवरण पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व के हैं।

(४) हिन्दी स्रोत—

हिन्दी हस्तलेखों से बड़ी संख्या में उपलब्ध प्रमाणों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अधिकतर समकालीन लेखक या तो उसके अस्तित्व से

ही समर्पित थे और या उन्होंने उस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। जैसा कि अकबर की जीवनी के लेखक विन्सेंट स्मिथ ने कहा है —

"कथा का एक रूप मामा आल बामा तथा हिन्दी व फारसी भाषा में लिखित, साहित्य से अकबर के अभिसम्बन्ध एवं संरक्षण द्वारा सब प्रकार के अनुवादों में प्रोत्साहन अन्त में प्राप्त किया। डा० एच० डब्लू० टामस के मतानुसार १६२० ई० के लगभग महान ठाकुर द्वारा पद्य एवं पद्य में संस्कृत भाषा में लिखित अकबर के शासन के एक भाग का भी इतिहास है। (Mac kenzie Collection India Office जो अब Commonwealth Relations Office, London में है। Eggeling Catal—संस्कृत हस्तलेख भाग ७ १९०४ १७७१ सन ८१०६ सान्वेरी संख्या ७१ है हस्तलेख २८ पृष्ठों के हैं जिनका माप १ ½ × १ इंच है)

राजस्थानी हिन्दी-विभाग में भाट कवियों साहित्य राजपूत राजाओं और पुरुषों के व्यक्तिगत पराक्रम-कार्यों एवं वीरतापूर्ण आक्रमणों से संबंधित विवरण से पूर्ण है। इसके पश्चात् १२०० ई० और १६०० ई० के मध्य हिंदी में भक्तिभावपूर्ण कविता में समकालीन भारत के सन्त कवियों द्वारा किए गए वर्णन प्राप्त होते हैं। उनके द्वारा उनकी कृतियों में उल्लिखित सही नाम और स्थान तथा उनकी रचना की तिथियों का परीक्षण करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। फिर भी यदि उनकी रचना की तिथियों का परीक्षण किया जाए, तो तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति के संबंध में बहुत सामग्री उपलब्ध हो जायगी। ये ग्रन्थ न तो तिथि निर्धारण और न ही बंगाली भक्ति विवरणों से भर पूर हैं सहित हिन्दुओं व मुसलमानों के संबंध और युद्ध में लीन विभिन्न संप्रदायों एवं मतों में मेल कराने तथा विविध हिंदू जाति में एक सहज जीवन का संचार करने के लिए किए प्रयासों का हवाले के लिए वे मूल्यवान हैं। कबीर, सूर और तुलसी सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रियतम अध्ययन की सामग्री उपलब्ध करते हैं।

जहाँ तक हेमू और उसकी विजय परम्परा का संबंध है। अकबर के समकालीन वृन्दावन के श्री हित हरिवंश के राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त नागरीदास कवि द्वारा छोड़ी गई कृतियां एक अच्छा ज्ञान है। नागरीदास द्वारा रचित रसिक अनन्य माल के एस का हस्तलेखों में विहारी के पुरुषोत्तम और नवलदास द्वारा वृन्दावन आकर राधावल्लभी मत का अंगीकार कर लेने का वर्णन है। श्री हित हरिवंश १५११ ई में (१५९ वि० संवत वसन्त पंचमी) वृन्दावन पहुँचे और जैसे ही वे वहाँ स्थायी रूप से बसे उनके शिष्यों के आगमन का ताँता लग गया। रसिक अनन्य माल के लेखक ने हेमू के पिता पूरनदास और उनके सहयोगी नवलदास का, जिन्होंने अकबर के हाथों

हेमू की जाति के विनाश को बचाने में योग दिया था श्रीहित हरिवंश के शिष्य बनने का अच्छा विवरण दिया है। हाल ही में प्रकाशित पुस्तक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—में श्री विजयेन्द्र स्नातक ने श्रीहरिवंशजी की ख्याति फैलने तथा शिष्यों की संख्या बढ़ने का वर्णन इन शब्दों में किया है—

"इसी समय आपने कई भक्तामु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों में भोगाव के अधिपति मरजाहन तथा रेवाड़ी के श्रीनवलदास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।

हेमू के वंशजों द्वारा प्रदत्त सामग्री—

पत्र ४ वर्षों में हेमू—विषयक सामग्री संकलित करने का जो प्रयास किया गया है उसके फलस्वरूप कई वंशावलियाँ (शजरे-वंशवृक्ष) तथा अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण हेमू के भतीजे महीपाल के पुत्र चौधरी माधवसिंह के नाम लिखा गया अकबर का शाही फरमान है। इसकी मूल प्रति सन् १ २१ ई में जयपुर निवासी साधू धर्म मित्रकिशोरीशरण के पास थी उन्होंने अपनी छोटी सी पुस्तक 'हेमू वीर' में प्रकाशित भी किया है। इस फरमान के द्वारा हेमू के पौत्र माधवसिंह को अकबर ने अपने प्रतिद्वन्द्विता से राजी नामा करने के लिए सन्त नवलदास के आग्रह पर, सारनौल सरकार में परगना कानौड़ की कानूनगोई तथा ११० ०) वार्षिक आय की जागीर दी थी। हेमू के वंशजों तथा जाति बन्धुओं को अकबर के रोष से बचाने तथा उनको क्षमा प्रदान कराने का श्रेय सन्त नवलदास को था जो राधावल्लभी सम्प्रदाय के एक भक्त थे। इस घटना सम्बन्धी वर्णनों को अनन्य रसिक माल नामक पुस्तक में लिया गया है। इससे अकबर हेमू उनके वंशज महिपाल माधवसिंह आदि के विषय में तथा रिवाड़ी से आए हेमू के पिता पूरनदास व उनके साथी नवलदास के राधावल्लभी संप्रदाय में सम्मिलित होने का विशद वर्णन है। साधू धर्म मित्र ने १९२८ ई में इस विषय में भी बड़ी छान-बीन की थी और पटियाला नरेश के यहाँ कानौड़ स्थित कानूनगोई व माणकार के हक सम्बन्धी कागजात व बिल्लों की दरबार में छान-बीन कराई थी उससे यह पता चला कि यह हक पटियाला नरेश के शासन काल में भी कुछ काल तक मान्य रहा। धीरे-धीरे कम हो गया। इस जागीर के अतिरिक्त पटियाला राज्य (पूर्वी पंजाब) सारनौल स्थित होली पर्वत पर्यामणी इमारत व मन्दिरों में भोग इत्यादि के लिए कुछ धन पटियाला सरकार प्रदान करती रही।

कानौड़ उपनाम महरडपट्ट में अब भी ८ या १० घर दूसरों के हैं जो अपना गोत्र गोयल तथा अपना कुलदेवी बताते हैं। यही गोयलादि हेमू के वंशजों के हैं। अधिकतर वंशज रिवाड़ी तथा अन्य स्थानों पर जा बसे हैं। वह अपने को अब भी कानोड़िये कहते हैं।

हेमू के वंशज—

इस विषय में जो खबरें तथा वंशावली उपलब्ध है उनसे महीपाल के वंशजों का पता चलता है। हेमू की मृत्यु निःसन्तान हुई तथा उनके भाई राय सम्भोराय तक पता चलता है। महीपाल के पुत्रों में त्रिलोक चन्द्र राय नारायणदास तथा चौधरी नाथमल थे। महीपाल का नाम समकालीन इतिहासकारों के लेखों में मिलता है। इस प्रकार जैन के मत बताये जाते हैं उनमें से दो के अनुसार वह हेमू का भतीजा प्रमाणित होता है। उनके पुत्र नाथमल को प्रदत्त फरमान की मूल प्रति साधू धर्म मित्र ने प्रस्तुत की। यह धर्म मित्र स्वयं अपने को त्रिलोक चन्द्र के वंशजों की १२ वीं पीढ़ी में बताते थे। हस्तलिखित पुस्तकों में विकसित लिपि में महीपाल लिखा हुआ था। साधू धर्म मित्र की ज्ञान वीन के अनुसार नकल करने वालों ने अरपाल लिख दिया। यह कोई शब्द नहीं है। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वृक्ष में—मूरिस-आमा—सर्वश्रेष्ठ लिखा है।

उपरोक्त वंशावलियों का वर्णन प्रयाग के पण्डा राजा राम के वंशजों के पास सुरक्षित बहियों में प्राप्त है। उनमें यह कलाविद खूबर करके लेख बद्ध हैं।

अध्याय—१

जन्म व पितृ परम्परा

मध्यकालीन भारत के महान सेना-नायक अकबर के एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी परमवीर हेमू का जन्म आधुनिक हरियाणा राज्य के अलवर क्षेत्र के राजगढ़ से तीन मील दूर "माछेरी" नाम के स्थान पर हुआ था। मुगल सम्राट अकबर के इतिहासकार अबुल फजल ने निम्नलिखित शब्दों में हेमू का परिचय दिया है —

"संक्षेप में वह दुष्ट आकृति वाला जो छोटे कद का और संकुचित विचारों का था मेवात के एक नगर रिवाड़ी के मुद्र फेरीवालों में ऊँचे पद पर पहुंचाया गया। जहां तक उसकी जाति (नसब-नस्ल) का सम्बन्ध है, वह दूसर जाति का था— —।"[1]

अबुल फजल के आधार पर ज्ञात होता है कि पानीपत के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अकबर ने पीर मुहम्मद खाँ को मेवात की ओर भेजा-जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ बताया जाता था। अकबरी १५५७ ई० में पीर मुहम्मद ने "हेमू के जन्मस्थान देवली-सतरी (या सातारी) तक अकबर की सरकार पर अधिकार कर लिया।[2] इस स्थान को तत्कालीन इतिहासकारों ने "देवली-सतरी" अथवा केवल "सातारी" नामों से संबोधित किया है। "देवली" या "देवती"[3] आधुनिक अलवर जिले के दक्षिण में स्थित है। स्वयं अबुल फजल ने आइन-ए-अकबरी[4] में "देवली सतरी" नाम दिया है। अब बदाऊनी ने इस शब्द को 'देवली' नाम से संबोधित किया है।[5] इम्पीरियल गजटियर में 'मकाणी' शब्द का उल्लेख है, जिससे यह ज्ञात

१—अबुल-फजल = अकबरनामा (बीवेरिज द्वारा अनुवादित)
जिल्द—१ पृ० सं० ६१२—६१९।
— " " जिल्द—२ पृ सं ७१—७२

२—देखिए अलवर गजटियर—पृ सं० १५८—"मेव के अनुसार अकबर कालीन भारत में माछरी व देवली—अलवर सरकार (जिला) के प्रमुख नगर रहे होंगे।—पृ० सं० ११४।

३—अबुल-फजल आइन-ए-अकबरी ब्लाचमैन द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद पृ० सं ८२१।

४—अब्द-बदाऊनी मुन्तखाब-उल्-तवारीख वीरेट द्वारा अनुवाद २।१९१

होता है कि "मकासी" और 'देवली' जहाँ अब झील है, अकबर के समय में प्रमुख नगर रहे होंगे। यह प्रदेश मेवात कहलाता था।[1]

"मेवात" दिल्ली के दक्षिण में स्थित वह भू-भाग था जिसमें अधिकतर मेव और मेवाती बसे हुए थे। यह सदर एक ओर मथुरा जिले तक दूसरी ओर भरतपुर के कुछ भाग तक तथा पहले के अलवर राज्य तक फैला हुआ था। अब उसका विलय राजस्थान राज्य में हो गया है। इम्पीरियल गजेटियर द्वारा भी हेमू का मेवात का निवासी स्वीकार किया गया है।[2] इस क्षेत्र में १५ वीं तथा १६ वीं शताब्दी में बहुत से ब्राह्मण परिवार निवास करते थे। अबुल फजल ने भी अकबर के सेना-नायक मौलाना पीर मुहम्मद द्वारा हेमू के पिता (पूरनदास) को इसी क्षेत्र में बंदी बनाया जाना लिखा है।[3] अकबर के समकालीन व राधा वल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश-वृन्दावन निवासी के शिष्यों में भी श्री नवलदास और पूरनदास रिवाड़ी निवासियों का वर्णन मिलता है। हित हरिवंश जी अपनी यात्रा करते हुए, चिरथावल गाँव में कुछ समय ठहरकर सम्वत् १५९ (१५३३ ई) की फाल्गुन की एकादशी को वृन्दावन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर—

मंदिर सुंदर सरस बनायो। करि अभिषेक प्रभुहि पधरायो॥
श्री राधावल्लभ नाम सुकह्यो। वह पुरान संहितह लह्यो॥
पट्ट सैं इक्यावन सुहायो। कातिय सुदि तै रस सुख पायो"॥[4]

वृन्दावन पहुँचने पर हित हरिवंश जी ने मदनटेर नामक स्थान पर विश्राम के लिये डेरा डाला। उनके स्थायी रूप से वृन्दावन वास करने का निश्चय करने के पश्चात् भक्ति और प्रेम के मार्ग से श्री जी की सेवा उपासना का सुयोग पाकर श्रद्धालु जनता एक साथ गोस्वामी हरिवंश जी द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर चल पड़ी और दूर-दूर तक उनकी साधना-पद्धति का प्रचार हो गया। इसी समय आपने कई श्रद्धालु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों में भैंगाँव के अधिपति नरवाहन तथा रिवाड़ी[5] के श्री नवल दास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।[6]

१—अबुल-फजल अकबरनामा पृ स २६६ आईन पृ सं १५९
२—इम्पीरियल गजेटियर खंड २ प्रकाशित १९ ९ देखिए अलवर गजेटियर लन्दन से प्रकाशित १८७८—पृ सं० ७
३—अबुल-फजल अकबरनामा जिल्द २ पृ० ७१ १०
४—भगवत मुदित कृत—ऐतिहासिक अनन्यमाला-सिंघिकार दूसरी-सिंघिकाल १८१७ हस्तलिखित प्रति-मासिक महह-नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
५—जिला मैनपुरी उत्तर प्रदेश।
६—रिवाड़ी-जिला गुड़गाँव-पूर्वी पंजाब।
७—शिवसेन्द्र स्नातक राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० सं०—१०८

MAP
OF
ULWAR STATE

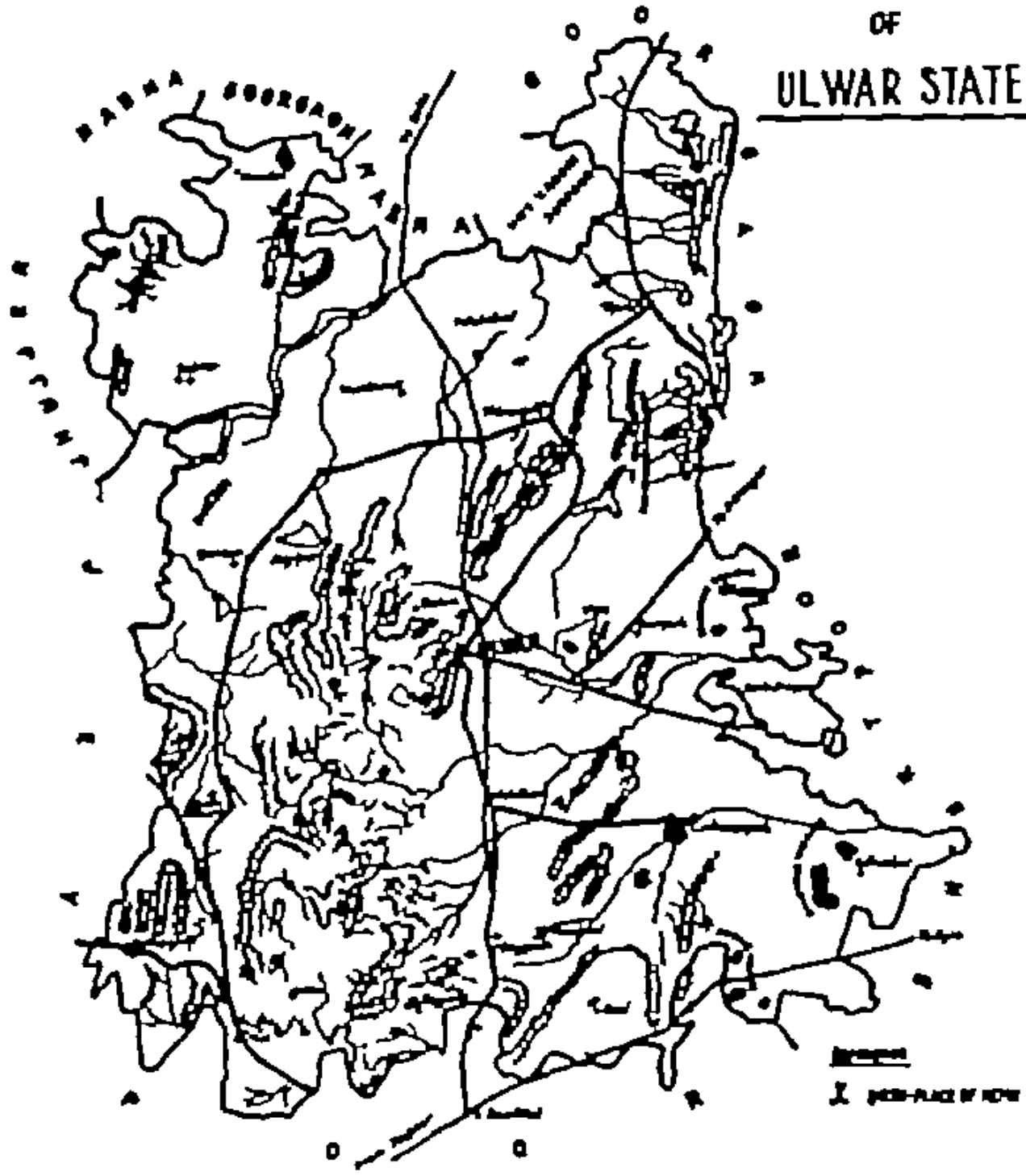

परम भक्त पूरनदास—उपरोक्त ग्रन्थ से संत पूरनदास व भक्तदास के विषय में अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं जिनसे परमवीर हेमू की जीवनी पर प्रकाश पड़ता है। भक्तदास जी को बैरागी के रूप में वर्णित किया गया है और उन्हीं की कथा में हेमू का वर्णन है जिसमें उनको स्पष्ट रिवाड़ी निवासी बताया गया है" - -

"श्री हित हरिवंश के शिष्य भक्त है जान।
दूसर दास भावना रिवाड़ी तिनको करौं बखान। १॥

चौपाई—रेवारी महि घर ह तिनको। कथा कीरतन म मन तिनको॥ २॥
सापन की सेवा मुदित कर। महानम् सबको मन हर्ष॥ ३॥
संत संगति बन्दावन आए। श्री हरिवंश मिले सुख पाए॥ ४॥
बहुत भीम की कथा बखानी। पुर म शिष्य परिपूरा कीनी॥ ५॥

इसी प्रकार पूरनदास जी के विषय में परमानन्द चरित्र में निम्नलिखित वर्णन मिलता है।

पूर्णदास विरक्त अनन्य। श्री हरिवंश पथ अवलम्ब॥ १८॥
प्रभु इच्छा करि कट्ठ आए। पठित बुधीनु बरसतपाये॥ १९॥
इनके मूल सुनि मूर्पाह सुनाये। आदर सौं पूरन पधराये॥ २०॥

परमानंद रसिक की कथा से ज्ञात होता है कि वह बड़े शूर क्षत्रिय के पुत्र थे और "साहि हिमाऊं के हैं चाकर"—अर्थात् हुमायूं के तीन हजारी मनसबदार थे।[1] वह दुखी होकर टट्ठे में आए थे।[2] इन्होंने हुमायूं बादशाह की बहुत सेवा की थी। इन्हें जहाँ जैसा मौका मिला वहाँ इन्होंने कार्य किया और बादशाह का बहुत द्रव्य पहुँचाया। इनकी ज्ञान-भक्ति में बहुत प्रेम था। 'पूरनदास' के आगमन से उन्हें परम सुख मिला। वह उनसे प्रत्यक्ष दिन श्री हरिवंश का नाम सुनने को कहते थे—

श्री हरिवंश चर्न चित लावै। सब अभिलाषा मन में पावै॥ १८॥

परमसंत पूरनदास के टट्ठे में आगमन के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है —

'संवत सै आगरे भारी बुद्धि। सकलौकिदासाई भरे सुद्ध॥
--- --- ---
सदाचार भागवत सुहाए। मात बन बन सें बिचराए॥

१—भक्तवर मुदित कृत श्री हित चरित्र व रसिक अनन्य माल की हिन्दी हस्त लिखित प्रति में "साहि हिमाऊँ के हैं चाकर" उल्लिखित है। "परमानंद को परचय" — ॥ ४ ॥ L. पृ० ३४

२—टट्ठे—सिन्ध में—आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान।

परमानंद ने पूरनदास को छट्ठे में बहुत दिनों तक रखा। परन्तु बारह वर्ष हो जाने के पश्चात् परमानंद ने स्वयं साहु को वहाँ से स्थानान्तरण के लिए लिखा—

'लिख्यौ साहु को बुढ़े भये।
मेरे बदन और पठावहु। मोको बन एकांत बसावहु॥
बिनती लिखी साहु की आई। और भेजए लये बुलाई॥

तत्पश्चात् मनसब इत्यादि त्याग कर परमानंद वृन्दावन आकर बस गये। और सौ वर्ष तक की आयु भोगकर परमधाम को चले गए। भक्तवत मुदित के कथनानुसार परमानंद का—

'पूरन के बरताव तें मिट्यौ अमित संताप॥

इस प्रकार तत्कालीन ग्रन्थ द्वारा पूरनदास की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि अबुल फजल द्वारा वर्णित हेमू के पिता अत्यन्त धर्मात्मा व परम भक्त थे। इसीलिए उन्होंने ८० वर्ष की अवस्था में धर्म परिवर्तन अस्वीकार करके फाँसी को सहर्ष स्वीकार करके धर्म पर अपनी बलि दी। पूरनदास व मदनदास की राधावल्लभी सम्प्रदाय में पर्याप्त ख्याति थी। इसी कारण से हित हरिवंश जी ने एक को छट्ठे व दूसरे को ओडछा—परमानंद व व्यास जी के पास अपने मत का प्रचार करने के लिए भेजा था। उपरोक्त ग्रन्थ में उल्लिखित तिथियों से भी पूरनदास के हुमायूँ व अकबर के समकालीन होने का प्रमाण मिलता है।

हेमू की वंशावली—

हेम राय अथवा हेमू शाह जो हेमू के नाम से प्रसिद्ध हैं राय जयपाल[1] दास के पौत्र थे। उनके पिता का नाम राय पूरन मल (पूरन दास) उर्फ पिया राय था। उनके छोटे भाई का नाम जुझार राय था। हेमू के जीवन काल में उनके भतीजे महिपाल ने सेना नायक के रूप में और अफगान प्रति क्रान्तियों के विरुद्ध लड़ाइयों के विजेता के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। हेमू के भानजे रमया[2] का वर्णन भी पानीपत की दूसरी लड़ाई में राव पद्मीय सेना के नायक के रूप में विशद रूप से उपलब्ध है। इन दोनों योद्धाओं के विषय में अन्य विवरणों का अभाव है। महिपाल राय झोंडेराव के कुल में से थे जिनके दो पुत्र थे मौहिद राय तथा रूपराय। मौहिद राय का पुत्र महिपाल था और रूपराय का पुत्र केवल राम और मौलिक राय थे। महिपाल दूसरे के पुत्र माधवराय

१—अकबरनामा—ब्लाचमैन आइन-ए-अकबरी—पृ १४०
२—धर्ममित्र हेमू और बंशावली—पृ० ११।
३—अबुल-फजल अकबरनामा जिल्द—२ पृष्ठ २९।

हेमू की वंशावली

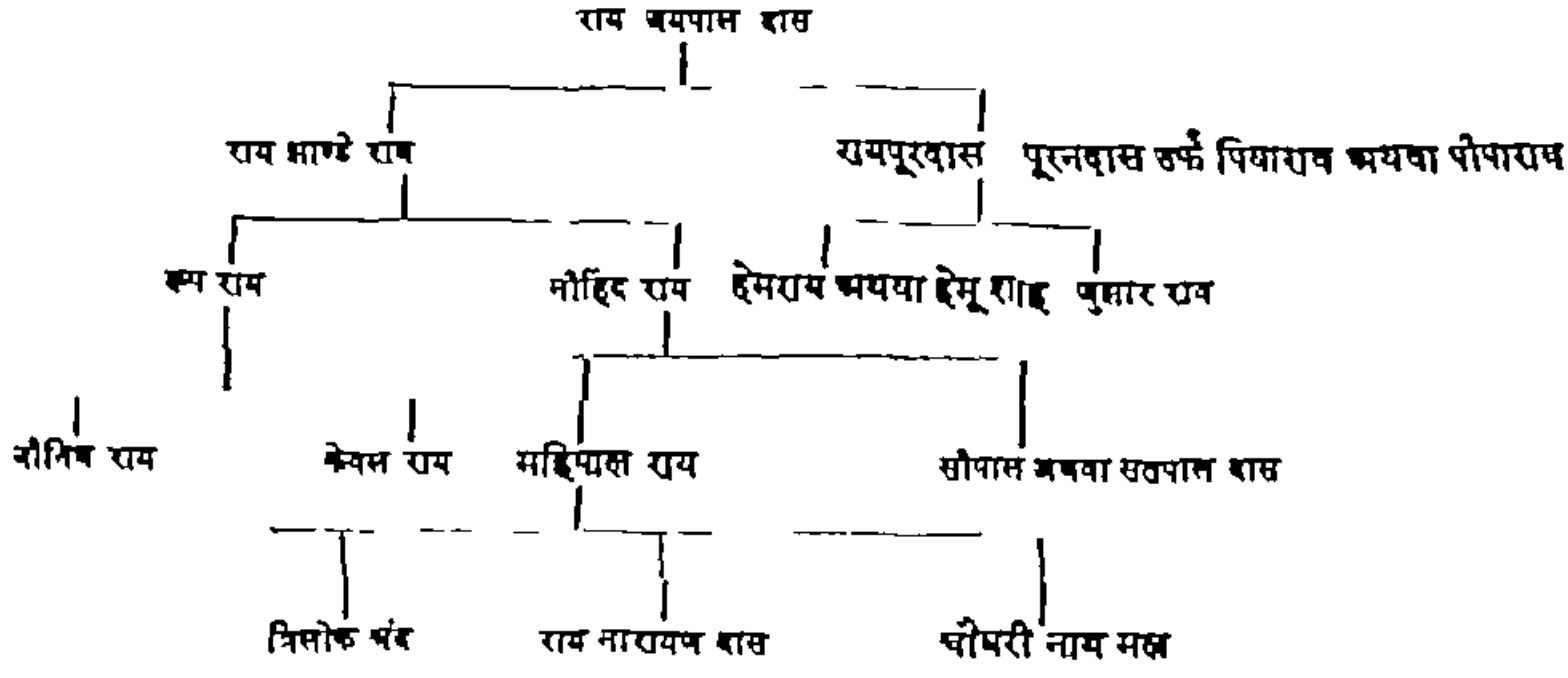

उपरोक्त वंशावली साधु धर्म मित्र द्वारा प्रकाशित 'हेमूवीर' तथा रिवाड़ी निवासी हेमू के वंशजों द्वारा प्रेषित सूचना पर आधारित है। इस संबंध में कुछ सूचना कानोडिये दूसरों के तीर्थराज प्रयाग के पंडा राजा राम के वंशजों के पास सुरक्षित बहियों में भी उपलब्ध है।

को अकबर द्वारा दिये गये फरमानों[1] में से एक जिनमें परगना कानौड की सारसौल सरकार में कानूनगोई उसको दी गई थी में उसका विस्तृत वर्णन है। यह जागीर ११०० रुपया वार्षिक की आय की थी और पटियाला राज्य (जिसका विलय अब पूर्वी पंजाब में हो गया है) में स्थित थी। १०० वर्ष से अधिक पुराना मौलिक फरमान महिपाल के वंशजों में सुरक्षित रखा हुआ था और वह स्वर्गीय वर्म मित्र भार्गव (जयपुर) द्वारा प्रकाशित कराया गया है। इसमें लिखा है—

अल्लाह—हो—अकबर मुहर मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर शाह गाजी फरमान आलीशान वाजिबुल—अर्ज—माधमल वल्द महिपाल दूसर बादशाह हुए—

'आलीशान फरमान द्वारा यह मालूम हो कि महिपाल दूसर के पुत्र माधमल को इस्लाम की छत्रछाया में खरीफ से आरम्भ होकर, सारसौल की सरकार में परगना कानौड की कानूनगोई प्रदान की गई है ताकि इसको पाने वाला परोपकारी और रैयत की सरपरस्ती करने वाले दरबार के सामने अपने को पेश करके रैयत के कल्याण व उन्नति का लेखा-जोखा दे। प्रत्येक वर्ष के अन्त में उसको दरबार में स्वयं आकर अट्ठाईस अर्पित करके अपना आदर करना चाहिए। इस प्रकार विधिवत अपने को अर्पित करते समय उसको सम्राट के दफ्तर (कार्यालय अथवा सेक्रेटेरियट) में सब कागजात पेश करने चाहिए। परगने की कुल मालगुजारी में से कानूनगो के रूप में की गई सेवाओं के लिए अथवा शाही सेना के सैनिकों के वेतन के भुगतान के लिए ११ ०० रुपए वार्षिक व्यय की स्वीकृति दी जाती है। शाही खजाना उस महाल से संबंधित व्यय के पूर्ण उत्तरदायित्व से मुक्त है। उस परगने के सभी वर्तमान और आगी जागीरदारों को कानूनगोई के शाही फरमान का ध्यान रखते हुए, सामरिक अथवा माल सम्बन्धी या वचन अथवा जन-कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विषय को उपर्युक्त अधिकारी के सामने पेश करना चाहिए। फरमान के पाने वाले को हर वर्ष उसके नवीकरण की आवश्यकता नहीं है और उसको फरमान द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्वों से कभी विमुक्त न होना चाहिए।

हेमू की जन्म तिथि और वास्तविकता—

हेमू के जन्म की ठीक तिथि के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। अबुल फजल के अकबरनामे में लिखा है कि सन् १५५६ ई में फाँसी पर चढ़ाने के समय हेमू के पिता राय पूरनमल ८ वर्ष के थे।[2] इससे हेमू के जन्म की

१—धर्ममित्र हेमू और फरमान—पृ० ६।

२—अकबरनामा से उद्धरित
इलियट एण्ड डाउसन—आइने-अकबरी पृ १५०।

तिथि सन् १५०० ई० लगाई गई है, अर्थात् जब उनके पिता २८ वर्ष के रहे होंगे। इस तिथि के अनुसार हमू की आयु उस समय ८३ वर्ष की रही होगी जबकि उन्होंने एक सफल-नायक राजनीतिज्ञ और तत्पश्चात् अदिली के प्रधान मंत्री और अन्तत विक्रमाजीत के रूप में व दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट के रूप में ख्याति प्राप्त की। सन् १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई के समय हमू की आयु ५६ वर्ष की रही होगी।

कुल रीति के अनुसार हमू ने शिक्षा अपनी मातृ भाषा हिन्दी व फारसी में प्राप्त की। हमू के पिता धार्मिक व्यक्ति थे और अपना अधिकतर समय साधु संतों के सम्पर्क में व्यतीत करते थे। ८० वर्ष की वृद्धावस्था होने पर भी जब कि उनकी कत्ल किया जानेवाला था उन्होंने अपने धर्म परिवर्तन से मृत्यु को अच्छा समझा।

हेमू शेरशाह की प्रचलित कथा

हमू के प्रारम्भिक जीवन के विषय में प्रचलित कई किंवदन्तियों के अनुसार यह संदेह किया गया है कि हमू के पिता और शेरशाह में सम्बन्ध उनके प्रारम्भिक जीवन-काल में घनिष्ठ सम्बंध रहे थे। यह कहा गया है कि जीवन के आरम्भ में शेरशाह के पिता की विमुखता के कारण उसकी माँ ने अपने दोनों पुत्रों के साथ हेमू के पिता राय पूरनमल के यहाँ माहेरी में शरण ली। राय पूरनमल उस समय एक सुप्रसिद्ध जागीरदार थे जो अपना अधिकतर समय संतों के साथ भजन कीर्तन में ही व्यतीत करते थे। ऐसी किंवदन्तियों की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। शेरशाह और हमू की आयु के अन्तर से और शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन[1] से सम्बन्धित विवरण से भी इस किंवदन्ती की पुष्टि नहीं होती है। शेरशाह ने जो फरीद के नाम से प्रसिद्ध था और १४८६ ई० में पैदा हुआ था २५ वर्ष की आयु में (अर्थात् १५०१ ई० में) जौनपुर में कम से कम तीन वर्ष बिताए, और तत्पश्चात् २१ वर्ष तक जागीर धारण की। इस बीच में उसने बहुत ऊँच-नीच देखी पर आरम्भ के आक्रमणों

१—कानूनगो शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन। अध्याय १ पृ० ३।

'हसन सूर की पहली संतान फरीद अच्छे बादशाह फिरोज तुगलक द्वारा स्थापित इस पवित्र 'खिजरी सपरी' हिसार फिरोजा में पैदा हुआ था। (मखजन.....अफगाना .....२०८) उसके जन्म की ठीक तिथि किसी इतिहासकार ने नहीं दी है। अब्बास सरवानी (तारीख ४ २०८) ने कहा है कि वह सुल्तान बहलोल जिसकी मृत्यु १४८८ ई० में हुई थी के जीवनकाल में पैदा हुआ था। संभवत तिथि १४८६ ई० रही होगी—हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तानी एकेडमी यू० पी० द्वारा प्रकाशित पत्रिका) जिल्द ३—पृष्ठ २०० २०१।

के समय उसके आगरा और दिल्ली से उत्तर-पश्चिम में आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। और इस समय हेमू का जन्म भी नहीं हुआ था। अतः उनमें घनिष्ठ संबंध होने की बहुत कम संभावना थी। शेरशाह हेमू से १२ वर्ष बड़ा था।

पर दूसरी ओर शेरशाह के माता पिता का नारनौल से सम्बन्ध और हेमू के कुटुम्बियों का उसी स्थान से सम्बन्ध जैसा कि महिपाल दूसर (हेमू का भतीजा) के पुत्र चौधरी मानसिंह को सरकार नारनौल के परगना कानोड़ की कानूनगोई के दिए जाने से प्रमाणित होता है। इस बात की कुछ संभावना की पुष्टि करता है कि हेमू के माता-पिता का शेरशाह की माता से अवश्य सम्पर्क था और उन्होंने उसको व उसके दो पुत्रों का पालन भी की।

शेरशाह की जीवनी से यह स्पष्ट है कि वह 'अपने पिता की विमुखता और अवमानुता और सौतेली मां की ताड़ना के बीच पला। हसन[1] सबसे छोटी पत्नी की या एक दासी थी और जिससे उसके दो पुत्र सुलेमान और अहमद हुए थे अधिक चाहता था। 'फरीद की माता उसके हृदयहीन पति द्वारा त्याग दी गई थी' अब्बास सरवानी के अनुसार।[2]

'बा-मादर फरीद ओ निजाम इलाका-ए-मुहब्बत ओ इखलास व मुवद्दत ना बाश्त।

(फरीद व निजाम की माँ के साथ प्रेम व वास्तविक स्नेह का सम्बन्ध नहीं रखता था।)

स्वभावतः फरीद और उसके भाई की और साथ ही उसकी माँ की भी बिलकुल परवाह नहीं की गई। वे एक दूसरे के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध के बीच बड़े हुए। ऐसा भी कहा जाता है कि इब्राहीम का परिवार अन्त में नारनौल में बसा जहाँ उसे ४ सवारों के खर्च के लिए जागीर के कई गाँव मिले। कुछ ही समय बाद इब्राहीम मर गया और हसन को अपने पिता की जागीर सौंप दी गई। हसन का परिवार पर्याप्त समय तक नारनौल में जिस अदुल फजल ने 'इब्राहीम की जन्म भूमि कहा है रहा मालूम होता है। मखजन-ए-अफ्गाना की हस्त लिखित प्रति में (पृ २७६ बी हसन के नाम के बाद उसके परिवार का निवास-स्थान बतलाने के लिए 'साकिन कस्बा ए नारनौल' लिखा है।

रोहतास के निकट स्थित सहसराम और खवासपुर का जमाल खाँ का स्थानान्तरण होने पर हसन भी पूर्वी सूबा में बसा गया। उसका परिवार भी

१—कानूनगो शेरशाह अ १—पृ ५
२—कानूनगो शेरशाह अ० १—पृ ४ इलिट—पृ० ११४ निजद—८।
३—कानूनगो शेरशाह अ १—पृ० १

नारनौल में सस्त्रारम आ गया।[1] सकिन फरीद और उसकी माँ के प्रति उपेक्षा पूर्ण बर्ताव होता रहा। जागीर के बटवारे के समय फरीद की माँ को एक भाग भी न मिला। लगभग १५०१ ई० में फरीद जौनपुर का भाग गया। इन परिस्थितियों में यह असम्भव नहीं है कि फरीद की माँ ने हेमू के पिता से कुछ आश्रय पाया हो। क्योंकि राय पूरन दास का सरकार नारनौल के परगना कानोड़ में बड़ा सम्बन्ध था।

हेमू की उत्पत्ति और उसका सैन्यबल उत्थान

अकबर-बदायूनी ने दिल्ली पर आक्रमण का वर्णन करते हुए हेमू को "बक्काल"[2] कहा है और उसकी सेना का प्राममाहक।

अबुल फजल और दूसरे समकालीन लेखकों ने भी उसकी सफलताओं का इसी प्रकार वर्णन किया है। उनके द्वारा उसका उत्थान आश्चर्यजनक समझा गया और उसके ऊपर सब प्रकार के घृणास्पद उपनामों की बौछार की गयी है। अबुल फजल कहता है—

"हेमू जिसने कि भला बुरा कहे बिना, सब प्रकार झूठा व्यापारियों-सा लगा था—क्योंकि व्यापारी का जन-साधारण का अभ्यास करना होता है—अतः उसका आनन्द लेता है—और वह भी इस सीमा तक कि वैषयिक ताप भी उनकी तीव्र वृद्धि में शीतल हो जाते हैं और स्वाभाविक धृष्टता के कारण निम्न श्रेणी में उच्च पद को प्राप्त किया था। उस अत्याचारी राजा का प्रधान मन्त्री हो गया जो अपना सारा समय खाने आनन्द और भोग विलास में व्यतीत करता था और कार्यों की उपेक्षा करता था।[3]

इसके बाद उसने हेमू का वर्णन उसी पक्षपातमय और अन्यायपूर्ण ढंग से किया है और उसको सबसे निम्न श्रेणी का कहा है।

हेमू बरप से कूचहा ममकए शोर फरोख्त" अर्थात् हेमू गली-गली घूम कर नमक बेचने के लिए फेरी लगाने वाला बना दिया गया। कितना असत्य तथा भ्रमात्मक वर्णन है सच्चे इतिहास से कितना परे है। यह नीचे लिखी पंक्तियों से और स्पष्ट हो जायगा।

१—बानूनगो सरकार अ० १—पृ० ५

२—अबदराऊनी मुन्तखाब उत्-तवारीख पृ ६ जिल्द २ लोक द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित—कलकत्ता १८६४।

३—अबुल-फजल-अकबरनामा (बेवरिज द्वारा अनुवादित)
जिल्द—१ पृ० ६१४—१६।

हेमू का वर्णन

"ईश्वर की शक्ति के चमत्कार सोचने वाले को लम्बा दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और हेमू के वर्णन से शिक्षाप्रद चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। बाहरी रूप से उसकी न कोई पदवी (इस्म) थी न कोई जाति (नसब) थी न कोई आकृति (सूरत) थी और न उसमें श्रेष्ठ गुण (सैरात) थ। संयोगवश अनुपम परमात्मा ने किसी गुप्त कारण वश जो कि चतुर व्यक्ति की दृष्टि से भी छिपा था उसको उच्च स्थान पर पहुँचा दिया गया था सायद उस युग के दुष्टों को नीचा दिखाने के लिए उनसे भी निकृष्ट एक और को परमात्मा ने भेज दिया। संक्षेप म वह दुष्ट-आकृति वाला था छोटे कद का और दंभपूर्ण विचारों का था मेवात के एक नगर रिवाड़ी [1] के शुद्र फेरी वालो[2] में ऊँचे पद पर पहुंचा गया। जहाँ तक उसकी जाति (नसब) का सम्बन्ध है, वह बूसर जाति का था जो भारत में फेरी वालों की निम्नतम श्रेणी है। गलियो के चीख उसने हजारो मृत प्राय व्यक्तियो के साथ (बा-हजारान-बिनिमाकी) खार (निमक-ए-शोर) बेचा जब कि अन्त मे वह चतुरता के कारण सलीम जिसका संक्षिप्त वर्णन पहले ही दिया जा चुका है के अधीन एक सरकारी फेरीवाला हो गया।

तत्कालीन चाटुकार इतिहासकार ने अपने आश्रयदाता मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के लिए उसके प्रतिद्वन्द्वी की बुराई करने म अपनी दक्षता पूर्णतया प्रदर्शित कर दी है। सत्य का तो बिलकुल गला ही घोंट दिया है। इतिहासकार पाठकों को विश्वास दिलाना चाहता है कि ईश्वर ने ही हेमू को निकृष्ट रूप में उत्पन्न किया। हेमू के साथ ही साथ समस्त बूसर जाति को भी निम्न कोटि का बता दिया गया है।

एक दूसरे मुस्लिम लेखक फिरिश्ता ने अपने 'भारत म मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास' म हेमू के उत्थान का उल्लेख इन शब्दों मे किया है।

"जैसे ही मुबारिज खाँ ने सूर-वंश की गद्दी प्राप्त कर ली की उसने आदिल शाह की उपाधि धारण कर ली। पर निम्न श्रेणी के साथ सूर का "र" हटाकर और शब्द के अन्त में 'ई' जोड़ कर उसका 'अदिली" कहकर पुकारने की आदत में वे जिस नाम से वह बंगलों में प्रसिद्ध है। सदा

१—गुड़ गांव जिले म और एक रेलवे जंक्शन।

२—घूमकर माल बेचने वाले

३—बाजारों का अधीक्षक या बाजार का पुलिस-अधीक्षक-अबुल-फजल अकबर नामा'-जिल्द १-पृ० ६१४ ६१९।

सुख-प्राप्ति में रत रहने के कारण शारीरिक न पढ़ने व लिखने की साधारण योग्यता प्राप्त करने पर भी ध्यान नहीं दिया। वह विद्वानों का कृपा करता था और अपनी भाँति के अपढ़े लिखे लोगों की संगत में रहता था जिनको उसने राज्य के उच्चतम पदों तक ऊँचा उठा दिया। इन्हीं में एक हेमू (एक भारतीय दुकानदार) का जिसको उसके पूर्वाधिकारी सलीम शाह ने बाजार का अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट) बना दिया था और उसे कार्यों का पूर्ण प्रशासन सौंप दिया था।[1]

आपने समकालीन फारसी अभिलेखों (रिकार्डस्) से प्राप्त सूचना के आधार पर अंग्रेज इतिहासकारों ने भी उसको नीच कुल में उत्पन्न बताया है। 'हेमू ने अपने हिन्दू धर्म की आत्मा नीच कुल और छोटा कद के होते हुए भी अपने सम्राट के विश्वास का एक योग्य सेनानायक और जनता का शासक बन करके उचित सिद्ध कर दिया।"

मुस्लिम-बक्कास के रूप में

'बक्कास' शब्द का तात्पर्य कोई जाति अथवा सम्प्रदाय से नहीं है। स्टेनगेस के अंग्रेजी व फारसी कोष के अनुसार भारत में इसका अर्थ अनाज का व्यापारी बताया गया है परन्तु तत्कालीन भारत यह केवल एक घृणा सूचक शब्द था जिसका प्रयोग लेखक उन व्यक्तियों के लिए करता था जिनकी वह निन्दा करना आवश्यक समझता था।[3] बदायूँ फकीर ने स्वयं मकबरनामे में एक मुस्लिम सेना नायक को इन शब्दों में "बक्कास" कहा है।

"हाजी खाँ और अब्दुल मकरी का पुत्र हुसैन मकरी ने काश्मीरी फरीदाबाद (बक्कास) खवाजा हाजी पर, जो मिर्जा के कार्यों का मैनेजर था विजय प्राप्त की"।[4]

एक मुस्लिम सेना नायक का 'बक्कास' के रूप में एक और उल्लेख भी है।

"इस माह के इसवें दिन को सम्राट ने एक प्राचीन विश्राम-स्थल रोमनी नगर में जो मानपुर के आश्रित ग्रामों में से एक था डेरा डाला। यहाँ से उसने

१—जिस्म आफ फरिश्ता का भारत में मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास १५१२ ई० तक जिल्द १ सन्दन १८२९।

२—स्मिथ विन्सेंट महान मुगल अकबर पृ १४।

३—अंग्रेजी फारसी कोष पृ० सं० १११—

baqqal A green grocer a vend or of provisions in general (in India) a grain merchant a Corn chandler

४—अकबरनामा अ०३१—पृ ४०५ ४०६।

(अकबर से) कासिम अली खाँ 'बक्काल' को खान खानम के पास यह पूछने के आशय से भेजा कि वह राय दे कि आगे क्या किया जाय' ..... ।[1]

शेरशाह नीच कुल में उत्पन्न —

मुगल व उनके दरबारी लेखक अपने उच्च वंश जिसको व तैमूर से सम्बद्ध बताते थे के बारे में बड़ा बड़ा हुआ मन रखते थे। तारीख-ए-दाऊदी के अनुसार हुमायूं द्वारा शेरशाह तक का यह कह कर उपहास किया गया है— नीच-कुल में उत्पन्न (राजा होते हुए भी) उसमें एक साधारण सैनिक की गंध आती है ..... । यह भी कहा गया कि शेरशाह का दादा केवल एक घोड़ों का व्यापारी था और इसलिए पन्नी में बहुत नीचा था। बाद में जब शेरशाह बादशाह हो गया यह दावा किया गया कि वह घूर के शहन शाहानी खानदान का वंशज था।[2] फरिश्ता ने उसके लिए कहा कि वे अपने को घूर के सुल्तानों के वंशज मानते थे' (फारसी पाठ्य-पृ ०)। कानूनगो के मतानुसार यह सही नहीं है और हसन का पिता इब्राहीम शेख का एक निम्न वर्गीय अफगान था और उसका घोर के सुल्तानों के खून से कोई सम्बन्ध न था।

अबुल फजल के शब्दों में—

'इब्राहीम एक घोड़े का व्यापारी था और उसकी व्यापारियों के समूह में कोई विशेषता न थी।[4]

इसकी पुष्टि खुलासातू-ए-तवारीख द्वारा होती है।

'इब्राहीम जहूर-ए 'फरीद आईनी शेरशाह सम्बामरी-ए-अस्पान-ए कर'।

१—तबकात-ए-अकबरी—पृ १८२—जिल्द—२ साथ द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद। वही—पृ० २४९ पर 'फरिश्ता' राय बक्काल का भी उल्लेख है।

२—अब्बास सरवानी द्वारा अपनी तारीख में शेरशाही में दी गई वंशावली इस प्रकार है।

मियां इब्राहीम
|
मियां हसन
|
(फरीद निजाम १ पत्नी से) (अली मुहम्मद) (खुर्रम गाजी खां) सुलेमान मुहम्मद)
२ री पत्नी से ३ री पत्नी से ४ थी पत्नी से

३—फारसी 'हुमायूं बादशाह' जिल्द १ से १८—पृ १९० पादटिप्पणी टीका—२

४—अकबरनामा—पृ १२६

५—मुनतखाब-ए-तवारीख-ए-हिन्दी पाठ-मा० अकबर हसन द्वारा संपादित पृ ११४

रणजीत सिंह के पुत्र हुकम सिंह ने व्यापार नहीं किया और फौजी पेशा किया बहुत समय तक वह अकबर के दरबारी रत्नों के साथ गायकवाड़ की सेवा में रहा और उसके साथ उसके स्वामी बड़ौदा।[1]

मेजर लेपल ग्रिफिन इस विषय में सहमत हैं कि डोगरे राजपूत का मिश्रवंशी था और डोगर जाति का था जो उस समय तीन प्रकार की थी—एक तो वह जो वैश्य जाति के डोगर वंश[2] से बनी थी और दूसरी भर्तियों[3] की जो रियासत में बड़ी संख्या में एकत्र हो गए थे। जाति और वंश के मध्यकालीन मत के अनुसार इन वर्गों अथवा जातियों में से कोई भी नीच या निम्न कोटी की नहीं कही जा सकती। मध्यवर्ती युग में इनका सम्मान रूप से आदर किया जाता था और ये कथित उच्च जातियों में से थी। इसलिए डोगरे के नीच कुल के ज्ञान के सम्बन्ध के बुनियाद वर्तमान राजनैतिक साजिश का फल है न कि उसमें कोई ऐतिहासिक सत्य है।

१—अकबरनामा पृ ३२७

२—१८ १ की जनगणना की रिपोर्ट।

इस विषय में जिसमें पूछ-ताछ की गई और परिणामों के अनुसार वंशों का पुनः वर्गीकृत किया गया। डोगर जो ब्राह्मण जाति के होने का दावा करते हैं एक असल जाति डोगर भार्गव के रूप में दिखाए गए हैं। उनमें मूलों के वंश में विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हैं। दूसरी ओर डोगर क्षत्रियों का एक वर्ग है जिसमें विधवा-विवाह की अनुमति है और जिसका भार्गव जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

३—गुड़गांव (पूर्वी पंजाब) का जिला गजटियर—

'डोगर ब्राह्मणों के वंशज होने का दावा करते हैं। वे अपने नाम की व्युत्पत्ति डोंगी से बताते हैं जो मानसोच के पास खड़ी चोटी वाली पहाड़ है जहाँ उनके पूर्वज ऋषभ (ऋषि) ने तपस्या की। प्रसिद्ध डोगरे रियासी का एक डोगर था।

डा आर्णोल्ड्स मार्च – डी मुगल एम्पायर समकालीन इतिहासकारों ने डोगरे को ब्राह्मण या वैश्य कहा है, वास्तव में डोगर भार्गव था (मीर ब्राह्मणों की उप जाति) पृ० सं०१२९

अध्याय—२

अफगानों का उत्थान तथा हेमू

जिस समय सुल्तान बहलोल दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हिन्दुस्तान के विभिन्न सूबों का शासन कई छोटे राजकुमारों द्वारा किया जा रहा था और प्रत्येक शहर में 'खुतबा अलग-अलग व्यक्तियों के लिए पढ़ा जाता था।[1] मखजन-ए-अफगान के लेखक द्वारा कही गई बहलोल के आरंभिक जीवन की कहानी के अनुसार बहलोल की शक्ति का आरंभ उसकी सरहिंद की गवर्नरी के समय हुआ जहाँ कि उसने संपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। वह सुल्तान शाह का जो इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध था और जो मुबारक शाह के समय में सरहिंद की सरकार संभाले था मतीजा था। उस समय जब कि चारों ओर अराजकता फैली हुई थी बहलोल ने अपने को सिंहासन पर स्थापित किया और दिल्ली वासियों को केवल नाम के बादशाह सुल्तान मुहम्मद जिसको हस्तीफा देना पड़ा के स्थान पर अपने को बादशाह मान लेने के लिए राजी किया। हिस्सार खां के नाम से प्रसिद्ध हाजी डैवामी के ऊपर सुगम विजय ने अफगान साम्राज्य की स्थापना के लिए रास्ता साफ कर दिया। अफगान इतिहासकारों में एकमत से भारत में अफगान शक्ति के आरंभ का सुल्तान बहलोल लोदी की नीति का फल बताया है।[2]

बहलोल लोदी की सफलता कुलीन अफगानों के साथ अपनी प्रभुता को बराबर लेने की धारणा में निहित थी। उसने कहा था

'कि हिन्दुस्तान पर प्रभुता उसकी होनी चाहिए जिसने एक घाट पर अफगानियों के साथ शासन किया हो और क्योंकि वह स्वयं ही अपनी जातियों और कुलों की संख्या से हिन्दुस्तानी सम्राटों से ऊपर गिना जाता था और गरीबी और दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते हुए भी अफगानों का पूरा राष्ट्र उसके सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव थे उसने उन्हें बुलाने की और उन्हें अधिक संकीर्णता की दशा से निकालने तथा शक्ति सम्पन्न और धनवान बनाने में

१—निजामउद्दीन—मखजन-ए-अफगाना द्वारा अनुवाद—अफगानों का इतिहास लेखक ने अपना लेख तारीख-ए इब्राहीम शाही और तारीख-ए निजामी पर आधारित किया है।

२—ए० शेरवानी प्रसाद हुमायूं पृ ९१।

रक्षा करने की इच्छा प्रकट की'।[1] इससे स्वभावतः भारत में अफगान जातियों का अभूतपूर्व आगमन हुआ। बहलोल ने 'प्रत्येक राज्य और जनजाति के मुखिया सामन्तों को (भारत) आने के लिए' फरमान निकाल।[2] अफगानों ने तुरन्त ही उसका प्रतिपादन किया और वे हिन्दुस्तान आने में बड़े प्रसन्न थे। उनमें से कुछ तो रोह साम्राज्य को लौट गए, परन्तु अधिकांश जिन्होंने उसके अधीन नौकरी की उत्तरी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक बस गए। कुछ ही समय के भीतर देश अफगान योद्धाओं से भर गया जो अपनी पत्नी व बच्चों के साथ यहाँ आकर बस गए। इस अन्तर्प्रवेश के प्रवाह का ऐसा तांता बंधा कि उन्होंने (अफगानों) हिन्दुस्तान में प्रति दिन प्रति मास और प्रति वर्ष पहुँचना आरंभ किया और मन भर के जागीरें प्राप्त कीं। इस नीति का परिणाम महान था—यही कि अफगान बहुत शीघ्र यहाँ के निवासी हो गए और हिन्द को अपनी मातृ भूमि समझने लगे।

शेरशाह के पूर्वज—

यह बहलोल के मुबारकी शासन काल की बात है जब कि शेरशाह के दादा मियाँ इब्राहीम सूर, हिन्दुस्तान आए। अब्बास सरवानी के अनुसार, इब्राहीम रोहड़ी के नाम से प्रसिद्ध सरबानी या सलरबानी नामक स्थान से आया था कि सुलेमानी क्षेत्र का नाम है। यह सम्बाई में ६ या ७ कोह[3] है और पशावर के पास कमालपुर[4] के किनारे बसा है। फरीद के पिता मियाँ हसन खाँ ने उसका नाम रखा। बहलोल के शासन काल में ही फरीद का जन्म १४८६ ई० में हुआ था।

१—तियामतउल्ला दि मखजन-ए-अफगना अंग्रेजी अनुवाद डार्न द्वारा—पृ० ८० ८१।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० ९२।]

बहलोल सादी ने कहा—कोई अफगान जो रोह देश से हिन्दुस्तान में मेरी नौकरी करने आता है, उसको मेरे पास लाओ। मैं उसको ऐसी जागीर दूंगा जो अनुपात में उसके रेगिस्तानी जमीन से अधिक हो और जिससे उसे संतोष हो जाए लेकिन यदि वह रिश्ते अथवा दोस्ती के नाते आप में से किसी की नौकरी में रहना चाहे तो आप उसको संतुष्ट करने का प्रबंध करें। क्योंकि यदि मैंने सुना कि कोई रोह से आया हुआ अफगान जीविका-साधन या नौकरी न मिलने के कारण लौट गया तो मैं उस सामन्त की जागीर से सूबा जिसने उसे रखने से मना किया हो।

३—कोह (दो मील) (Karoha) A road measure of two miles फारसी अंग्रेजी कोष।

४—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० ९६-पाद-टिप्पणी।]

आरंभ में इब्राहीम एक शक्तिशाली अफगान प्रधान सामन्त महावत खां सूर जिसकी पंजाब के परगने हरियाना और शाहबाद में जागीरें थीं का अधिकारी हो गया। कुछ समय बाद इब्राहीम ने मेहदी खां से अपना संबंध तोड़ दिया और जमाल खां सारंग खां के पास भेजा गया जिसने उसके अधीन ४० घुड़सवार रख लिए और जागीर में परगना सारनौल दिया। इस प्रकार इब्राहीम और उसका पुत्र हिसार फिरोजा में बेजवाड़ा में बस गए। कुछ समय बाद हुसन इब्राहीम से अलग हो गया और सुल्तान बहलोल के महान सामन्तों में से एक उमर खां सरवानी की सेवा में लग गया।[1] हुसन खां को एक जागीर शाहाबाद में दी गई[2] जो मावली कहलाती थी और सरहिन्द सरकार में थी। उमर खां से यह प्रार्थना भी की गई कि बुजुर्ग फरीद को वह अपनी प्रजा बना ले लेकिन बहुत छोटा होने के कारण उसे वह सम्मान देना मंजूर नहीं किया गया और मावली में केवल एक ठाकुरी दे दिया गया।

इब्राहीम की मृत्यु के बाद हुसन ने उमर खां से प्रार्थना की कि नारनौल में उसके पिता की जागीर उसको प्रदान कर दी जाए। उसे वह मिल गई और जमाल खां उसको अपनी प्रजा बनाने के लिए भी राजी हो गया। यह उमर के कहने-सुनने का प्रभाव था कि जमाल ने उसे यह सम्मान दिया।

जमाल खां का स्थानान्तरण—

बहलोल के उत्तराधिकारी सुल्तान सिकन्दर ने जौनपुर की विजय के बाद पूर्वी जिलों का शासन १२ हजार घुड़सवारों की शक्ति सहित जमाल खां के सुपुर्द कर दिया। जमाल का कृपापात्र होने के कारण हुसन को पूर्व में उसके साथ जाने के लिए कहा गया और उसे बारानसी के पास सहसराम हाजीपुर और खवासपुर टांडा में ५०० घुड़सवारों के भरण-पोषण के लिए जागीर मिली। हुसन के साथ-साथ उसका परिवार भी नए भूखण्ड में आकर बस गया परन्तु 'सुलेमान की मां के प्रति हुसन का झुकाव होने के कारण और इसमें फरीद की ओर उसके स्नेह और प्रेम को ठेस पहुँचने' के कारण उसके पारिवारिक वातावरण में बदलने के स्थान पर और बढ़ गए।[3] जागीर के बारे में जान और फरीद की उपेक्षा

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ ९६— 'यह मालूम होता है कि बहलोल के दरबार का एक उच्च प्रधान मियां हुसन खां सरवानी जिसे खान-ए-आजम उमर खां की उपाधि मिली थी अपने सबसे बड़े पुत्र के जन्म के कुछ समय बाद ही सुल्तान द्वारा लाहौर का गवर्नर बना दिया गया था और उसे सरहिन्द में जागीर दे दी गई थी।

२—निजामतउल्ला दि मखजन-ए-अफगाना अंग्रेजी अनुवाद डार्न पृ० ८०-८१।

३—निजामतउल्ला दि मखजन का अंग्रेजी अनुवाद डार्न पृ ८०-८१।

न पिता और पुत्र के बीच की खाई और गहरी कर दी जिसका फल यह हुआ कि फरीद जौनपुर चला गया। वह वहाँ दो उद्देश्यों से गया था—अपनी शिक्षा पूरा करने के लिए और जमाल खाँ के सरक्षण में सेवा प्राप्त करने के लिए। फरीद के मन मस्तिष्क में हसन घबड़ाया और उसके प्रति जमाल खाँ की दृष्टि में प्रभाव डालने के लिए उसने इस अवसर पर जमाल खाँ को पत्र लिखा। इसमें उसने जमाल खाँ से फरीद को जो उसके पास बहुत असन्तुष्ट होने के कारण भेजा गया था मनाने की तथा अपनी सिफारिश के लिए वापस भेजने की प्रार्थना की।[1] जमाल ने फरीद को बुलवाया और उनका उसके पिता की इच्छा से स्वागत किया। फरीद ने उसका मालगुजारी से सम्बन्धित मामला हल कर दिया, यह कहना ठीक है कि उसकी साहित्य की ओर पहले ही रुचि हो चुकी है और शिक्षा प्राप्ति के लिए सहसराम से जौनपुर कहीं आगे था और वहाँ उसके लिए अवसर भी अधिक थे। इसके बाद फरीद ने अपनी तत्परता के साथ शिक्षा की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया—काजी महमूदुल हसन की टीका शिद्दियिया के साथ कुरान, अरबी साहित्य, मुअल्लिमा बुस्ता और सिकन्दरनामा जैसे कुछ प्रसिद्ध साधारण इतिहास का शिक्षा की ओर और विशेष रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास की ओर अपने की सलाह[2] जैसा कि बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—फरीद सदैव प्राचीन बादशाहों के गुणों पर लिखी गई पुस्तकों का पढ़ना पसंद करता था। इतिहासकार फरीद की साहित्यिक सफलताओं की प्रशंसा करने में एकमत हैं—फरीद का सांसारिक मामलों का विस्तृत अध्ययन और अनुभव यह प्रकट करता है कि वह जौनपुर पर्याप्त समय तक रहा।" यह अवधि कम से कम १० वर्ष की—सम्भवतः १५०१ ई० से १५११ ई० तक अर्थात् उसके २५ वें वर्ष तक—कही जाती है।[3]

पिता व पुत्र का राजीनामा—

फरीद को सहसराम वापस लाने के लिए राजी करने के प्रयास में असफल होकर हसन स्वयं जौनपुर गया और अपनी जागीरदारी के पक्ष में फरीद के पक्ष में स्थायी रूप से लिए सहमत हो गया। फरीद जागीर पर पूरा अधिकार दिए जाने की शर्त पर उसका भार सम्भालने के लिए तैयार हो गया। हसन भी ऐसा करने को तुरन्त राजी हो गया। फरीद सहसराम पहुँचा और बड़ी तत्परता से अपनी जागीर का शासन करने लगा। स्वयं हसन खाँ को जौनपुर में अपने स्वामी

१—निजामउद्दीन कि मखजन अंग्रेजी अनुवाद खान पृ ८० ८३।
—निजामउद्दीन कि मखजन अंग्रेजी अनुवाद खान पृ० ८०-८१।
२—तुलना कीजिए अब्बास सरवानी पृ० ६० ६२; इलियट ४ ११३।

की सेवा में प्रस्तुत होने के लिए आदेश दिया गया। कुछ ही समय में फरीद ने जागीर के मामलों को सुव्यवस्थित कर दिया और सम्पूर्ण जागीर में पुन: शांति स्थापित कर दी। उसने २ घुड़सवारों की सेना का एक दल तैयार किया और पड़ोसी जागीरदारों को अधिकार में कर लिया।

फरीद जागीर का प्रबंध १५१८ ई या १५१९ ई तक करता रहा अर्थात् उसने अपने पिता के परगनों पर ७ या ८ वर्ष तक सफलता पूर्वक राज्य किया। इसी के साथ में पूर्वी सूबों में बरिया खाँ लोहानी से विद्रोह किया। फरीद का जागीर से हटना उसकी सौतेली माँ (अर्थात् सुलेमान की मा) के छल के कारण हुआ। दोनों भाई सहसराम छोड़कर आजीविका की खोज में आगरे की ओर चले गए और १५१८ ई० में सुल्तान इब्राहीम के दरबार में नौकरी के लिए पहुँचे।

शेरशाह के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं का तिथिक्रम—

१५१९ ई०—अपने पिता का घर दोबारा छोड़ा।

१५२० ई०—फरीद के पिता मियां हसन की मृत्यु।
बीसल खां ने शाही फरमान फरीद के नाम में प्राप्त किया।

१५२१ ई —बिहार के गवर्नर बरिया खां लोहानी के विद्रोह से उपद्रव पैदा हो गई।

१५२२ ई०—फरीद ने बहर खां के अधीन नौकरी कर ली और शेर खां की उपाधि प्राप्त की।

१५२६ ई०—शेर खां का सस्सारम[1] में आगमन जब कि उसका स्वामी कन्नौज में मई १५२६ ई० में मुगलों की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। शेरखां ने बहादुर खां लोहानी के अधीन नौकरी कर ली।

१५२७ ई०—सस्सारम में विरोधी दावेदारों से शेरखां को हरवाया जिसने दिसम्बर १५२६ ई के बाद और जून १५२८ ई० तक जुनैद बारलास के मुकाबिले के रूप में बाबर की नौकरी की।

१५२८ ई०—चंदेरी पर चढ़ाई में समय बाबर का साथ दिया।

१५२८ ई०—बाबर के पूर्वी आक्रमण की सफलता के फलस्वरूप शेरखाँ को अपनी जागीर फिर से मिल गई।

१५२९ ई०—बिहार में महमूद लोदी की निष्फल चढ़ाई और बाबर के हाथों उसकी पराजय के बाद शेरखां को जागीर अंतिम रूप से सौंप दी गई।

१—सस्सारम सहसराम बिहार का एक जिला।

शेरशाह बिहार के नायब-सूबा के रूप में—

१५२९ ई०—बिहार में अराजकता। बहार खाँ को पुत्र सूबेदार बनाया। व दादू को संरक्षिका और उसन खेर खाँ को अपना नायब बना दिया।

१५ ० ई —चुनार पर कब्जा।

१५३१ ई०—जमवरी में पर खा का हुमायूं के सम्मुख समर्पण करना।

शेरशाह का सर्वाध्याधिकार प्राप्त करना—

१५३४ ई०—सूरजगढ़ की लड़ाई। बिहार के बिना मुकर (नाम) के बादशाह के रूप में।

१५३५ ई०—फतूह मालिका का बंगाला प्राप्त होना और उत्तरी-पूर्वी बिहार जीतना।

१५३६ ई —गौर (पूर्वी बंगाल का एक नगर) के प्रवेशद्वार पर बंगाल के महमूद शाह के विरुद्ध लड़ाई।

१५३७ ई०—बंगाल पर दूसरा आक्रमण —शेरशाह दूसरे कम सुरक्षित मार्ग से गया और ८ ०० घुड़सवारा १ ५ ० हाथियों और ३०० किश्तियों के बेड़े तथा २ लाख व्यक्तियों के साथ गौर पर कब्जा कर लिया।[1]

शेरशाह और मुगल—

१५३७ ई०—हुमायूं से मुठभेड़।

अक्तूबर १५३७ से मार्च १५३८ तक—चुनार का घेरना। बंगाल को लौटना और गौर पर अधिकार करना। महमूद शाह की पराजय।

१५३८ ई०—रोहतास गढ़ के किले पर कब्जा।

१५३८ ई०—हुमायूं का बंगाल की ओर कूच करना। गढ़ी में मुगलों की पराजय। शेरशाह का गौर से पीछे हटना। पुर्तगाली इतिहासकारों का कहना है कि 'शेर खाँ ने गौर नगर को विध्वंस कर दिया और लूट लिया और ६ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं पर अधिकार किया।'[2]

दिसम्बर १५३८ ई०—मिर्जा हिन्दाल का आगरा में विद्रोह। हुमायूं का बंगाल में कूच करना।

१—चार टिप्पणी बंगाल में पुर्तगालियों का इतिहास—पृ० ३५ ३८—एशिए की आरोल् का एशिया—दिसम्बर ६ भाग २—पृ० १००।

२—बैम्पस पुर्तगालियों का इतिहास—पृ० ८०।

जब कि १५३८ ३९ की शरदऋतु में हुमायूं विश्राम करता रहा शेरशाह कार्यशील था। उसने बनारस पर कब्जा किया बहरादुर छीना और एक ओर कन्नौज और संभल के बीच का और दूसरी ओर जौनपुर और बहराइच के बीच का सम्पूर्ण प्रदेश शेरशाह के हाथ में आ गया। उसने अफगानों का एक बार फिर एक झंडे के नीचे इकट्ठा किया और सर्वसाधारण के सम्मुख यह घोषणा की कि वे भारत से मुगलों का निकाल बाहर करेंगे। दूसरी ओर हमायूं की वापसी दुर्भाग्य से दुरुह हो गई और वह आगरा में उसी बार विपत्तियों में ग्रस्त कर लिया।

चौसा की लड़ाई

लड़ाई २६ जून १५३९ को हुई जब कि मुगल सैनिक शिविर में नींद की झपकी ले रहे थे। भोर होते ही अफगान सैनिक सहसा उन पर टूट पड़े। वहां से मुगल भाग खड़े हुए। जब मुगल सम्राट ने अपनी फौजें इकट्ठी कीं तो वह २०० व्यक्तियों से अधिक नहीं जुटा पाया। लगभग ८ आदमी काम आए। उनमें से अधिक तो मारे गए, शेष नदी में डूबकर मर गए। शेरशाह ने गंगा पार की और कन्नौज तक पहुँचा। हुमायूं एक भीड़ की भांति आगरा को वापस चला गया। असहाय और अकेला मुगल औरत अपने घर के साथ पड़ी। शेरशाह ने उनके साथ एक शहजादे का सा व्यवहार किया जैसा कि अब्बास सरवानी द्वारा दिये गए निम्नलिखित उल्लेख से प्रकट होता है।[1]

'जब कि सम्राट हुमायूं की रानी और कुलीन स्त्रियां और बहुत सी औरतों के साथ पर्दे के पीछे से आई तो वह अपने घोड़े से उतर पड़ा और उनका हर प्रकार से आदर-सत्कार किया और उन्हें सांत्वना दी।[2]

बंगाल और बिहार का बादशाह (१५३९-४०)—

शेरशाह ने अपनी विजयश्री को पूर्ण करने में कोई समय नहीं गंवाया। उसने अपने को बंगाल और जौनपुर का बादशाह घोषित कर दिया। इन विजय के पश्चात् वह विद्रोही प्रदेशों का वास्तविक शासक हो गया। आगरा भी सफलता की सूचना पाकर उत्तेजित होकर एक नए जोश से भर गए। उन्होंने अपनी विजय को एक राष्ट्रीय विजय समझा—वह विजय जो कि उन्होंने विदेशी आक्रमणकारी मुगलों पर प्राप्त की थी। दिसम्बर १५३९ में शेरशाह और

१—अब्बास सुल्तानिया प्रति—१६६ १६७ इलियट ४ ७४ ३७६।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ १३५

चौसा की हार के ऐसे कारण थे जिनका स्पष्टीकरण विशेषरूप किया जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि हार और जीत का निर्णय करने में विश्वासघात का बहुत बड़ा हाथ था।

वास्तविक रूप से भारत में अफगानों का बादशाह घोषित कर दिया गया। सिक्के प्रचलित किए गए और उसके नाम पर खुतबा पढ़ा गया। उसी समय 'सौ उपनाम की जगह "शाह" रखा गया। उसने शाह-आलम की अतिरिक्त उपाधि भी ग्रहण कर ली। परन्तु दरअसल में शिकरी १४८ में गढ़े गए सिक्कों की छाप की जांच से यह पता चलता है कि "शेरशाह" की उपाधि पहले भी थी सिक्का सं० १२१३ और १२३०-३१ पर भी 'शेरशाह अस-सुल्तान' शब्द अंकित हैं। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शेरशाह ने बिहार के बादशाह की उपाधि तब ग्रहण की जब कि हमायूं बंगाल में अकेला घिरा हुआ था और हिन्दू मित्रों ने आगरा में विद्रोह किया था। वृत्तान्तों में भी इस बात का प्रमाण है कि शेरशाह ने 'शाह' की उपाधि चौसा की लड़ाई से पूर्व ग्रहण की थी।[1]

शेरशाह का पश्चिम की ओर कूच—

बंगाल बिहार और पश्चिम में कन्नौज तक के सम्पूर्ण प्रदेशों का स्वामित्व प्राप्त करके शेरशाह ने अपने पुत्र को कालपी और उरई पर आक्रमण करने के लिए भेजा। स्वयं सेना को मालवा और गुजरात की ओर भेजा गया। अफगानों में अभूतपूर्व उत्साह था और उनकी पानीपत की हार (१५२६) का बदला लेने और हिन्दू में मुगलों को निकाल बाहर करने की बड़ी इच्छा थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि ऐसे प्रशंसनीय प्रयास में उन्हें सेना नायकों में राजपूतों और हिन्दुओं में सहयोग और सक्रिय सहायता मिली।

आगरा में हलचल—

आगरा में वास्तविक रूप से अराजकता थी। चारों ओर उपद्रव फूट पड़ा था। कामरान ने अपनी चौसा वापसी चालें आरम्भ कर दी और वह पंजाब खिसक जाने को उद्यत था। इसी बीच शेरशाह स्वर्ण दोआब पर आक्रमण करने

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ ११७ इस प्रमाण को दृष्टि में रखते हुए ना कानूनगो का कथन कि 'अब्बास इस विषय में चुप है कि कब और कहां शेरशाह सहसा पर बैठा' निराधार है। अब्बास की पुष्टि अहमद यादगार और अबुल्फजल तारीख दाऊदी से होती है जो कहते हैं कि चौसा के बाद ही शेरशाह अफगानों की अनुमति से सहसा पर बैठा और राजसी शान-बान अपनाई।

शेरशाह के सिक्कों पर नागरी और फारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्कों पर और स्वास्तिक के चिन्ह बाने भी पाये गए हैं। भायरा टकसाल के शेरशाह के सिक्कों में चित्त पर, कमला और टकसाल का नाम पट्ट पर फारसी में बादशाह का नाम व सीपे नागरी में सही शेरशाह लिखा है।

के लिए आ गया था। मुगल फौजें बकड़ाई हुई थीं आम मलदेव सभी की और लड़ने की सहचि प्रबल थी। जैसे तैसे मुगलों ने अपनी फौजें जमा की और कन्नौज के ११ मील उत्तर-पश्चिम में मोजपुर-मौलाघाट पर आ पहुँचे। शेरशाह ने भी नदी की दूसरी ओर डेरा डाला। अंतिम निर्णय करने वाली लड़ाई को मुगलों के नदी पार करने तक स्थगित कर दिया गया था उन्होंने कन्नौज के समीप पहुँचकर सही।

कन्नौज की लड़ाई (१७ मई सन् १५४० ई०)—

१७ मई १५४० ई —को दोनों फौजें युद्ध के लिए तैयार थीं।

हुमायूं की बहन गुल बदन के शब्दों में—

'इसके बाद कन्नौज में वह अद्भुत लड़ाई हुई, जिसमें १०००० के मुकाबले में ४ ० सशस्त्र व्यक्ति बिना बंदूक चलाये आगे बढ़े हुए। चौसा की भांति यहाँ भी नदी में डूबकर हुई मृत्यु असंख्य थी और यहाँ भी सम्राट का एक निम्न श्रेणी के व्यक्ति ने बचाया। अब कुछ आदमी पुन जागरा चले गये। लेकिन हैदर कहता है 'हमने निराश और आशाहीन तथा हृदय-विदारक दशा में होते हुए भी पीछे रुक कर समय नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि आगरे चले गए।[1] मिर्जा हैदर के कथनानुसार दोनों फौजों की संख्या २० ००० व्यक्तियों[2] की थी। हो सकता है इसमें अतिशयोक्ति हो तब भी मुगलों के पास कम से कम १५ से ४० हजार व्यक्ति २१ भारी बंदूकें और ७०० कुंदेदार बंदूकें (जर्बजान) थीं। लेकिन इन सब तैयारियों के होते हुए भी मुगल परास्त हो गये।

'उनके दिल संघर्ष में नहीं थे वे उत्साहहीन व दिशाहीन थे और उनका पक्ष प्रदर्शन ठीक नहीं हुआ था[3]। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार 'हिन्दुओं ने कन्नौज की इस घटना की बिलकुल उपेक्षा की जान पड़ती है। सारे देश में असंख्य मुखिया और जमींदार बिखरे हुये थे पर हम उनका किसी एक का पक्ष लेते नहीं पाते। बिना उपेक्षा से हिन्दुओं में से अधिकतर सोचते थे हुमायूं

१—गुल-बदन हुमायूंनामा बेवरिज का अनुवाद—पृष्ठ ३२ ३३ भूमिका जैसे चौसा में वैसे ही कन्नौज में हुमायूं लगभग नदी में डूब गया था। वहाँ वह बजनी के समसुद्दीन मुहम्मद द्वारा बचाया गया था जिसकी पत्नी जीवी अनागो का उपनाम रखकर अकबर की मां हो गई थी।

२—मिर्जा हैदर लिखता है— भैंसा की खोड़ियों द्वारा खींची गई २१ गाड़ियां अतिरिक्त तारीख-ए रशीदी के उसी मकाम का प्रयोग करते हुए कहता है—२१ भारी बंदूकें जिनमें से हरएक भैंसा की ५० खोड़ियों द्वारा खींची गई थी।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० १४२।

के साथ का प्रमित होने देखा उससे इस बात की पुष्टि होती है कि मुगल अब भी विदेशी समझे जाते थे।"[1]

उक्त कथन कदाचित कुछ हद तक सही है और पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होता है। राजपूत अवश्य पृष्ठभूमि में थे परन्तु ऐसी परिस्थितियाँ हिन्दुओं के मुखिया मात्रों द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखी जा सकती थीं। मालवा में मराठा बाजा मुखिया की कार्यवाहियों के फलस्वरूप शेरशाह के पुत्र की मृत्यु हुई और राजस्थान में शेरशाह के प्रोपम को राजा मालदेव द्वारा रोक दिया गया। शक्ति का केन्द्र कुछ समय के लिए मेवाड़ और उदयपुर से बीकानेर और जैसलमेर को खिसक गया। इसके अलावा अफगान अलग जाति के अफगान अलग थे। उनमें अधिकतर हिन्दू सैनिक और मुखिया थे जैसा कि हिन्दुओं और अफगानों के बाद के सहयोग से प्रकट होता है। गौर से गजनवी तक की प्रत्येक लड़ाई में उनकी संख्या हजारों में थी है। क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है कि भारत में अफगानों की संख्या लाखों में रही होगी? दूसरी ओर जैसी जनसंख्या की बनावट थी उससे प्रकट होता है अफगान केवल सिपेसलार संभाल हुए थे वे जागीरदार थे व अच्छे सैनिक थे और उनके 'विदेशी मुगलों' को निकाल दो के नारे से उन्हें हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त हो गया था। सब लेखक इससे सहमत हैं कि मुगलों को विदेशी माना जाता था। डा० ईश्वरी प्रसाद तक ने इसको माना है। स्वभावतः अफगानों ने जो स्वयं बाहर से आये थे अपने को यहीं का नागरिक समझा और देश की रक्षा के कर्णधार होने का गर्व कर सके। इस प्रकार उनके लिए हिन्दुओं से सहयोग करना स्वाभाविक था और हर जगह हिन्दुओं की जन-संख्या अधिक थी।

इसी दृष्टि में इस कथन में अधिक तथ्य नहीं है कि "यह आश्चर्यजनक है कि राजपूतों ने इस संकट के समय भी शक्ति के लिए कोई प्रयास नहीं किया।" सरवाह के समय में राजपूतों के पर्याप्त शक्तिसम्पन्न होने और अकबर के समय में उनके जानदार प्रतिरोध का इतिहास इसको झूठा सिद्ध कर देता है। हिन्दू और राजपूत अफगानों के साथ-साथ बड़ी तत्परता से लड़ रहे थे। सवाल खाँ के अधीन वीर राजपूत थे। अलवर के हाजी खाँ और हेमू के भतीजे महिपाल को उनका पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त था। केवल किसी चोटी के नेता के न होने के कारण वे लोग पृष्ठभूमि में थे। यदि राणा सांगा का उत्तराधिकारी राणा भी उतना ही शक्तिशाली होता और राणा प्रताप से पहले ऊँची अवधि का वीर मेवाड़ के सिंहासन पर होता तो संकटमय स्थिति का पलड़ा उनके पक्ष में होता। इस कमी की पूर्ति हेमू से किसी हद तक हुई और उसने इस संकट का सामना भी उठाया। राजपूत पर्याप्त रूप से उसके साथ थे।

१—डा ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १२४ १२५।

शेरशाह-हिन्दुस्तान के बादशाह के रूप में—

अब्बास के अनुसार, शेरशाह ने बिलग्राम की विजय के बाद नदी पार की और कन्नौज पहुँचा। और वहाँ से 'बिर्माजीत गौड़ (एक राजपूत अधिकारी महादित्य गौड़) को बड़ी फौज के साथ पहिले से ही भेज दिया लेकिन उसको आदेश दिया कि वह सम्राट हुमायूं से जान बूझकर लड़ाई मोल न ले और उसने संभल की ओर दूसरी फौज भी भेज दी।[1]

जुलाई १५४०ई०रबी—१—९४७—हुमायूं आगरा से बाहर निकाल दिया गया। वह मेवत गया और फिर लाहौर की ओर रवाना हो गया। बहुत से मुगल आगरा में मारे गये। हुमायूं रोहतक और हिसार होता हुआ सरहिंद पहुँचा। वहाँ से वह मछवाड़ा गया और फिर बसंधर पहुँचा। खवास खां और बिर्माजीत गौड़ के अधीन अफगान और राजपूत जुलाई १५४ ई तक लाहौर पहुँचे। हुमायू ने जमादी २ हिजरी ९४७ के अंत में (१ अक्तूबर ११ अक्तूबर १५४० ई०) लाहौर छोड़ा[2] जब कि अफ्गानों ने नदी पार कर ली थी। लाहौर में अपने तीन महीने ठहरने के समय में हुमायूं बिछुरे हुए मुगलों को शेरशाह के दलों के बिरुद्ध न जुटा सका। कामरान तक ने उसकी सहायता नहीं की। कामरान-शेरशाह के षड़यंत्रों की पुष्टि जौहर के इस कथन से होती है कि मुगलों से समझौता करने के लिए शेरशाह द्वारा भेज गए खास दूत ने कामरान के लिए एक पत्र प्राप्त किया।[3]

शेरशाह द्वारा हुमायूँ का पीछा—

गुल-बदन ने हुमायूं के भागने का विशद वर्णन इन शब्दों में किया है—

'महामान्य बीबी हज-ताज के पास खवाजा गाजी के बाग में पधारे। प्रति दिन शेरखां का समाचार आता था। और उन तीन महीनों में जब कि सम्राट लाहौर में थे दिन प्रतिदिन समाचार आता था 'शेरखां चार मील आगे बढ़ा' —'चार मील'—यहाँ तक कि वह सरहिंद के पास आ गया था।

'इस समय महामान्य ने मिर्जा हैदर को काश्मीर से लेने के लिए नियुक्त किया। इसी बीच खबर मिली कि शेरखां वहाँ था। एक आश्चर्यजनक क्या घटना हुई और सम्राट ने अपनी सुरक्षा को कूच करने का निश्चय किया"।

बकाल भरी यात्रा के बाद वे आखिर बक्खर पहुँच गए"[4]

१—अब्बास इलियट ४ १७१ फारूकी के अनुसार, लड़ाई वास्तव में हरदोई जिले में बिलग्राम में हुई जो इस समय, कन्नौज से २१ मील दूर है। परन्तु यह मत दूसरे इतिहासकारों द्वारा नहीं माना जाता।

२—अबुल फजल अकबरनामा १५८-१५९।

३—जौहर स्टीवार्ट द्वारा अनुवाद पृ० २६।

४—गुल-बदन हुमायूं नामा बीवेरेज द्वारा अनुवाद पृ० १४०-१४७।

माहौर से निष्क्रमण का मर्मस्पर्शी वर्णन भी निम्नलिखित शब्दों में उपलब्ध है जिस समय कि शेरशाह के विवाह (ब्याह) पार कर लेने की सूचना मिली थी और माहौर का किसी समय भी संकट था।

"यह पुनर्जीवन का सा दिन था—व्याकुलता चरम सीमा पर थी और हम भागने के लिए, उपमा की भाँति उसका भी अनुभव कर सकना संभव नहीं था। यह कहा गया है कि उस दिन के निष्क्रमण में २ लाख आदमियों ने माहौर छोड़ा। यातायात के सब साधनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया गया।[1] शेरशाह ने मुगलों का पीछा तब तक किया जब तक कि वह हिन्द की सीमा के बाहर नहीं हो गए। कामरान तक को जो अफ़ग़ानों से समझौते की बातें कर रहा था सिन्ध पारकर मत तक हिन्द से बाहर निकाल दिया गया।[2] इस प्रकार मुगल हिंदुस्तान से निकाल बाहर किये गये। शेरशाह अपनी शक्ति की चरम सीमा पर—

मुगलों का हिन्द से बाहर निकाल कर शेरशाह ने गक्खड़ों का अधिकार न किया और गक्खड़ों के मुखिया राय सारंग की जिम्मा ही काम सिपुर्द किया। देश का व्यवस्थित करके और रोहतास-दुर्ग के निर्माण की आज्ञा देकर, शेरशाह आगरा और धौलपुर को लौटा। ग्वालियर के किले[3] पर अधिकार कर लिया गया और शेरशाह ने उस का शासन सुव्यवस्थित करना आरंभ कर दिया। वह को ४७ क्षत्रों में बाँटा गया। वह अपनी अधिकतर चढ़ाइयों में सफल रहा—

१—मुग़ल-बादशाह हुमायूँ नामा बेवेरेज का अनुवाद भूमिका—पृ० १२ ११

२—मुग़ल राय सुमायन उर्फ़-शेरशाह बाबर के अनुसार कामरान को शेरशाह से काबुल के साथ-साथ माहौर पाने की आशा थी। मोहम्मद हादी कूबर की द्वारा लिखित एक दूसरी फ़ारसी पुस्तक तरजीरियात उम नवातीन के अनुसार कामरान ने यह कहा—

'यदि मित्रता के प्रतीक के रूप में मुझे पंजाब न दिया जाय तो मैं ऐसे कार्य करूँ कि उसका (शेरशाह का) सपना करने का किसी का साहस न हो।" इस प्रकार काजी अबुल्मा के द्वारा कामरान शेरशाह से गुप्त रूप से समझौता कर रहा था। लेकिन समझौता असफल रहा। हुमायूँ की शांति-वार्ता का भाग्य भी ऐसा ही रहा जिस अफ़ग़ानों के आदेशों ने मान मार दी। वह कामरान या हुमायूँ किसी के लिए भी पंजाब छोड़ने को तैयार न था। उसका सीधा सा उत्तर था – 'मैंने तुम्हारे लिए काबुल छोड़ दिया है। तुम्हें वहाँ जाना चाहिए।

३—अकबर के अनुसार पुजारा खाँ की सहायता से शेरशाह ने ग्वालियर को घेर लिया और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया— जुलाई १५४० ई०—अगस्त १५४२ ई०)। ग्वालियर में मुगल सेनानायक अबुल कासिम बेग ने उसके सामने हथियार डाल दिए।

१५४२ ई०—मालवा पर अधिकार। सुजातखाँ मालवा का शासक बनाया गया। रणथंभौर की विजय।

१५४२-४३ ई०—मुल्तान में बलूचियों से लड़ने के लिए हैबत भेजा गया।

१५४३ ई०—रोहतास पर कब्जा—राजा प्रताप सिंह के प्रतिनिधि पूरन मल की हार।

१५४६ ई०—जोधपुर के राजकुमार—मालदेव अजमेर के महाराजा नागौर और कई अन्य देशों के विरुद्ध युद्ध।

नवम्बर १५४४ ई०—कालिंजर का घेरा—राजा कीरत सिंह ने वीरतापूर्वक सामना किया। शेरशाह ने किले तक पहुँचने के लिए ऊँचे ऊँचे मार्ग बनाये और उनकी ओर सुरंगें बिछवाईं। इस ऐतिहासिक घेरे की कार्यवाहियों में १०वीं मुहर्रम९५२ या ५ मार्च १५४५[1] ई० को शेरशाह आग की लपटों में जो कि दीवार की आड़ करके छुपे हुए थे के साथ-साथ उठी थी झुलस गया।[2] यद्यपि इस बीच अफगान की जान किले को अधिकार में करते हुए चली गई, किला अफगानों के ही कब्जे में आया। इस प्रकार ५ वर्ष ८ मास और १३ दिन के शासन के बाद शेरशाह की जीवन-लीला समाप्त हो गई।[3]

इस्लाम शाह का गद्दी पर बैठना—

अचानक मृत्यु हो जाने के कारण शेरशाह अपनी इच्छा के उत्तराधिकारी का नामांकन न कर सका। न तो उसका बड़ा पुत्र आदिल खाँ और न उसका छोटा पुत्र जलाल उसके साथ था। जलाल निकट होने के कारण उसके शिविर में तीन दिन में पहुँच गया और उसने अपने दृढ़ व्यक्तित्व के प्रभाव से अपने को अफगान सम्राट घोषित कर दिया। उसने शाह की उपाधि धारण की और इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब्बास ने अपने पुत्रों में से किसी के बारे में भी उच्च धारणा नहीं की 'एक विलासी दुराचारी मूर्ख और आराम का दीवाना था तो दूसरा दुष्ट और दूसरों पर दोषारोपण करने वाले स्वभाव का था।[4] एक लेखक के अनुसार इस्लाम शाह 'चतुरता में अपने पिता से भी आगे था और अत्याचारी शासन करने वाला था।[5] जब कि शेरशाह ने अपने बन्धु-बान्धव अफगान प्रधानों और वीरों की सहायता

१—डा० आर० पी० त्रिपाठी के मतानुसार २१ मई १५४५ मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन—पृ० १७।

२—अनुवाद फरिश्ता अकबरनामा जिल्द १ पृ०—१५८ १५९।

३—अनुवाद फरिश्ता आईन-ए-अकबरी—जैरेट—२-पृ० १५९ १६०।

४—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १४१।

५—अनुवाद फरिश्ता अकबरनामा १ पृ०—१५८ ५९।

और इच्छापूर्वक सहयोग से शासन किया—इस्लाम शाह अफगान सामन्त शाही की जड़ें उखाड़ने और अपनी तानाशाही को बढ़ाने के कार्य में रत था। उसके रिश्तेदारों और सामन्तों में से जो उसके द्वारा मारे गये बन्दी बनाये गये या कैद कर लिये गये उनमें से कुछ के नाम यह थे 'आदिल खां और शेर भाई अलाल खां कुतब खां सूर बिसातीर खां सूर और कमाल खां सूर, बैन खां नियाजी सईद खां नियाजी और मम्मू खां नियाजी शहबाज खां तूहानी बर्मजीद खां मौज दाउद खां लोधाई खां ईसा खां नियाजी और गुजरात खां ..."। इस्लाम शाह ने अपनी सावधानी और कठोरता द्वारा सामन्त को कुचलता का बनाये रखा। और बदायूनी द्वारा कहा गया है कि उसके साम्राज्य के दूर से दूर गांवों में भी हर शुक्रवार को दरबार लगता था जिसमें सिंहासन पर राजा का एक पद-चाप राजा के प्रतिनिधि के रूप में रखा जाता था और शाही कानून सबों को पढ़कर सुनाए जाते थे।[1] व [2]

इस्लाम शाह का सुधार-सम्बन्धी उत्साह—

"इस्लाम शाह ने अपने पिता के बहुत से नियम और संस्थाओं को बनाये रखा जैसे—डाकघर पद्धति सड़कों और सरायों का विस्तार एक कुशल सेना का पोषण और सीमा पर और भीतरी भाग में दृढ़ किलों का निर्माण—उदाहरणार्थ—मनकोट और रसीमगढ़। सरशाह की सरायों के बीच में हर आधे कोस पर उसने एक और सराय बनवाई। हर सराय पर भिश्ती बांटी जाती थी और यात्रियों को विभिन्न सुविधायें दी जाती थीं। हिन्दू और मुसलमानों के साथ एक सा बर्ताव होता था। उसने सेना में कड़ा अनुशासन रखा। उसने सैनिक सेवा के लिए वही पद्धति चालू रखी मुश्किल के युद्ध के हाथी बनने में किये गये और सवार की वंशानुगत सीधी लागू कर दी। सवा १०० २०० और ५०० प्रत्येक की टुकड़ियों में बनी थी। "१० की प्रत्येक टुकड़ी के साथ एक फारसी लेखक (युद्ध वृत्तान्तों में तुर्की लेखक) और एक हिन्दी लेखक होता था सेनाओं के निर्वाह के लिए जमीनें प्रदान की जाती थीं। ५००० १०००० और २०००० व्यक्तियों की फौजों के लिए एक अफगान सरदार, एक अफगान मुन्शिफ एक हिन्दू मुन्शिफ और दो खजाना अफसर नियुक्त थे। अफगान वीरों की पदोन्नति करके उच्च पद पर नियुक्त किया जाता था। आमदनी-पद्धति को कुशलता से संचालित किया गया। सरशाह एक दृढ़ अनुशासनशील व्यक्ति था और आज्ञा का पालन कराके छोड़ता था।"

१—तबकात मुबारक बादशाह अध्याय १४-पृ० २२०।

२—अल बदायूनी जिल्द १—पृ०—४१६। मुन्तखाब उत-तवारीख रैंकिंग तथा मोर।

अम्बाला की लड़ाई (१५४७)—

आदिल खाँ और खवास खाँ द्वारा आयोजित विद्रोह आरम्भ होने से पूर्व ही दबा दिया गया। लेकिन ऐसे षड्यन्त्र की खोज से इस्लाम शाह का पहले से ही कड़ा और संदेहशील स्वभाव और कड़ा हो गया। उसने चुनार के खजाने को कब्जे में करके और अपने प्रतिद्वंदियों—अपने भाई के मित्रों—का नाश करके अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने पर ध्यान देना आरंभ किया। कुतब खाँ सूर, बेग खाँ नियाजी और दूसरे सामन्तों को जेल में ठूंस दिया गया। आदिल हुमायूं और खवास खाँ द्वारा किये गये एक दूसरे विद्रोह को इस्लाम शाह ने स्वयं मैदान में आकर कड़े हाथों से दबा दिया। आदिल हुमायूं और खवास खाँ अम्बाला के रणक्षेत्र से भाग गये और इस्लाम शाह ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसने 'दीनपनाह' कहलाने वाली दिल्ली की सीमा पर एक मजबूत किला बनवाया और उसका नाम सलीमगढ़ रखा। पंजाब पर अधिकार पूर्ण करके और दिल्ली को एक गढ़ बनाकर, इस्लाम शाह ग्वालियर लौट गया, जो उसने एक सुरक्षित स्थान समझा था।

गक्खर प्रदेश पर विजय (१५४८-१५५०)—

आने वाले वर्षों में पंजाब और गक्खर क्षेत्र में संकट फिर से उत्पन्न हो गया। आदिल हुमायूं ने विद्रोह किया लेकिन अब परास्त हो गया तो अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर रणक्षेत्र से भाग गया। गक्खर के मुखिया सुल्तान आदम के विरुद्ध विपत्ति २ वर्षों तक चलती रही जब कि उसने शान्ति की प्रार्थना की और आदिल हुमायूं को निकाल बाहर करने के लिए सहमत हो गया। अफगान सेनाध्यक्ष शाह मुहम्मद फरमुली को भगाया गया और इस्लाम शाह फिर से आराम करने लगा। ग्वालियर (पंजाब में गविसगढ़) में उसने भेंटों आदि के हिसाब को लोप के रूप में देकर तय करने का वादा किया परंतु उसने वायदे को निभाया नहीं।

इस्लाम शाह की हिन्दू प्रजा

तारीख ए—दाउदी[1] के लेखक के अनुसार शिवालिक प्रदेश के राजा और ग्वालियर (पंजाब में पहाड़ी राज्य) का राजा परसराम उसके विश्वासी प्रजाजन हो गए और वह उसका आदर करता था। इस्लाम शाह ग्वालियर के लोगों से प्रसन्न नहीं था क्योंकि वे देखने में अच्छे नहीं थे। उसके द्वारा ये पंक्तियाँ व्यंग्यात्मक रूप में बनाई गई कही जाती हैं—

शाह परसराम शाहानाम चमन सतानम बुतानम
चू बिनामाद ब मन मुम राम राम बुतानम
बिबुनाद बरफ ए मियाँ ए ग्वालियर बुतानम
बखाराद रात सियाद अगर हजार बुतानम।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० १०० पादटिप्पणी

'मुझे नहीं पता मैं परशराम को कैसे सलाम करूँ।
जब मैं उसका चेहरा देखता हूँ, तो "राम राम" कहता हूँ।
मैं जाकर खालिसपुर की प्रशंसा कैसे करूँ ?
मैं ऐसा नहीं कर सकता चाहे हजार प्रकार से यत्न करूँ ?

इस्लाम शाह और हेमू

हेमू को मान्यता सर्वप्रथम इस्लाम शाह के शासन-काल में मिली। अपनी व्यापारिक चतुरता और असाधारण प्रशासकीय क्षमता के कारण वह शाही रसद संग्रहकर्त्ता नियुक्त हो गया[1] और अन्तत वह बाजार का अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डन्ट) हो गया।[2] हेमू ने जिसमें व्यापारिक प्रवृत्ति थी और जिस संभवत व्यापार क्षेत्र का अनुभव था अपना कार्य इतनी अच्छी तरह किया कि इस्लाम शाह उससे बहुत प्रभावित हुआ। हेमू का मुबारिज खाँ और दूसरे अफगान सामन्तों से परिचय इसी समय हुआ होगा जिसके कारण बाद में उसकी पदोन्नति हुई।

अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में इस्लाम शाह को सतलज की ओर और उसके आप कूच करना पड़ा और नए कामरान से मुठभेड़ हुई। कहा जाता है कि इस्लाम शाह ने कामरान के प्रति उदासीनता से प्रतीक्षा किया यद्यपि वह उसके शत्रु हुमायूं के शिविर में भागा हुआ था। इसके फलस्वरूप वह पहले कहलूर के राजा के पास और बाद में जम्मू की सीमा पर विक्षिप्त हो गया। जब वह गक्खर प्रदेश में पहुंचा तो उसके प्रधान ने उसको बन्दी बनाकर मुगल बादशाह, हुमायूं के सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात् इस्लाम शाह बीमार पड़ गया और खामियर गया आया। अपने विरोधी कुटुंबों का नाश करने की यातनाओं में रत रहते हुए उसने २२वीं जिल्-हज्जा हिजरी ९६० (० अक्टूबर १५५३ ई०) को अपने जीवन की अन्तिम श्वांस ली।

१—डा आर्शीवादि लाल के अनुसार—हेमू की प्रथम नियुक्ति बाजार के तौल-बांट के निरीक्षक के रूप में हुई। इस विषय में बहुत मतभेद है।

२—बाजार का अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट)

तुलना की जिये अधीक्षक के साथ दो अफसरों की नियुक्ति। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के समय के बाजार के दो अधिकारी थे—दीवाने रियासत और शाहना-ए-मण्डी। बाजार का शाहना याकूब कहीं किसी को व्यापारिक कानूनों का उल्लंघन करते पाता था वहीं अपना सारा जोर लगा देता था। व्यापारिक विभाग की सफलता प्रबंधकर्त्ता पर थी। बरनी ने इसके चार कारण बताये हैं—(१) बाजार के नियमों को कड़ाई से लागू करना (२) करों की जानकारी रखना (३) लोगों में कानून निर्मित सिक्कों का अभाव और (४) अधिकारी की निष्पक्षता और उत्साह जो अपने कर्त्तव्यों का पालन ईमानदारी से करता था। (डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत पृ २१२)

अध्याय १

हेमू का उत्थान

अबुल फजल[1] के शब्दों में 'वह (हेमू) अपनी दक्षता के कारण सलीम खां (इस्लाम शाह) के अधीन एक सरकारी फुरीवाला[2] हो गया। उसको बाजारों की निगरानी सौंपी गई थी अर्थात् बाजार के 'पुलिस सुपरिन्टेंडेंट' के रूप में कार्य करने के लिए आदेश दिए गये थे। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि उसका मुख्यावास कहाँ था। इस्लाम शाह ग्वालियर के किले में आराम कर रहा था। हेमू गुड़गाँव जिले के एक स्थान रिवाड़ी जो अब एक रेलवे जंक्शन है का निवासी था। उनके पद का ग्रहण करने की ठीक तिथि का भी उल्लेख नहीं है। यह सम्भव है कि इस्लाम शाह के ग्वालियर चले जाने के कारण दिल्ली में एक ऐसे अधिकारी को नियुक्त करना आवश्यक हो गया हो। रिवाड़ी दिल्ली के बिलकुल समीप है और हेमू दिल्ली के बाजार जो उत्तरी भारत का मुख्य अनाज का बाजार रहा होगा (जैसा कि वह आज भी है) के मामलों का नियंत्रित करके अपने स्वामी के लिए एक योग्य सहायक सिद्ध हुआ होगा। अकबरनामे का लेखक इन शब्दों में हेमू की फिर से मिली चुनी प्रशंसा करता है।

'चालाकी में निपुण होने के कारण उसने बुरा भला कहने और व्यापार की सामर्थ्य के द्वारा अपने को धीरे-धीरे सलीम खाँ के सामने योग्य बना दिया। वह हमेशा लोगों को मुसीबत में फंसा देता था। दिखावटी रूप में वह अपने स्वामी से निष्ठापूर्ण व्यवहार कर रहा था पर वास्तव में वह अपने ही उद्देश्यों की पूर्ति की टोह में था और अपने घर को धनियों के सामान से सजा रहा था[3]।

अबुल फजल उसके प्रति घृणा और उपहास प्रदर्शित करता है क्योंकि अपने जीवन काल में उसने बाद में एक बार अकबर की फौजों से टक्कर लेने की "धृष्टता" की थी। उसने अपनी "चालाकी की उत्कृष्ट इतियों" द्वारा अपने स्वामी

१—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १—पृ ११५ ११६।

२—कुशल चीजों का बिक्रेता एक फेरीवाला (Huckster) एक नीच और चालाक आदमी।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं—पृ १९४।

की सद्भावना और विश्वास प्राप्त कर लिया था और विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली थी। लेकिन अबुल फजल की इसकी व्यक्तिगत सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और लिखता है कि वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया और उसने अपने पराक्रम से सफलता पाई। इस तथ्य से कि हिन्दू-राजा (हेमू) में सैनिक और प्रशासकीय प्रतिभाओं का असाधारण सम्मिश्रण पर्याप्त मात्रा में था कुछ भी महत्व नहीं रखा और अफगान शीघ्र ही उसे एक राजा के रूप में प्रकट होते गए। इस पर भी बदायूनी ने जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है धीरे-धीरे हेमू के पक्ष में यह कुछ त्याग दिया और हेमू को स्वामी के लिए और अपने लिए यह कुछ करने की बिल्कुल आवश्यकता न थी। अपनी चुनार के किले में अपने चैन और आराम के जीवन में संतुष्ट था और हेमू जानता था कि पश्चिम में उसका अपना भाग्य निर्माण स्वयं करना है। वह शेर-शाह अदली और इस्लाम शाह के चुनार और ग्वालियर के बड़े खजाने का संचित हो गया और लड़ाइयों की व्यवस्था करने के लिए उसने बड़ी बड़ी सिपाही और हिन्दी की सेना दिया। उसने इसको कुछ नहीं रखा बल्कि खुल्लमखुल्ला सम्मान किया और न ही किसी ने इसके विषय में कोई प्रश्न उठाया इसलिए अबुल फजल का निम्नलिखित आरोप असफल है —

'दूर हटो! दूर हटो!!' वह अपने स्वामी के विनाश की तैयारी कर रहा था। और अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार रहा था। यहीं पर (इस ही अवसरों पर) संसार के महापुरुषों में अक्सर एक बड़ी त्रुटि की वजह से अधिकतर कारण रहने वाले व्यक्ति आदमियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की स्वाभाविक बुरी किस्म रहने वालों का स्थान व रूप है या उनके विषय में गुप्त बातें जानने के लिए, या हुकम करने वालों का दण्ड देने के लिए। यद्यपि वे अपने मन में यह निश्चय कर लेते हैं कि वे चापलूसी का प्रयोग अच्छे और स्वामीभक्त व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और आदर पर दाग लगाने के लिए नहीं करेंगे फिर भी बाहर से अच्छे दिखाई देने वाले लेकिन अन्दर से नीच व्यक्तियों को गुप्त मनोवांछित अवसर पा ही जाता है और अपने लाभ के लिए स्वामिभक्ता पर अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से दोष लगाते हैं जब कि महापुरुष कभी कभी कार्य की अधिकता के कारण अपने मन में किए गए संकल्प भूल जाते हैं और स्वामिभक्ता पर संदेह करने लगते हैं और अपनी ही बनाई हुई नीति को भंग-भंग कर देते हैं।"

हेमू का उत्थान

अबुल फजल के शब्दों में संक्षेप में यह दुष्ट व्यक्ति शीघ्र ही असंख्य लड़ाइयों का सामने रण-रत्न कर सर्वोच्च सत्ता का स्नेह-पात्र बन गया और शासन में अपना अधिकार जमा लिया। जब कि सर्वोच्च सत्ता के जीवन

की सीमा पूर्ण हो चुकी थी और भारत के दुराचारियों की प्रबलता की अवधि पूर्वोक्त सलीम खां के चचेरे भाई मुबारिज खां तक हस्तान्तरित हो चुकी थी हेमू ने उसको सांसारिक विषयों से विमुख पाया और उसने सम्पूर्ण शासन पर अपना अधिकार कर लिया तथा श्रेष्ठतम पदों पर आरूढ़ हो गया। मुबारिज खां के पास जो साधारणतः आदिली (अत्याचारी) के नाम से प्रसिद्ध था उपाधि (बादशाह की) के अतिरिक्त कुछ न रहा। हेमू ने सब पदों पर नियुक्तियों का पदच्युत करने का और न्याय-वितरण का कार्य अपने आप संभाल लिया। अपनी दूरदर्शिता के कारण इसने शेर खां और सलीम खां के खजानों और उनकी हाथी-शालाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उनकी संचित वस्तुओं व द्रव्यों को भी उसने मुक्तहस्त से लिटा दिया। उसके चरणों उसको पूजते थे और उसके वचनों का पालन कर देते थे। कुछ दिनों तक उसने 'राय' की उपाधि धारण की। तत्पश्चात उसने 'राजा' की उपाधि ग्रहण कर ली और 'राजा विक्रमाजीत' की पद्धति अपना ली[1]। इस प्रकार उसने मूर्खतावश अपने आप को बड़ी बड़ी उपाधियों से लाद ली। दूरदर्शिता से उसने अदली की नाम-मात्र की प्रभुता बनाए रखी और उसके शत्रुओं के विरुद्ध बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़ी। अपने पराक्रम और साहस द्वारा वह विजयी हुआ और उसने महान कार्य सम्पन्न किए। वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया। धीरे धीरे वह इतना आगे बढ़ गया कि उसने महाभाग्य शहंशाह की प्रभावशाली सेना तक से टक्कर लेने का साहस किया। परन्तु क्योंकि यह पवित्र व्यक्तित्व अच्छे और बुरे की कसौटी थी उसके खोटे सिक्के का परीक्षण हो गया और उसका कांसा अस्तित्व संसार को प्रकाशित करने वाले न्याय के प्रकाश से नष्ट हो गया"..... [2]।

अराजकता के दिन—

समस्त समकालीन वृत्तान्तकारों का इस पर एकमत है कि इस्लाम शाह की मृत्यु स्थान-स्थान पर विद्रोह होने के लिए, एक संकेत मात्र था।

१—तथ्यों से पुष्टि नहीं होती है। चुनार के युद्ध के बाद अदली ने ही यह उपाधि उसको प्रदान की थी।

अलबदाऊनी ने भी बंगाल में एक अन्य सेना नायक पर विक्रमाजीत की उपाधि का प्रदान किए जाने का उल्लेख इन शब्दों में किया है (पृ० १७४)।

और सरहोर हिंदी बंगाली ने (तबाकाती अकबरी के अनुसार मीवर' इलियट ५ १७८) जो लोदी की मृत्यु का उकसाने वाला था और जिसे विक्रमाजीत की उपाधि मिल चुकी थी एक नाव में अपने रखाने रखे और उसका पीछा किया। —मुन्तखाब उत-तवारीख। लोय द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद—पृ सं० १७४।

२—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १ पृ०—११५ ११९।

अकेन्द्रीयकरण प्रवृत्तियों ने जो उसके शासन में पहले से ही विद्यमान थीं, फिर से सिर उठाया। "मखजन" के अनुवादक डॉर्न के शब्दों में "एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक एक नगर से दूसरे नगर तक सब विद्राहाग्नि में प्रज्वलित हो गए थे। अर्सतुल्य अफगान सामन्त अब सब स्वतन्त्र थे और वे चाहे जिसको अपना नेता चुन सकते थे। इस्लाम शाह की मृत्यु के कुछ समय पश्चात ही सूर वंश के चार अफगान प्रधान क्षेत्र में थे—मुबारिज खां अहमद खां इब्राहीम खां और मुहम्मद खां। किन्तु सिंहासन के लिए यह चारों भीषण प्रतिद्वंदी थे।

इस्लाम शाह की वसीयत के अनुसार फीरोज खां जो अल्प व्यस्क था उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया लेकिन कुछ दिन बाद ही मुबारिज खां ने जो फीरोज खां का मामा था उसकी अर्थात अपने ही भानजे की हत्या कर दी। निजामउद्दीन द्वारा रचित मखजन अफगानिया में निर्दोष बालक की भयानक हत्या का निम्नलिखित दुख भरा वृत्तांत मिलता है[२]।

"लेकिन ३ दिन के पश्चात् शेरशाह के सब भाई मियाँ निजाम के पुत्र और इस्लाम शाह के बहनोई मुबारिज खां जिसको उसकी बहन बीबी बाई ब्याही थी और जो उसकी इतनी कृपा का पात्र था कि वह अपना कक्ष बिना उसकी अनुमति के नहीं बदलता था और उसकी सम्पत्ति से प्रसन्न होता था इस्लाम शाह के निजी कक्षों में अपनी बहन का दर्शन के बहाने से घुसा और फिरोज खां को उसकी मां बीबी बाई की सब प्रकार की विनती और विलाप करने पर भी मार डाला। बीबी बाई ने कहा "मैं प्रार्थना करती हूं मेरे बच्चे को मत मारो मैं उसकी अपनी आत्मा का एक मात्र प्रकाश समझती हूं और मैं सौगन्ध खा सकती हूं कि मैं राज्य-सिंहासन के सब अधिकारों का त्याग दूंगी और अपने बच्चे को मक्का दक्षिण की ओर चली जाऊंगी। मैंने आप तुम्हारी सेवाएं की थी उन्हें याद करो जब कि इस्लाम शाह तुम्हें मारने का निश्चय कर रहा था मैंने रो रो कर उसे उसके निश्चय से रोका और उससे मुझसे कहा कि यदि मैं अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाना चाहती हूं तो मैं उसे ऐसा कर सकती हूं। परन्तु मैंने ऐसा होते हुए भी याचना पूर्वक और आंसुओं के साथ उससे कहा कि मेरे केवल एक भाई था जिसकी मृत्यु से उसके साम्राज्य को कोई भय न होगा और इस प्रकार मैंने उसको उसके उद्देश्य से रोकने में सफलता पाई। लेकिन इन याचनापूर्ण विनतियों का इस निर्मम व्यक्ति पर कोई प्रभाव न हुआ और उसने उत्तर दिया कि उसका पुत्र तो एक बालक था, और सिंहासन के नहीं बल्कि मक्तब के योग्य था। इसके साथ ही साथ उसने तलवार के वार से मुझ राजकुमार को शहीदों का ताज पहना दिया

२—निजामउद्दीन "कि मखजन-ए-अफगानिया डार्न द्वारा अनुवाद।

और इस प्रकार अपने को दोनों लोक की घृणा का पात्र बना दिया[1]। इस प्रकार मुबारिज खाँ ने सिंहासन प्राप्त किया और अपमान सामन्तों को अपने को सम्राट स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। राजकुमार फिरोज ने जो १२ वर्ष का ही था इस प्रकार केवल तीन दिन राज्य किया और ग्वालियर के सिंहासन के लिए अपने जीवन दान के रूप में दण्ड भुगतावा[2]।

फिरिश्ता भी कहता है कि 'निजामुद्दीन अहमद बख्शी अपने अकबर के इतिहास में लिखता है कि सलीम शाह अपनी पत्नी बीबी बाई से प्राय कहता था कि यदि उसे अपने बच्चे फिरोज के लिए थोड़ा सा भी स्नेह हो तो वह अपने भाई मुबारिज खाँ को फांसी पर चढ़ा देने के लिए स्वीकृति न दे 'और नहीं तो वह उसके द्वारा प्रथम अवसर पर अपने भानजे को मार डालने की बात को निश्चित समझले'। लेकिन दयालु हृदय वाली बहन उत्तर दिया करती थी मेरा भाई व्यसन और आनन्द का इतना प्रेमी है कि उसे राजसी चिन्ताओं का भार उठाने का अवकाश नहीं। लेकिन भाई ने इसके विपरीत व्यवहार किया और एक निर्दोष बालक का निर्दयतापूर्वक अन्त कर दिया।

मुबारिज खाँ—

वह २ नवम्बर १५५४ ई० को सिंहासनारूढ़ हुआ और सुल्तान मुहम्मद आदिल की उपाधि ग्रहण की तथा सिक्के बनवाने और अपने नाम में खुतबा पढ़वाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शेर शाह के छोटे भाई निजाम खाँ का पुत्र था। 'अकबरनामा' के लेखक के अनुसार निजाम खाँ के पुत्र तथा पुत्रियां सभी का उत्थान एक साथ हुआ — 'इस निजाम के एक पुत्र और तीन पुत्रियां थीं और आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि पुत्र एक शासक बन गया और तीन पुत्रियों के पति उच्च पद पर आसीन हुए। उनमें से एक तो सलीम खाँ का दूसरा सिकन्दर सूर और तीसरा इब्राहीम सूर[3]।

आरम्भ में अदली ने अब्बास खाँ के भाई शम्स खाँ को अपना प्रधान मंत्री मनोनीत किया।[4] लेकिन उपाधियां धारण कर लेने के बाद भी वह अदली (मूर्ख)[5] कहलाता रहा। उसको यह उपनाम उसकी बर्बरता दुराचरण

१—आर्म ने मलजम अंग्रेजी अनुवाद।

२—फिरिश्ता हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास जिल्द २-पृ० १८१ १४ सलीम शाह सूर—लंदन १८२९।

३—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १-पृ० ६१७।

४—निजामतउल्ला दि मलजम-ए-अफगानिया

५—तारीख-ए-दाऊदी के पाद्य में यह "अंधली दिया है जिसका अर्थ है अंधा'। अबुल फजल 'अदली' लिखता है जिसका अनुवाद बेवरिज ने 'अत्याचारी' किया है। नार्न भी अदली' लिखता है और उसका अर्थ 'मूर्ख बताता है — अकबरनामा १-पृ० ६१७।

और मूर्खतापूर्ण विधियों को अपनाने के कारण किया गया था। साधारण जनता का उसकी क्षमताओं के बारे में बहुत ऊँचा मत था और जैसा कि डा ईश्वरी प्रसाद ने कहा है— निष्पक्षतापूर्वक रूप से भ्रष्ट और सार्वजनिक विषयों के प्रति पूर्णतः उपेक्षित वह संसार में अंतिम व्यक्ति था जो अफगान साम्राज्य को उस सर्वनाश से बचा सकता जिसमें पतन का उस समय था। उपहार बांटने का आदी होने के कारण और अन्धों की भांति सर्वोपरि ज्ञान के कारण उसे भ्रष्टों में साफ प्रिय बनने का आभाव न था।[1] सलिम बिना किसी भेद या संकोच के विषय कृपाएं दिखा दिखा कर अफगान सामन्तों का मनोभाव में वह उस समय सफल हो गया। निजामउद्दीन ने इसका उल्लेख इन शब्दों में किया है[2]।

'प्राचीन इतिहासों में यह पढ़कर कि उदारता एक सम्राट का विशेष गुण था उसने उसकी (प्राचीन सम्राट की) नकल करके अपने खजानों के द्वार *लोगों के लिए और सोने को उपहारों से साफ दिया। वह हर दिशा में तीर फेंका* करता था जिसकी नोक का मूल्य पाँच सौ टंका था और उस मकान के स्वामी को जिसमें वे तीर गिरते थे उसको वापिस लाकर देने पर पाँच सौ टंके देना था।

हेमू का उच्चतम उत्थान

इस प्रकार की अराजकता की परिस्थितियों में यह कि अफगान समर्थक आन्तरिक विभेदों द्वारा विछिन्न हो गया था और अपनी जैसी योग्यता का व्यक्ति शिखर पर था भारतीय राजनैतिक कार्यक्षेत्र में हेमू के स्तर का शूरवीर और राजनीतज्ञ सहसा देदीप्यमान हुआ। अबुल फजल ने शब्दों में हेमू के इस आश्चर्यजनक उत्थान का वर्णन पहले आ चुका है। वह अपनी विद्वत्ता दक्षता तथा कार्यपटुता से मुबारिज खां जैसे विलास प्रिय शासकों को अन्यमनस्क राजा का प्रधान मंत्री बना। जिस समय उत्तरी भारत में चारों ओर अराजकता फैली हुई थी हेमू ने शासन की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली। सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी उसके कठिन प्रयास कीर्ण कार्य की महानता न भुलाया जा सकती है[3]....

दूसरा वृत्तान्तकार—मखजन-ए-अफगानियां का लेखक—हेमू के अद्भुत उत्थान का वर्णन इस प्रकार करता है—

"उस समय हेमू, जो रिवाड़ी में एक साधारण व्यापारी था और बाद में राजसी षाड्यन्त्रों का निरीक्षक हो गया उच्च पद पर आसीन

१—ग० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १९४

२—डार्न निजामउद्दीन के 'दि मखजन-ए-अफगानिया' का अंग्रेजी अनुवाद—

३—अबुल फजल अकबर नामा १ पृ० [illegible] ६१९।

करता गया और धीरे-धीरे सुल्तान आदिल या बस्तुतः अदली (मूर्ख) के साथ उसकी घनिष्टता हो गई।[1]

सब समकालीन लेखकों का मत है कि उस समय पहले ही अराजकता थी और विभिन्न अफगान प्रतिद्वंद्वियों के बीच गृह-युद्ध की दशा उपस्थित थी। एक प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि हेमू के मुख्य-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने पर या तो 'अराजकता आश्चर्यजनक रूप से बिदा गई'[2] या कुछ समय के लिए अन्यथा अव्यवस्थित अफगान राज्य पद्धति में एकता और ओज की झलक फिर से दिखाई दी।

अबुल फजल द्वारा किया गया निम्नलिखित उल्लेख उपर्युक्त प्रश्न का उचित उत्तर देता है—

'हेमू और इब्राहीम को सत्तमत के लिए बारबार के बीच युद्ध हुए, और जीत सदा हेमू की हुई। सुल्तान मुहम्मद भी जिसने बंगाल में राजा की उपाधि धारण कर ली थी हार गया और बंगाल के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया गया। हेमू के ताज करानी और कुतु खां नुहानी से भी संघर्ष हुए और उसने उन्हें हरा दिया। उसने मुबारिज खां के अधुओं से बाइस लड़ाइयां लड़ी, और सभी में विजयी हुआ।

संक्षेप में यह हेमू की सफलताओं का सही वर्णन है जिस पर साधारणतः 'अदली' जैसे स्वामी की सेवा करने का उसका अफगान सामन्तों से लड़ने का और इतने पर भी झंडा ऊंचा किये हुए सफलता प्राप्त करने का बहुत ही कठिन कार्य भार था। यह कोई छोटी सफलता नहीं थी। इसमें निःसन्देह अकेन्द्रीकरण में एकता विषमता में समता और अशान्ति के सागर में शान्ति प्राप्त करने का पवित्र आदर्श निहित था।

१—डार्न निजामतउल्ला का अकबरी अनुवाद दि मखजन।

२—अबुलफजल ने इस बात पर जोर दिया है कि—"जब प्रभुता मुबारिज खां के हाथ में आई हिन्दुस्तान की परिस्थिति पहले से भी खराब हो गई —अकबरनामा पृ ११४—११९।

अध्याय—४

हेमू की विजय

जब से अदली ने फिरोज की हत्या की अफगान सामन्त उससे प्रत्यक्ष रूप से पृथक हो गए। इस्लाम का पुत्र सिंहासन पर आसीन नाही सामन्तों द्वारा आसीन कराया गया था लेकिन मुबारिज खां ने शम्स खां की सहायता से निर्दोष बालक राजकुमार को हटाकर सिंहासन छीन लिया। देश में आतंक और शोक की एक लहर दौड़ गई, और शम्स खां भए बादशाह को अधिक समय तक न संभाल सका। अदली के पास हेमू के ऊपर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई चारा न था अस्तु हेमू ने उसकी ओर से मोर्चा संभाला शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और अफगान सामन्तों की चुनौती का बाएँ व दाएँ सामना करना आरम्भ कर दिया। कुछ अफगानों ने हेमू के हाथों में शक्ति का केन्द्रित हो जाना पसन्द नहीं किया जिससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं में उसके शत्रु उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उसके प्राणों के विरुद्ध षड्यंत्र करके उसके अधिकार से विद्रोह किया। खुसी मुठभेड़ हुई। विद्रोह में खड़े होने वालों में सलीम खां सूर सबसे पहला था। लेकिन इसका दमन आसानी से हो गया।

अजमेर में विद्रोह—

अजमेर में सूबेदार चुनैद खां ने विद्रोह किया। हेमू ने उसके विरुद्ध सेना के साथ कूच किया और उसके अधिकारी कीमत खां के विरुद्ध युद्ध करके उसे हरा दिया। उसके बाद चुनैद खां स्वयं मुकाबले में आया केवल एक भारी हार खाने के लिए।[1] अदली एक दूर स्थान पर हेमू की इस आशातीत विजय से अति प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कृत अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। इससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं का द्वेष ईर्ष्या और परिणामतः खुला द्रोह अवश्य जागृत हुआ होगा।

फतमुस्ली का निष्फल विद्रोह—

अदली अफगान सामन्तों में फैले हुए राग के प्रति असावधान था और वह उनकी शक्ति और विशेषाधिकारों के दमन की नीति पर चलता रहा।

१—डा० आर० पी० त्रिपाठी-मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० १२८।

कराया तथा धीरे-धीरे सुल्तान आदिल या बस्तुतः अदली (सूर) के साथ उसकी घनिष्टता हो गई।[1]

सब समकालीन लेखकों का मत है कि उस समय पहले ही अराजकता थी और विभिन्न अफगान प्रतिद्वंदियों के बीच मुठ-मुठ की दशा उपस्थित थी। एक प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि हेमू के मुख्य-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने पर या तो अराजकता आश्चर्यजनक रूप से बिगड़ गई[2] या कुछ समय के लिए अस्थवा अव्यवस्थित अफगान राज्य पद्धति में एकता और योग की झलक फिर से दिखाई दी।

अबुल फजल द्वारा किया गया निम्नलिखित उल्लेख उपयुक्त प्रश्न का उचित उत्तर देता है—

"हेमू और इब्राहीम का सल्तनत के लिए बारंबार के बीच युद्ध हुए, और जीत सदा हेमू की हुई। सुल्तान मुहम्मद भी जिसने बंगाल में राजा की उपाधि धारण कर ली थी हार गया और सर्वनाश के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया गया। हेमू के ताज करारी और रन्हू तथा मुहानी से भी संघर्ष हुए और उसने उन्हें हरा दिया। उसने मुबारिज खां के शत्रुओं से बाइस लड़ाइयां लड़ी, और सभी में विजयी हुआ।"

संक्षेप में यह हेमू की सफलताओं का सही वर्णन है जिस पर साधारणतः 'अदली' जैसे स्वामी की सेवा करने का उपक्रम अफगान सामन्तों से लड़ने का और इतने पर भी झंडा ऊंचा किये हुए सफलता प्राप्त करने का बहुत ही कठिन कार्य भार था। यह कोई छोटी सफलता नहीं थी। इसमें निःसन्देह अकेन्द्रीकरण में एकता विषमता में समता और अशान्ति के सागर में शान्ति प्राप्त करने का पवित्र आदर्श निहित था।

१—डार्न निजामउद्दीन का अंग्रेजी अनुवाद वि मजूमदार।

२—अबुलफजल ने इस बात पर जोर दिया है कि— जब प्रमुख मुबारिज खां के हाथ में आई हिन्दुस्तान की परिस्थिति पहले से भी खराब हो गई —अकबरनामा पृ ६१२—६१९।

अध्याय—४

हेमू की विजय

अब से अलवर में स्वतन्त्र रूप से हेमू का अफगान सामन्त उससे प्रायः स्वतन्त्र रूप से पृथक हो गए। इस्लाम का पुत्र सिंहासन पर सफीम शाही सामन्तों द्वारा आसीन कराया गया था लेकिन मुबारिज खां ने खम्म खां की सहायता से निर्दोष बालक राजकुमार को हटाकर सिंहासन छीन लिया। दल में आतंक और क्रोध की एक लहर दौड़ गई और सम्म खां नए बादशाह को अधिक समय तक न संभाल सका। अन्धी के पास हेमू के ऊपर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई चारा न था अस्तु हेमू ने उसकी ओर से सारी संचालन शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और अफगान सामन्तों की चुनौती, का डाटें व डाटें सामना करना आरम्भ कर दिया। कुछ अफगानों ने हेमू के हाथों में शक्ति का केन्द्रित हो जाना पसन्द नहीं किया, जिससे स्वभावतः अफगान गुटियाओं में उसके शत्रु उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उसके प्राणों के विरुद्ध षड्यंत्र करके उसके अधिकार से विद्रोह किया। सूची मुठभेड़ हुई। विद्रोह में खड़े होने वालों में सफीम खां सूर नवम पड़ता था। लेकिन इसका दमन आसानी से हो गया।

अजमेर में विद्रोह—

अजमेर में सूबेदार खुनैद खां ने विद्रोह किया। हेमू ने उसके विरुद्ध सेना के साथ कूच किया और उसके अधिकारी बीसल खां के विरुद्ध युद्ध करके उसे हरा दिया। उसके बाद खुनैद खां स्वयं युद्धक्षेत्र में आया केवल एक भारी हार खाने के लिए।[1] अदली एक दूर स्थान पर हेमू की इस आशातीत विजय से अति प्रसन्न हुआ और उस मुख्य अपना प्रधान मन्त्री बना लिया। इससे स्वभावतः अफगान गुटियाओं का ईर्ष्या और परिणामतः कुछ द्वेष प्रबल जागृत हुआ होगा।

आगुक्ती का निष्फल विद्रोह—

अदली अफगान सामन्तों में फैले हुए रोष के प्रति अभावधान था और वह उनकी शक्ति और विशेषाधिकारों के दमन की नीति पर चलता रहा।

१—डा आर० पी त्रिपाठी-मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० १२८।

वह इस्लाम शाह की नकल करना चाहता था यद्यपि ऐसा करने की उसमें न तो क्षमता थी और न बुद्धिमत्ता। उसने जागीरों का फिर से बन्दारा करना शुरू कर दिया। वह शेरशाही और इस्लामशाही व सामन्तशाही को समाप्त करके अपना एक निजी अफगान सामन्तवर्ग उत्पन्न करना चाहता था। इस नीति की असफलता पहले से ही निश्चित थी। कन्नौज सूबे के सूबेदार मुहम्मद खां फरमुली का सामना करने की उसकी चेष्टा के फलस्वरूप दरबार में खुले रूप से उपद्रव हुआ। एक दिन दरबार-ए-आम में अदली (अदली) ने अपने मुखियाओं की सम्पत्ति और शासन बांटना आरम्भ किया। साथ के साथ-साथ उसने मुहम्मद खां फरमुली से कन्नौज सूबे को लेकर सरमस्त खां-सुरतेवाली को दिए जाने की आज्ञा दी। एक साहसी युवक सिकन्दर खां सुपुत्र मुहम्मद खां भी वहां उपस्थित था। नमस्कार कर बादशाह से कहा 'तो क्या मेरी सम्पत्ति कुत्तों के बेचने वालों को दी जायगी?' [1]

'मुहम्मद खां फरमुली से जो वहां उपस्थित था अपने पुत्र की उग्रता को रोकने का बल किया लेकिन इससे केवल उसकी उत्तेजना और भड़क उठी। उसने अदली पर उसके परिवार का समूल नाश करने की याचना का आरोप लगाया। सरमस्त खां ने जो सम्पत्ति को पाने वाला था असाधारण बल का व्यक्ति होने के कारण सिकन्दर को गले से पकड़ लिया। युवक प्रतिद्वन्द्वी ने अधीर प्रकृति का युवक होने के कारण इसका प्रत्युत्तर दिया और सरमस्त खां को जान से मार डाला। इतना हो जाने पर उसने उन सब पर जिन्होंने उसका प्रतिरोध किया प्रहार करना आरंभ कर दिया। कुछ मुखिया वहीं पर मारे गये। उसके बाद उसने बादशाह पर भी आक्रमण कर दिया जो सिंहासन से कूदकर हरम में घुस गया और सिकंदर खां के पीछा करने पर उसने उसके सामने का दरवाजा बंद कर दिया जिससे उसका आगे बढ़ना रुक गया और मुहम्मद शाह द्वार की चिटकनी चढ़ाकर अपनी रक्षा कर सका। [2] फिरिश्ता का वर्णन सियासतनुस्सा के वर्णन से थोड़ा सा भिन्न है। इसमें केवल उल्लेख है कि अधिगी इस भयावह दृश्य को देखने पर अपने निजी कक्ष में भाग गया। [3] सामन्तों में से अधिकतर के आ जाने पर अदली का बहनोई इब्राहीम खां सूर उसकी सहायता को आया। सरमस्त खां का किसी प्रकार पीछा किया गया और उस पर आक्रमण किया गया। उसके टुकड़े २ कर दिए

१—फिरिश्ता अंग्रेजी अनुवाद जिल्द २ पृ० १४६ मलकम के अनुसार अंग्रेजी अनुवाद सरमस्त खां का पत्थर बरसने वाला कहा गया है।

२—फिरिश्ता जिल्द २ अंग्रेजी अनुवाद जिल्द पृ० १८६

३—सियासतनुस्सा दि मलकम अंग्रेजी अनुवाद इतिहास।

गए। तत्पश्चात् दौलत खां लाहानी ने आगरा की परवाह न करने वाले युवक सिकंदर मुहम्मद को फरमुली का अंत कर दिया।

ऐसी अनुचित घटनाओं का प्रभाव यह हुआ कि अफगान सामन्तों पर अदली का प्रभाव और शक्ति तेजी से घट गयी। उनमें से कुछ अपनी मान रक्षा के लिए और कुछ अपने गढ़ों को दृढ़ करने के लिए अपने अपने प्रदेशों की ओर चल गए। अबुलफजल से यह स्पष्ट नहीं है कि दरबार में हेमू उपस्थित था या नहीं लेकिन संभवतः वह नहीं था। तत्पश्चात अदली ने घबड़ाहट के मारे उसका स्थिति सभालने का कार्य सौंप दिया।

ताज करर्रानी का पीछा—

एक दूसरा प्रमुख अफगान सामन्त जिस मुहम्मद फरमुली के संकट का आभास मिल चुका था और जिसने उसे ग्वालियर के दुर्ग के फाटक पर कुछ समय पूर्व सावधान भी कर दिया था दरबार के भवन से बाहर ही रुका। 'मखजन' के लेखक के अनुसार उसने "उस परिषद् की शोचनीय दशा समझा दी और उसे बताया कि परिस्थितियां इतनी बदल गई थीं कि अदली का उस समय न तो कोई आदर करता था और न उसमें कोई डरता था क्योंकि परिषद् में ही सब उपस्थित सरदारों द्वारा अनसुनी बातें कही गई थीं और उन्होंने अभूतपूर्व ढंग से व्यवहार किया। इसलिए सबसे सुरक्षित और भयरहित मार्ग यही था कि परिषद् में अब और अधिक भाग न लिया जाय।[1] ताज करर्रानी ने फरमुली से अपने से मिल जाने का और परिषद् में न उपस्थित रहने को कहा लेकिन फरमुली ने उसके शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसे अपने पुत्र की उत्तेजना के कारण दुर्दिन देखने पड़े। ताज करर्रानी सावधान हो गया और जैसे ही उसने हत्याओं के बारे में सुना उसने सामान बांधा और पूर्व की ओर चला गया। अपने सब आश्रितों को लेकर वह "बगावत का दिया में अपने को अग्रसर हुआ।"[2]

शिकामऊ की लड़ाई—

जैसे ही अदली ने ताज करर्रानी के जाने का समाचार सुना उसने स्वयं उसका पीछा करने का निश्चय किया। लेकिन हेमू के आश्वासन दिलाने पर वह भागने वाले का पीछा करने का कार्य सौंप दिया। हेमू ने इस्लाम शाह के अति निर्भरज्ञ और खवास खां को बंदी बनाने वाले का[3]

१—तियामतउल्ला दि मखजन अंगरेजी अनुवाद डाम।
२—तियामतउल्ला दि मखजन अंगरेजी अनुवाद डार्न।
३—डा० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० १२८।

आगरा से ८ मील दूर शिवामऊ में पकड़[1] लिया। यद्यपि वह हेमू से हार गया फिर भी वह बचकर चुनार भाग जाने में सफल हो सका।

हेमू की चुनार में विजय—

ताज करीनी ने जबकि वह चुनार वापस आ रहा था मार्ग भर को विध्वंस कर दिया। अपनी प्रगति में (उसने) जनता के धन और बादशाह की अन्य वस्तुओं पर कब्जा कर लिया और अपने बन्धुओं और अन्य जाति भाइयों को जिनकी खवासपुर टांडा के सूबे में भूमि थी सौ हाथी दे दिए।[2] उनकी सहायता से उसने एक प्रभावशाली सेना एकत्र कर ली जिससे बादशाह को स्वयं मैदान में आना पड़ा और चुनार से ऊपर नदी के किनारों पर जो विद्रोही उसे मिले वे हराए गए और मजा दिए गए।[3] ताज करीनी का पीछा करते समय हेमू के साथ अदली भी मिल गया और चुनार में एक भीषण संग्राम हुआ। अदली ने अपनी आँखों से हेमू की वीरता और रणचातुर्य देखा—और वह इससे इतना प्रभावित हुआ कि उसको 'विक्रमाजीत' की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की। ताज करीनी की सहायता सुलेमान ईसाख और खवाजा इलियास ने की जिनके पास गंगा के किनारे के परगने थे और जो अदली के विरुद्ध लड़ने को उत्सुक थे। लेकिन हेमू ने उन सबको परास्त कर दिया।[4] यह बंगाल और बिहार के प्रचलन के बिलकुल अनुकूल था कहा कि एक विजयी सेना नायक को इस उपाधि से सम्मानित किया जाता था। अबुल फजल भी इसको मानता है कि हेमू ने यह उपाधि कुछ समय से ग्रहण कर ली थी।[5] इससे अल बदाऊनी का यह कथन असत्य सिद्ध होता है कि हेमू ने यह उपाधि दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के बाद अक्तूबर १५५६ ई० में धारण की थी।[6]

हेमू का बंगाल पर आक्रमण—

चुनार से करीनियों की करारी हार के बाद भी संकट समाप्त नहीं हुआ। ताजकरीनी फिर किसी तरह बचकर जौनपुर पहुंचा जहाँ वह अपने

१—खवासपुर टांडा बंगाल की सीमा पर था त्रिपाठी को देखिये—पृ १५९ मुगल साम्राज्य।

२—फिरिश्ता ई० टी ब्रिग्स जिल्द २ पृ० १४६।

३—ना डिबरी प्रसाद हुमायूं पृ १९४ "दोनों सेनाएँ एक दूसरे से एक नदी के पार मिली जब तक कि हेमू अचानक तेजी के साथ कुछ हाथियों सहित दूसरे किनारे पर पहुँच गया और उसने विद्रोहियों को एक हताश संघर्ष के बाद बुरी तरह परास्त कर दिया।"

४—अबुल फजल जिल्द २ अकबरनामा

५—अल बदाऊनी पृ ७—अध्याय १ भी देखिए।

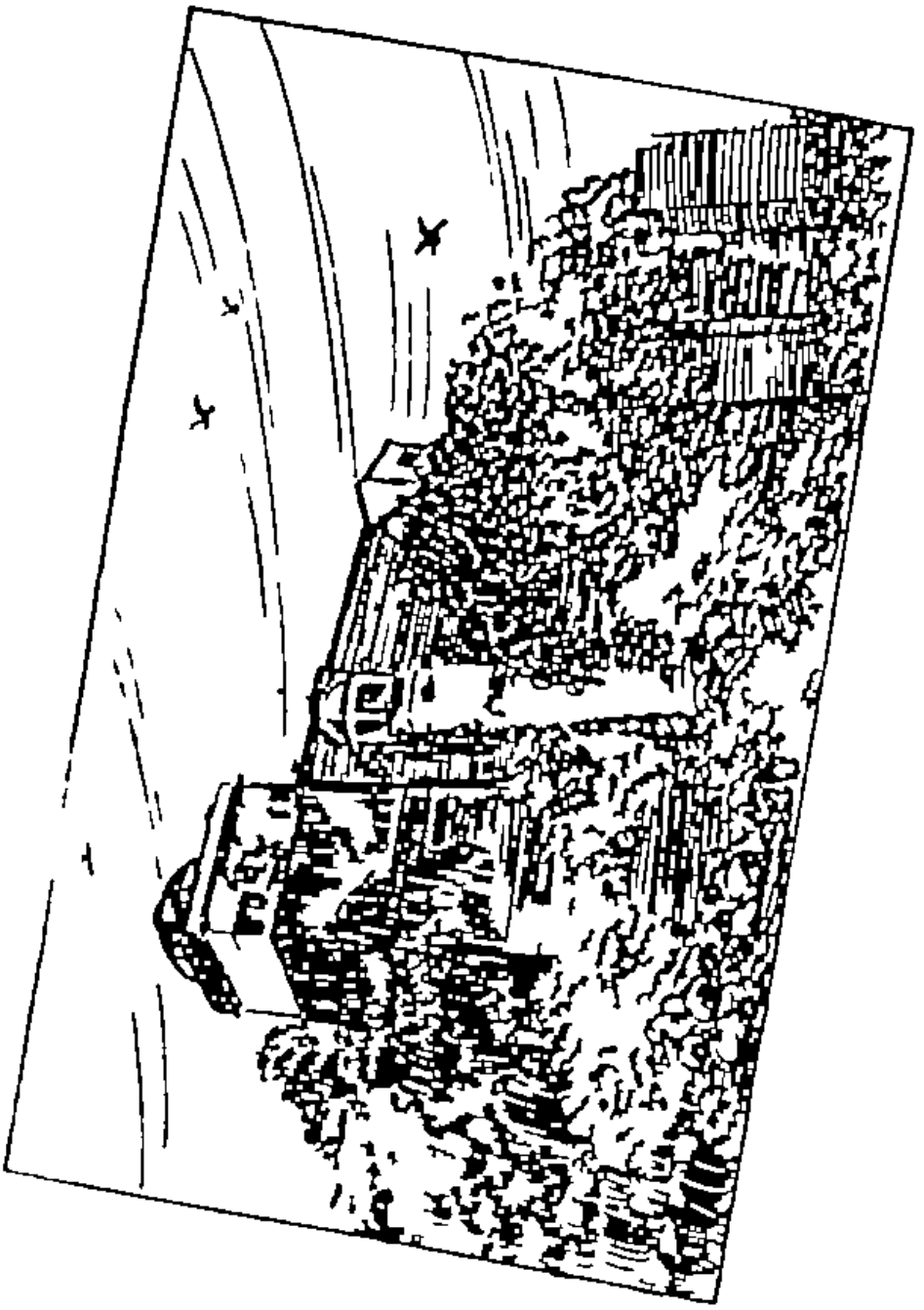

भाई महमद खां से मिला और उसने पूर्व की ओर कूच करने का प्रबन्ध किया। हेमू ने अपने स्वामी आदली से चुनार में ही रुकने और उसको करौनियों से निपटने की आज्ञा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। आवश्यक अनुमति मिलने पर हेमू ने करौनियों के प्रधान का बंगाल की सीमाओं तक पीछा किया। बाज में अपने भाइयों की सम्पत्ति जिनके पास सबसे बड़ा टांडा व सर्वोत्तम जागीरें थीं।

इब्राहीम का पृथक किया जाना और कालपी का पहली लड़ाई—

अपनी सामर्थ्य को अपने से पृथक करना रहा। दीवान खां जिलवानी और फिरोज खां काकड़ जैसे विख्यात व्यक्तियों को जो उसके प्रति स्वामि भक्त थे उसके द्वारा कष्ट पहुँचाये जाने के कारण तथा दूसरे अकारण सामन्त भी उससे असन्तुष्ट हो गए[1]। उसके निजी रिश्तेदार उससे चौकन्ने हो गए। उसे स्वयं भी अपने बहनोई इब्राहीम खां सूर से ईर्ष्या होती जा रही थी। उसने उसको बंदी बना लेने के लिए गुप्तचर आदेश दिए लेकिन उसकी पत्नी आदली की बहन ने जब अपने भाई की योजना सुनी तो अपने पति को षड्यंत्र से परिचित करा दिया और वे तुरन्त चुनार से भाग गए। उसने बियाना अपने पिता मार्गी खां हिसार के गवर्नर के यहां प्रस्थान किया।[2] ईसा खां निजाजी को इब्राहीम का पीछा करने को कहा गया और वह कालपी[3] के पास उस तक पहुँच गया परन्तु पीछा करने वाले को सामने वाले ने हरा दिया।

इस सफलता से साहस पाकर और निर्भीक व भयरहित होकर हुमायूं में जान बूझकर इब्राहीम खां को ग्वालियर दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। इस समय आदली चुनार में ही था। इब्राहीम ग्वालियर से दिल्ली पहुँचा वहाँ वह सिंहासन पर बैठाया गया और उसने राजसी ठाठ-बाट अपना लिया।

आदली और इब्राहीम —

जैसे ही आदली को इब्राहीम द्वारा ग्वालियर और आगरा पर अधिकार किए जाने का समाचार मिला उसने पश्चिमी भाग में शासनसत्ता अपहरण करने वाले का दमन करने की घोषणा की। इब्राहीम उसका विरोध करने के

१—डा त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन पृ० १५९ "इन दो कूटनीतों को झेलकर आदली शाह ने अपने हाथों अपने साम्राज्य की जड़ें हिला दी"।

२—स्टिवेन्स हिस्ट्री आफ इण्डिया"—पृ० १४६ १४७।

३—हिन्दुस्तान ग्वालियर आगरा पृ० १२२ १६ वीं शती में कालपी दिल्ली व बंगाल के मार्ग का महत्वपूर्ण विश्राम-स्थल बन गया था। सूर शासकों के काल में तो यह अफगान युद्ध का क्षेत्र बन गया था। अकबर के राज्य काल में कालपी परिगना का हार बन गया व सम्भवतः जौन का सरकार बन गया।

स्थान पर उससे सन्धि की बातचीत करने लगा यह प्रश्न करते हुए कि यदि बादशाह हुसेन खाँ और अन्य मुखियाओं को जमालखान के आश्वासनों सहित भेज दे तो वह झुक जायेगा। तथा बदली का आधिपत्य मान लेगा। बादशाह ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और इब्राहीम खाँ ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपहारों द्वारा आश्वासनों से और कुछ सुनकर उनको (हुसेन खाँ इत्यादि) बहका लिया। मुहम्मद शाह अदली अपने साथ विश्वासघात हुआ देखकर चुनार भाग गया और पूर्वी प्रदेश के शासन से ही अपने को संतुष्ट रखा फलतः इब्राहीम खाँ के पास पश्चिमी प्रदेश का अधिकार बना रहा।[1]

इसके बाद सिंहासन पर अधिकार कर लेने पर, इब्राहीम ने कई सामंतों को अपने रंग में रंग लिया और खुतबा अपने नाम से पढ़वाया। उसने सुल्तान मुहम्मद की उपाधि ग्रहण की और दिल्ली में सुसज्जित हो गया।

फर्रीह की लड़ाई—

इब्राहीम अपनी प्रभुता का सुख कुछ समय के लिए भी न भोग सका जबकि उसके अधिकार को छोटी बहिन के पति और आदिलशाह के चचेरे भाई महमद खाँ द्वारा चुनौती दी गई। महमद खाँ ने हैबत खाँ और दूसरे मुखियाओं जो स्वर्गीय सलीम शाह द्वारा बनाए गए सामन्त रह चुके थे की सहायता पाकर सिकन्दर शाह की उपाधि धारण कर ली और आगरा की ओर १ या १२ सहस्र अश्वारोहियों के साथ कूच करते हुए उस शहर से २० मील के अन्दर कड़ा में डेरा डाला। इब्राहीम ने उसका प्रतिरोध ७ हजार घुड़सवारों से किया और इससे उसके दल की शान का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जब यह कहा गया है कि कम से कम ७ मफ्तर मजमल के अस्तरों से युक्त डेरों में स्थित थे और प्रत्येक को नौबत बजवाने का विशेषाधिकार था।[2] दोनों प्रतिद्वंदी सेनाओं की एक दूसरे से आगरा से १० कोस दूर एक गाँव फर्रीह में मुठ-भेड़ हुई। सिकन्दर ने इब्राहीम की ऐसी प्रभावशाली सेना का विरोध करने के स्थान पर अपनी सेना को छोटी समझकर उसके पास शान्ति-प्रस्ताव भेजा। एक सन्धि प्रस्तावित की गई, जिसके अनुसार दिल्ली में सिक्का हिन्द की पूर्वी सीमा

१—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द २—पृ० १९६।
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर सन् १२२४ ई में इब्राहीम सूर ने कालपी पर अधिकार कर लिया था परन्तु शीघ्र ही हेमू ने उसको वहाँ से निकाल बाहर किया। पृ० १२२

२—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द—२ पृ १८७।
सगीत बाद जिसमें सौ बाद होते हैं—जो राजा से संबद्ध रहते थे पर उनके द्वारा गवर्नरों को भी प्रदत्त किया जाता था जिसका वह अपने शासन क्षेत्र में और राज परिवार की अनुपस्थिति में प्रयोग में ला सकते थे।

तक का संपूर्ण प्रदेश इब्राहीम का हुआ और सिकन्दर को पंजाब और मुल्तान से अपने को संतुष्ट करना था। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित हुआ कि यदि अदली का मृहत कोष इब्राहीम के हाथ आया तो उसमें दोनों का भाग होगा। लेकिन फिरिश्ता और निजामतउल्ला के कथनानुसार, इब्राहीम ने अपनी विशाल शक्ति के मद में शर्तों की ओर ध्यान ही नहीं दिया।[1] संघर्ष हुआ जिसमें इब्राहीम की करारी हार हुई और इस भावना के अनुसार कि 'कम संख्या वाले बड़ी संख्या वालों का शत्रु होते' सिकन्दर को विजय प्राप्त हुई और इब्राहीम सम्भल की ओर भाग गया। इस समय तक हेमू भी (युद्ध के) रंग-मंच पर उपस्थित हो गया था, और जब इब्राहीम उमस से कालपी पहुँचा हेमू ने उसे सत्कारा।

कालपी की दूसरी लड़ाई—

अपने स्वामी के खोये हुए साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने के प्रत्यक्ष उद्देश्य से दिल्ली की ओर कूच करने की हेमू की तैयारियों का निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

'इसी समय अदली ने हेमू को जिसे उसने अपना वजीर मनोनीत किया था असंख्य सेना से पहाड़ जैसे ऊँचे हाथियों से और सुसज्जित सशस्त्र-सेना से सम्पन्न करके दिल्ली को भेजा। कालपी पहुँचने पर हेमू ने पहले इब्राहीम को प्रेरित करने और युद्ध के लिए विवश करने का निश्चय किया। इब्राहीम संघर्ष के बाद हार गया और अपने पिता के पास भाग गया जो उस समय कालपी का गवर्नर था वहाँ दोनों ने अपने को दुर्ग में सुरक्षित कर लिया।[2]

धयाना का घेरा—

हेमू इब्राहीम का पीछा करता रहा और धयाना के दुर्ग को घेर लिया जिसमें पिता व पुत्र दोनों दृढ़ता पूर्वक सुरक्षित थे। यह घेरा तीन मास तक पड़ा रहा।[3]

खनवा की लड़ाई—

९६२ हिजरी अथवा १५५८ ई धयाना के घेरे के समय में आवश्यक सहायता पाकर इब्राहीम केवल एक बार दुर्ग से बाहर निकला और उसने धयाना से १० कोस दूर खनवा में एक युद्ध किया। लेकिन हेमू ने उसे फिर से किले में लौट जाने के लिए बाध्य कर दिया।[4]

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ १९६—'इब्राहीम ने इन शर्तों के लिए अपनी स्वीकृति दे दी लेकिन उसके मुखमण्डल ने उसको, निर्बलता का एक चिन्ह समझा। कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई, लेकिन इसमें अधिक विलम्ब न किया जा सका।'

२—निजामतउल्ला वार्ता 'मखजन' का अंग्रेजी अनुवाद।

३—फिरिश्ता-ब्रिग्स अंग्रेजी अनुवाद पृ १४९।

४—फिरिश्ता ब्रिग्स अंग्रेजी अनुवाद पृ० १४९।

आगरा का युद्ध—

इस तीन माह के संघर्ष के निर्णय के गुप्त अवसर पर जब कि हेमू, इब्राहीम को घुटने टेक देने के लिए बाध्य करने वाला ही था अदली बंगाल के शासक मुहम्मद शाह सूर के विद्रोह से आतंकित हो गया। बंगाल के शासक के इस अप्रत्याशित आक्रमण ने अदली को विवश कर दिया कि वह हेमू का बयाना के घेरे से वापस बुला ले और इब्राहीम ने उसकी इस गहरी वापसी से साहस पाकर उसका पीछा किया। आगरा के समीप पहुंच कर उस पर आक्रमण किया। लेकिन फिर हार जाने के कारण उसे बयाना में अपने पिता के पास भाग जाना पड़ा'।[1]

एक अन्य वर्णन के अनुसार "जब हेमू इसके (वापिस बुलाए जाने) के फलस्वरूप मुबारिज तक लौट गया था इब्राहीम किले से बाहर निकला और उसका पीछा किया लेकिन परास्त होने के कारण और अपने पिता के सम्मुख जाते हुए लज्जा के कारण उसने अपना मार्ग बदलकर पटना की ओर कूच कर दिया।" इस घटना का एक और भी भिन्न वर्णन है जिसके अनुसार इब्राहीम पहले पटना की ओर नहीं अलवर की ओर भागा। वहां उसे हाकिम हाजी खां से सहायता मिली और हेमू के विरुद्ध लड़ने के लिए उसने पुनः शक्ति जुटा ली।

अलवर का युद्ध —

शत्रुओं की इस नई दुरभिसंधि का सामना करने के लिए और स्वयं को स्वतन्त्र रखने के लिए तथा बंगाल के मुहम्मद शाह सूर का सामना करके अपने स्वामी अदली के आवश्यक आदेश को मानने के लिए हेमू ने अपने भतीजे महिपाल को अपनी सेना के एक भाग के साथ इब्राहीम का पीछा करने को नियुक्त किया। एक संघर्ष हुआ और हेमू की सेना ने महिपाल के नेतृत्व में इब्राहीम को हरा दिया। इब्राहीम बयाना में अपने पिता के पास लौटने के लिए बहुत लज्जित था। फलस्वरूप वह पूर्व की ओर भाग गया।[2]

'लेकिन स्थानीय (पटना के) राजा राजा रामचंद्र को अपनी ओर मिलाने में असफल होने पर उसको युद्ध लड़ना पड़ा जिसमें वह पराजित हुआ और बंदी बना लिया गया। राजा उदारता और नीति कामों के कारण सर्वत्र उसे उच्चतम स्थान देता था अबकि स्वयं एक भारी सीधे बैठता था लेकिन वहां युद्ध समय बिना सेन के बाद वह सिपाहियों के अफगानों द्वारा बुलाया गया और इसीलिए मारवा[3] बसा गया। पर वहां अपना स्थायित्व न होने के कारण

१—तियामतउल्ला जाने के अनुसार मखजान का अंग्रेजी अनुवाद यह युद्ध मुबारिज में हुआ था।
२—तियामतउल्ला अंग्रेजी अनुवाद जाने "दि मखजन
३—९६२ १२५४ ई० फिरिश्ता के कथनानुसार अफगानों ने आजमगढ़ में युद्ध किया और हरा दिया—जिल्द—२ पृ० १४९।

वह बंगाल की ओर चला गया जहाँ उस समय (वर्ष १५३) सुलेमान करर्रानी ने उड़ीसा के जिला पर पूर्ण प्रभुता स्थापित कर ली थी और राजीनामा होने पर और आश्वासन दिए जाने पर उसकी नौकरी कर ली पर उसके द्वारा छल से उसकी हत्या कर दी गई।

छुपुर्ग हट्टा का युद्ध—

इब्राहीम को हराकर और अपने भतीजे महिपाल द्वारा उसका पीछा करने का प्रबन्ध करके हेमू पूर्व की समस्याओं को सुलझाने तथा घटनाओं पर ध्यान देने के लिए तेजी से चुनार की ओर बढ़ा। बड़ी सेना के साथ उसने बंगाल के शासक का पीछा करना आरम्भ किया बंगाल शासक उससे बचता रहा और चालाकी से घेरे से निकल कर पश्चिम की ओर भाग खड़ा हुआ। वह रोहतास[1] के पास की पहाड़ियों को पार करके बुंदेल खण्ड के प्रदेश में घुसा जहाँ हेमू द्वारा पीछा किए जाने पर कालपी से १० मील दूर छुपुर्ग-हट्टा नामक गाँव में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई और बंगाल का मुहम्मद शाह सूर मारा गया।[2] निजामतउल्ला के कथनानुसार 'इब्राहीम सूर की हार के बाद अदली के पास वापस लौटते हुए, हेमू ने छुपुर्ग हट्टा के समीप मुहम्मद खाँ गूरिया से युद्ध किया उसे मार डाला और बहुत सा लूट का माल हस्तगत किया। उसने अब दुगुने उत्साह के साथ शेर करर्रानी का नाश करने के लिए बिहार की ओर कूच किया।[3] अन्य वृत्तान्तों के आधार पर बताया गया है कि मुहम्मद खाँ परास्त होने के पश्चात् जमुना में डूब कर मर गया।

सिकन्दर शाह सूर—

जब कि हेमू पूर्व की समस्याओं तथा परिस्थितियों को सुलझाने में व्यस्त था और बिहार और बंगाल में अदली के विपक्षियों का नाश कर रहा था, मुगल साम्राज्य के पश्चिमी भाग में अदली के एक अन्य रिश्तेदार, सिकन्दर शाह सूर को पूर्ण छूट मिल गई थी जिसने इब्राहीम से दिल्ली और आगरा का अधिकार छीन लिया। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि हेमू ने सिकन्दर के पक्ष में कोई भाग लिया अथवा नहीं पर यह स्पष्ट है कि उसने

१—रोहतास बिहार-पश्चिमी बिहार में है यह मक्खर प्रदेश (पंजाब) में टोडर मल जी की सहायता से शेरशाह द्वारा निर्मित रोहतास दुर्ग से भिन्न है।

२—फ्रिश्ता जिल्द जिल्द २ पृ १८९। इलियट खण्ड ४ पृ० १०७ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जालौन १९०९ के अनुसार छुपुर्ग-हट्टा को दूरी कालपी से २० मील बतायी गयी है। पृ०१२२

३—निजामतउल्ला दि 'मखजन' डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

उसके प्रभावशाली अफगान सेनापति इब्राहीम को कार्य-क्षेत्र से हटा दिया। यदि अबकी हेमू पूर्व की ओर वापस न बुला लेता तो या तो वह सिकन्दर का साथ देता या उसका विरोध करता। लेकिन सिकन्दर हिजरी ९६२ में (१५५४ ई) आगरा में सिंहासनारूढ़ हुआ ही था कि उसको उत्तर-पश्चिम से मुगलों के दूसरे आक्रमण का सामना करना पड़ा।

सिकन्दर ने अपने आधीन अफगान सामन्तों को एकत्र किया और उनसे इस प्रकार बोला—[1]

'मैं अपने को आप लोगों में से एक समझता हूं। अनेक जनहित के कार्य करके भी मैं किसी उच्चता का दावा नहीं करता हूं। बहलोल ने लोदी वंश को कीर्ति और प्रतिष्ठा तक पहुंचाया। शेरशाह ने सूर वंश को अलंकृत किया और अब अपने पिता की विजयों का उत्तराधिकारी मुगल हुमायूं हम सबका नाश करने और अपना शासन पुनः स्थापित करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए यदि आप सच्चे हैं और आपसी भेदभाव और शत्रुता को मिटा दें तो हम अपने साम्राज्य को अब भी बचा सकते हैं। लेकिन यदि आप मुझे शासन के योग्य नहीं समझते तो आप अपने में से किसी एक अधिक योग्य नेता अथवा अन्य दृढ़ व्यक्ति को चुन लें ताकि मैं भी उसके प्रति राजभक्ति की शपथ ले सकूं। मैं बहुत विश्वास पूर्वक उसकी सहायता करने का वचन देता हूं और साम्राज्य को उन अफगानों के हाथों में सुरक्षित रखने का प्रयास करूंगा जिन्होंने गत कई वर्षों से अपने पराक्रम द्वारा इसे सुरक्षित रखा है।

सिकन्दर ने इस प्रकार अफगानों का विश्वास प्राप्त किया जो बहुत ही कम समय तक बना नहीं रहा। बहुत शीघ्र उनमें आपस में सम्मान और पदों के लिए झगड़े उठ खड़े हुए और फूट की ज्वालाएँ फिर से भभक उठीं और पहले से भी अधिक तीव्रता से प्रज्ज्वलित हुईं। यहां तक कि अफगान संगठन बिल्कुल खोखला हो गया। ऐसी संकटमय स्थिति में हुमायूं ने फिर से दिल्ली का सिंहासन पाने के लिए हिन्द की ओर कूच किया। हेमू ने जिसने पूर्व में एक विशिष्टता प्राप्त कर ली थी चुनार व जौनपुर में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी बिहार और बंगाल को आधीन कर लिया था और उसका दबाव कालपी व्हा सियर और अलवर पर पूर्ण आधिपत्य हो गया था। हेमू मुगलों के इस नवीन आक्रमण को स्थिर चित्त से नहीं देख सका। उसके नाम मात्र के स्वामी को उस पर पूर्ण विश्वास था और उसने हेमू के पक्ष में लगभग सभी अधिकार त्याग दिये थे। वह चुनार में रहकर ही संतुष्ट था। इस अवसर में सिकन्दर ने मुगलों के दलों का सामना किया सरहिन्द के निकट हार खाई और शिवालिक पहाड़

१—तियाखतजल्ला वि मखजन डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

की ओर चला गया।[1] अदली में मुगलों का सामना करने के लिए हेमू को अपनी सेना को संगठित करने के आदेश दिए।

१—इस-बक्शली के कथनानुसार राज्याभिषेक के निर्णय के बाद शाही सेनाओं को सिकन्दर के विरुद्ध (जो) पहाड़ी किले में (था) भगाया गया। सिकन्दर तीन मास तक युद्ध करता रहा लेकिन अन्ततः हार गया"। पृ० सं० ४ नोट द्वारा अंग्रेजी अनुवाद देखिए पृ० १२ तथा २ सिकन्दर शिवालिक पहाड़ियों से जौनपुर आया वह मौड़ प्रदेश की जागीर चाहता था। उसकी यह मांग स्वीकार होने के पश्चात् वह बंगाल चला गया जहाँ दो वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

अध्याय—५

हुमायूँ का अल्पकालीन-शासन तथा हेमू

ग्वालियर में इस्लाम अथवा सलीम शाह मरा हुआ तथा २८ जिलक्दा हिजरी ९६० तदनुसार १० अक्तूबर १५५३ ई० में उसका देहान्त हो गया।[1] उसकी छोटे-छोटे सामन्तों की शक्ति क्षीण करने की नीति ने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अफगान शासन के प्रति किसी की भी आस्था नहीं रह गई थी। चारों ओर अस्तव्यस्तता स्वार्थ परता एवं पारस्परिक अविश्वास का साम्राज्य था। इसी समय हुमायूँ को दिल्ली तथा आगरा के पुराने पठान हितैषियों से पत्र मिले जिनमें उसके प्रत्यागमन के स्वर्ण अवसर की सूचना दी गई थी। परन्तु उस समय उसके प्रसाधन अत्यन्त स्वल्प होने के कारण हुमायूँ ने उस निमंत्रण की ओर कोई ध्यान न दिया तथा अत्यन्त उदासीन हो गया।[2]

अफगान साम्राज्य की शासन-सत्ता अदली के हाथों में आ गई तथा वह बिहार, जौनपुर एवं गंगा नदी के पूर्वी देशों में मान्य समझा जाने लगा। उसके प्रतिद्वन्दी पंजाब तथा बंगाल में सक्रिय थे। उसके प्रधान मंत्री हेमू ने अत्यन्त सतर्कता पूर्वक उन प्रतिद्वन्द्वियों से २२ युद्ध किए और उनको परास्त कर सफलता प्राप्त की। सुल्तान इब्राहीम बुरी तरह से पराजित हुआ तथा सिकन्दर को सिवालिक पहाड़ियों तक पीछे हटना पड़ा। मेरठ ग्वालियर, कालपी इटावा तथा सम्भल के अफगान क्षेत्रीय प्रशासकों से शासनसत्ता स्वीकार कराने का श्रेय हेमू को था। यह हेमू का ही साहस था कि अनेक बड़ी बड़ी बाधाओं के होते हुए भी उसने अफगान योद्धाओं के साधन जुटाए, उनकी शक्ति संचित की तथा मुगलों का भारतवर्ष में वापस आना असम्भव सा कर दिया।

१—डा ईश्वरी प्रसाद-हुमायूं—पृ १९३। अधिकतर इतिहासकारों ने इस्लाम शाह की मृत्यु की तारीख ९६१ हिजरी दी है परन्तु डा ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार यह त्रुटिपूर्ण है। अबुल-फजल ९६ हिजरी लिखता है—अकबर— —पृ ९१५। देखिए होदी बासा द्वारा रचित—स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री—पृ ४७७-८।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद-जिल्द—२ पृ १८४ १९।

भारतवर्ष पर मुगलों का आक्रमण—

दिसम्बर १५२४ ई० में हुमायूं ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए तैयारी की। उसके साथ १५ ००० घुड़सवार थे। मोमिन खां कावुम को अधिपति बनाया गया। पेशावर में बैरम खां कन्धार के अनुभवी सैनिकों के अन्य के सहित उससे मिल गया।[1] पंजाब में राहताम का युग था कि अफगान शक्ति का मुख्य केन्द्र था पंजाब के अफगानी प्रशासक तार खां द्वारा खाली कर दिया गया। लाहौर भी बिना अधिक प्रयास के मुगलों के अधिकार में आ गया। तथा अफगानों ने मुगलों को अमृतसर और सरहिंद पर अधिकार करने का भी अवसर दे दिया। फरवरी सन् १५४२ सरहिन्द तक का सम्पूर्ण क्षेत्र मुगलों के हाथ में चला गया। हुमायूं ने द्वितीय रबी तदनुसार २४ फरवरी सन् १५२२ को लाहौर में प्रवेश किया। जनता ने उसका स्वागत किया क्योंकि इस समय में अफगान अधिक लोकप्रिय नहीं थे। हुमायूं के सेवक जौहर ने अफगानों के संबंध में एक मनोरंजक कहानी जिसे उसने हुमायूं द्वारा उस समय सुनी थी जब उसे पट्टी हेबतपुर का परगना दिया गया का उल्लेख इन शब्दों में किया है —

'जब मैं परगना में पहुँचा मैंने पाया कि अफगान कृषक में अपनी पत्नियों तथा बच्चों को हिन्दू महाजनों के पास बंधक रख से धन दिये दिये गए धन राशि के प्रतिफल में धरोहर रख देने की प्रथा प्रचलित थी अतएव मैंने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि सब अनाज एकत्र कर लिया जो शुष्क कूपों तथा अन्य स्थानों में छिपाया गया था तथा उसको बेचकर महाजनों के ऋणों का भुगतान किया और अफगान कृषकों के परिवारों को मुक्त कराया'।[2]

इस प्रकार एक आज्ञाकारी जौहर मालगुजारी एकत्रित करने वाले पद पर पहुंच गया तथा उसने अपनी कार्यपटुता से हुमायूं को सन्तुष्ट किया।

दीपालपुर का युद्ध—

पंजाब में २ हजार अफगान सरदार खां तथा मासिर खां के नेतृत्व में मुगलों से युद्ध में मोर्चा लेने के लिए दीपालपुर में एकत्रित हुए।[3] हुमायूं ने शाह अबुल माली (एक सैयद जिसको हुमायूं पुत्र कहकर पुकारता था तथा जो तिरमिज का निवासी था) को एक मजबूत सैनिक टुकड़ी के साथ उनका

१—स्मिथ विन्सेंट अकबर पृ० २८—के अनुसार हुमायूं अपने खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए नवम्बर १५२४ ई० में भारत की ओर चला। देखिए गुलबदन द्वारा हुमायूंनामा अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० ११ २०।

२—जौहर हुमायूं के मेम्वरज़ स्टुअर्ट द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद।

३—जौहर के कथनानुसार अफगान सैनिकों की संख्या लगभग १० ००० थी परन्तु बदायूनी के अनुसार २० ००० थी।

पुकारता करने को भेजा। अफगान पराजित हुए तथा साह अदुलमाली घोड़े हुए धन सहित लाहौर भाग गया।

मछीवारा का युद्ध—

पंजाब की इस दुर्घटना ने दिल्ली में अफगानों के सरदार सिकंदर शाह सूर को घबरा दिया। उसने हुमायूं के विरुद्ध १० ००० अश्वारोहियों की सेना के सहित तार तार खां तथा हबीब खां को दिल्ली से रवाना किया। मछीवारा में सतलज नदी के तट पर दोनों सेनाओं ने डेरा डाला। शीतकाल के कारण सैनिकों ने ठंड अग्नि प्रज्वलित की। उन्होंने इस बात को किंचित मात्र भी नहीं सोचा कि शत्रु ऐसे अवसर से लाभ उठा सकते हैं। बैरम खां ने तुरन्त ही परिस्थिति को समझकर जलती हुई अग्नि के प्रकाश में नदी को पार करने का आदेश दिया। वह अब अप्रत्यक्ष रूप से ही अफगानों के डेरों की ओर बढ़ने लगा तथा अग्नि के चारों ओर सुख सताए बैठे हुए सैनिकों को तीरों से बेधना आरम्भ कर दिया जिससे वह लोग अस्त-व्यस्त हो गए। अफगानों ने (जो कीहड़ पुटि करने के लिए सुप्रसिद्ध थे) अग्नि को बुझाने के स्थान पर, जिसके कारण वे अपने शत्रुओं को नहीं देख सकते थे तथा शत्रु उन्हें भली भांति देख सकते थे उसमें और काष्ठ डाल दिया तथा बैरम खां की सम्पूर्ण सेना ने नदी को पार करके उन पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया और उनकी सैनिक शक्ति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अफगानों ने इस अवसर पर अपने सभी हाथी सामान तथा बहुत से घोड़े खो दिए।[1]

उस पराजय ने अफगानों के साहस को पंजाब तथा सरहिन्द में तोड़ दिया और वे अव्यवस्थित दशा में इधर उधर बिखर गए। सिकंदर उजबेग आगे बढ़ा परंतु दिल्ली से आए हुए तार-तार खां हैबत खां तथा शहीम मुबारकखां व अन्य सेना नायकों के अधीन अफगानों ने उसका सामना किया। इस समय दिल्ली के प्रशासक सिकन्दर सूर को और दिशाओं में भी युद्धों का संचालन करना पड़ा दक्षिण-पूर्व में उसे हेमू से युद्ध करना था तथा पंजाब की सीमा पर उसे हुमायूं के आगमन को रोकना था। अतः सिकन्दर सूर ने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। एक भाग हेमू और अलवर के विरुद्ध सक्रिय रहा तथा दूसरी सेना जिसमें १ ,००० घोड़ों के तार तार खां के नेतृत्व में " " से सरहिंद का चल पड़ी।[2]

१—फिरिश्ता हिन्दू जिल्द २ पृ० १८८ १९०।

२—बदायूंनी लिखता है कि जब हुमायूं को मालूम हुआ कि तार तार खां कयी पंजाब में १०,००० अश्वारोहियों के साथ पंजाब पर चढ़ आया है तो उसने बैरम खां इस्कन्दर खां उजबक मिर्जा शिहु खां इसाक खां बदाखशी हैदर मुहम्मद अखसर बेगी सिराक कोलाबी तथा खालिक दादी को लाहौर में भेजा।

मछीवारा का द्वितीय युद्ध—

अफ़गानों की इतनी बड़ी सेना के आगे बढ़ने का समाचार पाकर मुगल भयभीत हो गए। हुमायूं अपने को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं जालन्धर वापस चला गया। [1] बैरम खां ने इस प्रकार पीछे हटने तथा सिकन्दर उजबेग के भाग जाने का विरोध किया। उसने मुगल सेनापतियों का सुसंगठित होकर आगे बढ़ने का आदेश दिया। सिन्ध तार्दी बेग तथा सिकन्दर सभी से आज्ञा पालन करने को कहा गया। मुगल सैना ने पुनः एकत्रित होकर नदी को पार किया तथा रात्रि में अफ़गानों से युद्ध किया। अफ़गान घबड़ा गए और रणक्षेत्र छोड़कर भागने पर बाध्य हो गए। मुगलों ने सरहिन्द का प्रान्त प्राप्त कर लिया तथा पंजाब उनके लिए सुरक्षित हो गया। हिसार फिरोजा तथा दिल्ली के कुछ संरक्षित राज्य भी मुगलों के अधिकार में आ गए।

सरहिन्द का युद्ध—

सिकन्दर सूर ने एक बार फिर शक्ति संगठित की तथा मुगलों का विरोध करने का निश्चय किया। उसने ८ • अश्वारोहियों की सेना एकत्रित की तथा मुगलों का जिनकी संख्या ७ या ८ सौ थी स्वयं विरोध करने चल पड़ा। बैरमखां ने हुमायूं के पास उसकी सहायतार्थ स्वयं चले आने के लिए एक अतिआवश्यक संदेश भेजा—अन्यथा पीछे हटना अनिवार्य था। मुगल बादशाह २८ मई १५५५ को सरहिन्द पहुँचा गया और मुगल सेना की संख्या बढ़कर औहद के अनुसार ५ ••• तथा बयाजीद के अनुसार १• ••• हो गई।

दोनों पक्ष अपनी स्थितियों को सुदृढ़ करने में लग गए। डेढ़ मास तक इन लोगों ने तैयारियां की।[2] दूसरी शाबान ९६२ हिजरी अर्थात् बृहस्पतिवार २२ जून सन् १५५५ को युद्ध हुआ। अफ़गान जो अपने मस्त हाथियों पर आश्रित थे "पर्याप्त वीरता तथा साहस के साथ लड़े"। ईरानियों के घोड़े भाग खड़े हुए। मुगल तोप अफ़गानों के भयानक आक्रमण के समक्ष न टिक सकने पर भागने ही वाले थे कि हुमायूं की युद्ध नीति के परिवर्तन से परिस्थिति बदल दी। सिकन्दर की सेना तितर बितर हो गई तथा वह स्वयं सिवालिक पर्वत की ओर भाग गया। मुगलों के हाथ अफ़गानों का बहुत सा सामान

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ०—१४५।

२—बदायूनी—अकबरनामा—जिल्द १ पृ ९११—लेखक के अनुसार हुमायूं से अन्तिम निर्णयात्मक युद्ध होने से ४० दिन पहले से चातुर्यमय लड़ाई लड़ी।

आशाओं के विपरीत सिकन्दर उजबेग ने यह सूचित किया कि विरोध की उस समय भी पूर्ण आशंका थी अतएव हुमायूँ को शीघ्र ही दिल्ली के रिक्त सिंहासन पर अधिकार कर लेना चाहिए। मुगल सम्राट शीघ्र ही अपनी सेना को दिल्ली की ओर संचालित करके स्वयं २१ जुलाई १५५५ दिन मंगलवार को दिल्ली पहुँच गया। अबुल फजल के अनुसार यह घटना १ रमजान ९६२ (शनिवार २० जुलाई १५५५) को हुई। कहा जाता है कि हुमायूँ सरहिन्द से चल कर सतलज पहुँचा तथा उसी माह की चौथी तारीख को दिल्ली में प्रवेश कर के सिंहासनारूढ़ हुआ।[1]

अबुल फजल के अनुसार अबुल माली पंजाब का प्रशासक नियुक्त हुआ था। परन्तु बदायूँ कहता है " प्रान्त का शासन उसने अपने हाथ में ले लिया। तथा इस प्रकार सम्राट द्वारा नियुक्त किए गए अधिकारियों को अधीनस्थ कर दिया।[2] हुमायूँ उसका बड़ा आदर करता था अतः उसने इसकी ओर कोई ध्यान न दिया। इसके अतिरिक्त उसको सिकन्दर अफगान से युद्ध करते रहने का उत्तरदायी-पूर्व कार्यभार तथा दिल्ली एवं लाहौर के बीच पातायात बनाए रखने का कार्य सौंपा गया।

हुमायूँ की मृत्यु—

हुमायूँ की मृत्यु की वास्तविक तिथि के सम्बन्ध में तत्कालीन विद्वानों में बड़ा मतभेद है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।[3]

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
जौहर	—	११वीं रबी I ९६३ यह केवल स्टुअर्ट के अनुसार मे प्राप्त है। किसी हस्तलिपि मे इसका वर्णन नहीं मिलता।
बदायूँनी	शुक्रवार सायंकाल रबी	९६३ के अन्त मे
तोदी अभी रईस	एकवार रबी उल-अव्वल	सोमवार रबी-उल-अव्वल
अबुलफजल	शुक्रवार ११वी रबी उल-अव्वल	रविवार १२वी रबी उल अव्वल
निजामुद्दीन	७वीं रबी-उल अव्वल	१२वीं रबी उल-अव्वल
अब्दुल बकाउनी	७वीं रबी उल-अव्वल	१२वीं रबी उल-अव्वल

१—अबुलफजल अकबरनामा भिस्त १ पृ० ११४।
२—जौहर हुमायूँ के संस्मरण—पृ० १७१।
३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ—पृ० ९६२।

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
अहमद यादगार	७वीं रबी उल-अव्वल	११वीं रबी-उल-अव्वल
फिरिश्ता	७वां रबी(सूर्यास्त के समय)	११वीं रबी उल-अव्वल
अमल साहिब	११वीं रबी उल अव्वल (सायंकाल)	११वीं रबी उल-अव्वल
बादशाह नामा	—	रविवार, ११वीं रबी उल अव्वल
मक्तैसुल-माएसिर	शुक्रवार १६वीं रबी-उल अव्वल	रविवार ११वीं रबी-उल अव्वल

सबसे अधिक विश्वसनीय लेखकों के अनुसार हुमायूं की मृत्यु की तिथि ११ वीं रबी उल-अव्वल अर्थात् रविवार २६ जनवरी १५५६ होती है तथा घटना का दिन शुक्रवार होता है।[1]

घटना के पूर्व सम्राट की वास्तविक दशा के सम्बन्ध में अकबर नामा में थोड़े बहुत विवरण मिलता है। यह सर्व सम्मति से मान्य है कि हुमायूं को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था। जब अकबर ने पंजाब जाने की आज्ञा प्राप्त की उस समय हुमायूं ने अपने स्वर्ग जाने की बात कही थी।[2]

यद्यपि यह बात मुगल सम्राट के लिए उपयुक्त न थी तथा घबड़ाहट को चित्रित कर देने वाली थी विशेषकर उस समय जब कि समस्त मुगल परिवार की महिलाएँ काबुल में ही भारत आने की प्रतीक्षा कर रही थीं फिर भी हुमायूं अपनी भावनाओं को व्यक्त करने से अपने को रोक न सका। वह अक्सर दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्राचीन उद्यानों तथा समाधियों में भ्रमण किया करता था तथा उसका मस्तिष्क सदैव शीघ्र ही परलोक जाने के विचारों से भरा रहता था।

१—अकबर-नामा अकबरनामा पृ० ६५२ ६५४ ६५५ जिल्द—१ अंग्रेजी में बेवरीज द्वारा अनुवाद—साथ में अब्दुल हमीद का बादशाहनामा विलियो बिब्लि०—पंडित-संस्करण पृ ६३।

२—डा ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० ४८।

'अबुलफजल के वर्णन से प्रतीत होता है कि हुमायूं ने इस मौके के बारे में बहुत संकुचित भावना बना ली थी तथा वह अन्धविश्वास की कुशंकाओं व दुष्टता से दुखित था। उसने इसका प्रण कर लिया था कि यदि वह अपना पैत्रिक राज्य को पुनः प्राप्त कर सका तो संसार से विरक्त हो जाएगा तथा अपने पुत्र को सब कार्य भार सौंप देगा व स्वयं अपना शेष जीवन के दिनों को धार्मिक तथा विद्वान पुरुषों के मध्य में बिताएगा'।

बेवरिज ने गुलबदन के हुमायूँनामा की अपनी भूमिका[1] में यह वर्णन किया है कि किस प्रकार हुमायूं की अन्तिम घड़ियां मनोरंजक क्रियाकलापों में व्यतीत हुई। उसके पास उस समय पुराने मित्र बैठे थे, जो कि उसी समय मक्का से वापस आए थे तथा दोनों हाजी मार्गों का संदेश लाये थे। गुलबदन के पहले निवास-स्थान काबुल से आए हुए पत्र पढ़े गए। हुमायूं शेर मंडल (शेरशाह द्वारा निर्मित भवन) जिसे वह अपने पुस्तकालय के रूप में प्रयोग करता था की छत पर गया था तथा उस दिन उसने नीचे एक स्थित जनता को अपना दर्शन दिया था तदुपरान्त बेवरिज के कथनानुसार हुमायूं सम्भवतः तुर्की अतिथि को विदाई देने व स्वागत के लिए किसी शुभ घड़ी को निश्चित करने व संगम मकान के उदय होने को देखने के लिए व्यस्त रहा।

हुमायूं की प्राण-घातक घटना की तिथि शुक्रवार का समर्थन अबुल फजल द्वारा तथा तुर्की ऐडमिरल कातिब-रूमी सीदी अली रईस के प्रमाणिक वर्णन से होता है। क्योंकि वह उस समय दिल्ली में ही था यद्यपि उसने प्रकट रूप से यह नहीं कहा फिर भी संभवतः वह अन्तिम दिवस के दरबार में उपस्थित था। उसके शब्द यह है[2] —

नौ सेना अध्यक्ष—ऐडमिरल की 'प्रस्थान करने की सब तैयारियां हो चुकी थी हुमायूं ने शुक्रवार की संध्या को दरबार किया था। अपने विश्राम तथा विलास कक्ष को छोड़ते ही जब वह जीने के नीचे उतर रहा था उस समय मुअज्जन ने अजान दी। उसकी आदत थी कि जब कभी वह अजान सुनता था परमात्मा के सामने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए झुकने टेक देता था। ऐसी ही उसने इस समय भी किया परन्तु दुर्भाग्य से कई सीढ़ी नीचे गिर पड़ा तथा उसके शीश तथा भुजा में पर्याप्त चोट पहुँची। वास्तव में यह किंवदन्ती सत्य ही है कि भाग्य का लिखा हो कर ही रहता। हुमायूं की इस साधारण दुर्घटना से ही राजमहल में खलबली मच गई, परन्तु दो दिवस तक यह रहस्य (दुर्घटना का) गुप्त रक्खा गया। जनता में यह घोषित किया गया था कि सम्राट स्वस्थ है तथा निर्धनों को भिक्षा दान दिया गया। तीसरे दिन अर्थात सोमवार को उसकी (हुमायूं) अपने आघात के कारण मृत्यु हो गई।

बेवरिज ने अबुल फजल के वर्णन पर टीका करते हुए बतलाई गई का तुर्की एडमिरल (नौ सेना नायक) लिखा है क्योंकि हुमायूं अपना मनोरंजन के

१—गुलबदन हुमायूं नामा बेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ ४०।

२—मूलक वैन्डी का अनुवाद १८ पृ० ४२।

समय में कोई भी मुगल सेनापति इस नाम[1] का नहीं हुआ था। बदायूनी के अनुसार सीदी अली ने सम्भवतः खानाई खाँ नामक उपनाम अपनी 'चगताई' भाषा में परिवर्तन होने के कारण पाया होगा।[2] वह उसी समय मुखराम से आया था तथा शुक्रवार को दरबार में उपस्थित हुआ था क्योंकि हुमायूँ उसी दिन आने स्वागत तथा भेंट करता था।[3] इन प्रमाणों के बाद इतना निश्चय ही स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं की मृत्यु, दुर्घटना के दो दिन उपरान्त अर्थात् रविवार २६ जनवरी सन १५५६ ई० को हुई। दुर्घटना की तिथि भी २४ जनवरी निश्चित हो चुकी है। बदायूनी के शब्दों में "जब तक ज्योतिष द्वारा यह सिद्ध न कर दिया जाय कि मृत्यु का उदय शुक्रवार २४ जनवरी १५५६ को नहीं हुआ तब तक हम इसी दिवस को दुर्घटना का दिवस मान सकते हैं।" इस तिथि की पुष्टि पुनः सीदी अली के इस कथन से भी होती है कि उसने लाहौर के लिए तभी उस प्रस्थान के मध्य के बृहस्पतिवार को प्रस्थान किया। उसने मृत्यु के बाद तक प्रस्थान न किया तथा बृहस्पतिवार १७ वीं रवि उल-अव्वल को पड़ी होगी। बैरमखाँ के अनुवाद के अनुसार दिवस से विपरीत एडेलमरस का लाहौर में बृहस्पतिवार का आगमन हुआ था परन्तु यह स्पष्ट रूप से असंगत है।[4]

दुर्घटना का स्थान तथा गिरने की विधि—

यह एक अनोखी बात थी कि हुमायूं की मृत्यु शेरशाह द्वारा निर्मित भवन में हुई। सैयिद महमूद ने अपनी 'मआसर सनादीद' में इस इमारत का वर्णन किया है।[5] 'यह लाल पत्थर की एक अष्टकोण इमारत है तथा इसमें दो मंजिल है। परन्तु अब इसका प्रथम भाग ठोस है अर्थात् इसमें कमरे नहीं है। इसमें अन्दरूनी सीढ़ियाँ हैं जो दूसरी मंजिल को जाती हैं जो एक अष्टकोण कमरा है जिसमें आठ बने हुए हैं जिन्हें पुस्तकें रखने के प्रयोग में लाया जाता था। इस स्थान से दो प्रथम अष्टकोण सीढ़ियाँ छत तक जाती हैं जहाँ आठ खम्भों पर आधारित एक छोटी सुन्दर छतरी है। इनमें से पर्यवेक्षकों द्वारा एक सीढ़ी यह बतलाया जाता है जिससे हुमायूं गिरा था। सीढ़ी में एक घुमाव है तथा सीढ़ियाँ, सीढ़ियों के ऊँचे आधार एवं मंडेरें कड़ा पत्थर (ग्रेनाइट) के बने हुए हैं। इतना बतला देना चाहिए कि सीढ़ियाँ दूसरी मंजिल में प्रारम्भ होती हैं अतः हुमायूं

१—सीदी अली रईस।
२—बैरमखाँ-तुर्की प्रकाशन की भूमिका पृ० १७।
३—अबुल फजल अकबरनामा—अध्याय—६२ बवरीज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद पृ सं० ६५, ६५। जिल्द—१।
४—अबुल फजल अकबरनामा—जिल्द—१ पृ ६५-६५।
५—एलिएट की तवी का अनुवाद भी देखिए।

उससे पृथक गिरने के बजाए छत ही के बीच गिरा था। निश्चित ही वह मुंडेर पर नहीं गिरा। रोजर्स के अनुसार 'जीने छतरी के दोनों तरफ उस स्थान पर आते थे जो छतरी तथा मुंडेर के मध्य पड़ता था।

वास्तव में इस दुर्घटना के समय क्या हुआ यह नहीं जाना जा सकता परन्तु इसका सबसे अधिक विश्वस्त वर्णन अकबरनामा के रचयिता के इस शब्दों में पाया जाता है दिन के अन्त में वह पुस्तकालय की छत पर आया जो हाल में ही पुस्तकों से भर दिया गया था तथा वहाँ पर उपस्थित दरबारियों का कार्निश अर्थात् पूजा व आशीर्वाद देने का मुख्य संदेश देने के पश्चात् पर्याप्त समय तक वह धार्मिक (स्थान) मक्का गुजरात तथा बाबुल के सम्बन्ध में प्रश्न करता रहा।

सन्ध्या के आरम्भ में उसने नीचे आने की इच्छा प्रकट की तथा जब वह दूसरे जीने पर था एक अजान पड़ने वाले (मुअज्जिन) ने जिसका नाम मिसकिन (दुष्ट) था नमाज के लिए असमय ही अजान दी। सम्राट ने उस आवाज के प्रति आदर भाव दिखाने के हेतु वहाँ वह था वहीं बैठ जाना चाहा। जीने की सीढ़ियाँ (दरबात) तेज थी तथा पत्थर फिसलने वाले (मजबिलदा) थे उसका पैर बैठते समय पोशाक के हिस्से में (दार दामन ए-पोस्तिन) फँस गया और उसका डंडा फिसल गया। उसका पैर लड़खड़ा गया तथा वह सिर के बल गिर पड़ा। उसकी बाहिनी कनपटी पर कड़ा आघात पहुँचा इससे बाहिने कान के नहू के कुछ बिन्दु गिर पड़े। चूँकि उसका हृदय स्वस्थ था से परिचित था और इसलिए कि वह संसार के लिए मुक्त प्रदान कर सके तथा सामाजिक आवश्यकीय प्रबन्ध कर सके।[1] इस कारण उसने तुरन्त ही अपने कुली के हाथ अपनी कुशलता का एक शुभ संदेश साम्य की उत्सुकता उत्पन्न रेखाओं को केन्द्रित करने वाले के पास भेजा।

मृत्यु का गोपन —

यद्यपि हुमायूं की मृत्यु आकस्मिक थी फिर भी सम्बन्धित व्यक्ति हुमायूं को पर्याप्त समय से उसका पूर्वाभास था। परन्तु कर्मचारियों को एक आकस्मिक घबड़ा लगा था बैरम खां और अकबर की अनुपस्थिति तथा सुदूर महिमाओं के बाबुल में होने के कारण महल में कालाहल मच गया। विवाद को बचाने के हेतु दुर्घटना का समाचार दो दिन तक गुप्त रखा गया। जिस समय हुमायूं निश्चेष्ट अवस्था में पड़ा था तथा यह निश्चित हो गया कि उसका अन्त निकट है तब अकबर कुली अथवा जोगी द्वारा एक कर्मठ कामाशौर में अकबर के पास

१—अबुल फजल अकबरनामा पृ० ६२२ ४७ अध्याय ६०
पाद-टिप्पणी बिबलियोथि—पृ १६३।

भेजा गया जिसमें यह सूचित किया गया कि सम्राट हुमायूं एक दुर्घटना का शिकार हो गया था परन्तु वह स्वस्थ हो रहा था तथा अब चिन्ता की कोई बात नहीं थी। फर्मान इस प्रकार था—[1]

"उस दिन मैं अपनी मस्जिद की छत से उतरा। पांव जीने पर (या सिपाही जाना) ही था कि मैंने अजान सुनी तथा आदर की भावना से बैठ गया। जब अजान समाप्त हुई मैं उठा। परन्तु मेरे पैर की नोक मेरे कोट (जामा) की निचली भाग में फंस गई। मैं फिसल गया तथा गिर पड़ा। जीने के कान (गाला) से मेरे कान का निचला भाग टकरा गया तथा सहू के कई पत्थर मेरे कान के निचले भाग (पंजरा) में निकल गए। कुछ समय तक मैं मूर्छित रहा। जब मुझे चलना आया तो मैं दीनपनाह (माही सिंहासन स्थान) में चला गया। अब सब ठीक है मेरे लिए चिन्तित मत होना।

इसके उपरान्त तुरन्त ही तीन पत्र प्राण-लेवा दुर्घटना तथा उसकी मृत्यु की सूचना देने के लिए इस क्रम से भेजे गए।

१—एक दुतगामी पत्रवाहक कैरम बेग को सम्राट के जीने से गिरने की दुर्घटना की सूचना देने के लिए भेजा गया। उस समय मुगल सेना हरियाना में पड़ी हुई थी।

२—दूसरी सूचना शाह कुली के हाथ कालानौर भेजी गई।

३—तीसरी सूचना हर्ष से भेजी गई जिसमें हुमायूं के मृत्यु का दुखद समाचार भेजा गया था।

अब दुर्घटना की सूचना दी या दिन तक गुप्त रखी गई थी तब मृत्यु के समाचार का जैसा कि अकबरनामा के रचयिता के निम्नांकित कथन से स्पष्ट होगा उसको १७ दिन तक गुप्त रखा जाना अनिवार्य था।

"समयज्ञों ने जो इस घटना के समय उपस्थित थे इस भयानक घटना को गुप्त रखने का (मिलम्मुरुद) प्रयास किया तथा ऐसी हृदय-विदारक दुर्घटना को समझदार उच्चाधिकारी को सूचना भेजने और मुख्य-मुख्य पदाधिकारियों को जो राज्य के विभिन्न भागों में थे एकत्रित करने का प्रबन्ध किया। अत्यधिक बुद्धिमत्ता के साथ इस प्राण-घातक घटना को उन्होंने १७ दिन तक जनता से गुप्त रखा।"[2]

१—डॉ० बेनीप्रसाद हुमायूं तथा कथित फर्मान एक राजनैतिक चाल थी, जिसका हुमायूं के समीप कूटनीतिज्ञों ने उसकी कम-शक्ति के विषय में गढ़ा था व उसका साम्राज्य जनता को ऐसा विश्वास दिलाना था कि बादशाह के जीवन का कोई भय नहीं था। परन्तु वास्तव में हुमायूं की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी और वह रविवार २६ जनवरी १५५६ को सायंकाल के समय परलोक सिधार गया था। पृ. ३६८-६९।

२—मनुप फजल अकबरनामा पृ० ६२८। जिल्द—१

हुमायूं की मृत्यु ने भारत के इतिहास में निश्चय ही एक संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना प्रायः अस्थाई तथा अदृढ़ थी। शासन की बागडोर संभालने के लिए अकबर अल्पवयस्क ही था। बैरम खां को अपनी प्रभुता विज्ञान का अवसर भविष्य में मिलना था। अफगान असन्तुष्ट थे तथा तब तक अफगान सब को लेता हेमू आगरा तथा दिल्ली के नगरों[1] के द्वार पर रणभेरी बजा रहा था।

जनता को और सान्त्वना देने के लिए एक व्यक्ति को हुमायू की भांति वस्त्र पहनाये गए। वह जनता के समक्ष लाया गया। एक तुर्की ऐतिमिश्ता मीरी अली रईस ने वेष परिवर्तन कृति में सक्रिय सहयोग दिया तथा रोगी के स्वस्थ होने की असत्य सूचना के साथ साहौर भेज दिया गया।[2] अबुल फजल के शब्दों में —

जब दुखद घटना की सूचना प्राप्त हुई तो जैसा कि ऐसे संकट काल में स्वाभाविक ही है बड़ी विपदा तथा उपद्रव खड़े हो गए। अधिकारियों ने जनता के हृदयों को सान्त्वना देने व उनमें मुगल सत्ता के प्रति विश्वास बनाये रखने का प्रयास किया और ऐसे दुसह कारों में मित्र व शत्रु के लिए जो आवश्यक था किया। उन्होंने भरसक इस दुखद अभाव को पूरा करने तथा टूटी हुई राज शृंखला में जोड़ लगाने का प्रयत्न किया'।[3]

हेमू तथा हुमायू की मृत्यु—

एक युक्ति संगत प्रश्न यह उठता है कि प्राण-लेवा दुर्घटना तथा हुमायू की मृत्यु के समय हेमू कहां था तथा उसके सक्रिय होने का हुमायू की मृत्यु के पश्चात कार्यालय पर क्या प्रभाव पड़ा? अनेक इतिहासकारों के अनुसार हेमू को अकबर द्वारा हुमायू का जो पुनः मुगल साम्राज्य स्थापित करने आया था विरोध करने की आज्ञा मिली थी। जिस समय सिकन्दर सूर उत्तर-पूर्व से मुगलों को इस प्रकार आतंकित किए हुए था कि मृत्यु के समय में भी उसका उत्तराधिकारी अकबर तथा बैरम खां राजधानी से दूर सिकन्दर के विरुद्ध डेरा डाले हुए थे उस समय हेमू टिड्डीदल की भांति अपनी बृहत सेना तथा पर्वत सरीखे ऊँचे व लड़ाकू हाथियों के संग्रह करने में संलग्न था। यद्यपि अभी

१—विन्सेन्ट स्मिथ अकबर पृ २९।
"जब वह (हुमायू) जनवरी १५५६ ई० में प्राण-लेवा दुर्घटना में ग्रस्त हुआ तो हेमू अदिली की ओर से रणक्षेत्र में उपस्थित था उसका ध्येय अकबर को अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने से रोकना था।"

२—वही पृ १।

३—अबुल फजल अकबरनामा पृ० ६४।

समकालीन इतिहासों में हेमू की युद्ध की तयारी का कम विवरण मिलता है परन्तु सगनम मंत्री इस पर चुप है कि विगत दुर्घटना के समय वह कहाँ था व क्या कर रहा था।

अबुल फजल द्वारा किए गए निम्नलिखित कथन में संकट-कालीन परिस्थिति पर प्रकाश पड़ता है —

"सभी प्रकार बैर बँधाकर तथा परस्पर कसमें खाकर राजकीय कर्मचारी जो दिल्ली में एकत्रित हुए थे अपने अपने स्थानों को व्यथित हृदयों को सान्त्वना देने के लिए तुरन्त चल दिए। तारदी बेग ने जो उस समय उनकी राय के अनुसार नगर की परिस्थिति सम्भालने के लिए दिल्ली में ही था गुलाम अली मालवन्द तथा अन्य विश्वसनीय कर्मचारियों के हाथ समाचार संरक्षक न्यायालय भेज तथा स्वामि भक्ति एवं आज्ञाकारिता की याचना की। कामरान का पुत्र अबुल कासिम भी अद्योगति अर्पित करने के लिए भेजा"।[1]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि अधिकारीगण का हृदय आतंकित था तथा वह शीघ्रता से पुनः स्थापित मुगल साम्राज्य को आपत्ति में समझते थे। यह सोचना कठिन है कि वे भूतल यह भूले हुए थे कि हेमू क्या कर रहा था? कई वर्णनों से यह भी प्रमाणित होता है कि अकबर भी दिल्ली के रिक्त सिंहासन को अधिकारों के लिए पुनः प्राप्त करने का विचारक था। सिकन्दर पहले से ही शिवालिक की पहाड़ियों में परेशान था तथा हेमू के लिए ग्वालियर अलवर, कालपी इटावा और आगरा के क्षेत्र खुले पड़े थे। इन स्थानों से सहायता प्राप्त किए बिना हेमू अपना विशाल सेना के साथ कभी दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता था। आगरा बयाना तथा कालपी में घुमिश का प्रकोप था तथा हेमू ने अनवरत रूप से सेना को एकत्रित करने तथा सैनिकों हाथियों और उनके रसदों को जिताने का काम जारी रखा। अलवर में हाजी खाँ तथा सम्भल में खानी खाँ जिन्होंने दिल्ली के युद्ध में साथ दिया हेमू के साथ कार्य कर रहे थे।

हुमायूँ की मृत्यु दिल्ली पर अधिकार तथा हेमू के सिंहासनारूढ़ होने का सुन्दर वर्णन समकालीन कवि नक्कू मुहित ने "अलम रसिक माल" में जो राजावलली सम्प्रदाय का ग्रन्थ है इस प्रकार किया है —[2]

हुमायूँ साह जब गए फिर मरो—हेमू राज करुक दिल करो।
बहुरि अकबर को भयो राज—हेमू मारो बैठो गाज।

---

[1]—अबुल फजल अकबरनामा पृ ६२९।

[2]—भगवत मुद्रित इस अलभ्य रसिक माल १५० वर्ष पहले रचित हस्त-लिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित है। प्रकरण सबलसिंह की कथा—पृ० ४४ (७ क)।

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हुमायूं की अपने महल के जीने से गिर जाने से मृत्यु हो गई तो हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा कुछ समय तक शासन किया। यह विभिन्न वर्णन हेमू के सम्बन्ध में न तो एक मत ही है और न विभव रूप से लिखे गए हैं परन्तु इतना तो विश्वास करना कठिन है कि पल भाव में ही हेमू ने दिल्ली पर इतना भीषण आक्रमण करने के लिए इतनी विशाल सेना एकत्रित कर ली। वरन् यह सम्भव है कि जिस समय हुमायूं के साथ यह दुर्घटना घटी हेमू अपनी अपार धनराशि पूर्ण कोष तैयार तोपों तथा पुश्तादुर हाथियों सहित आगरा के समीप ही था।[1] इससे दिल्ली में छाये आतंक का कारण स्पष्ट हो जाता है। दुर्घटना के पश्चात तुरन्त ही हेमू चुनार की ओर बढ़ गया तथा आगामी कुछ ही मासों में मुगलों से टक्कर लेने के लिए सशस्त्र सेना तैयार कर ली। इस परिणाम की पुष्टि हुमायूं के शव-संस्कार सम्बन्धित विभिन्न वर्णनों से होती है।

देर से किया गया अन्तिम संस्कार—

मुगल सम्राट की मृत्यु को गुप्त रखने के लिए किए गए उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त हुमायूं के शव को दिल्ली में दफनाने के सम्बन्ध में असफलता एक बड़ा रहस्य बना है।[2] रैमनी सिद्दीकी की मासिर रहीमी के अनुसार जब हेमू ने तारदी बेग को पराजित करके तमर पर अधिकार कर लिया तो हुमायूं के शव को दिल्ली से सरहिन्द ले जाया गया।[3]

अमर्ती द्वारा 'हुमायूं बादशाह' नामक पुस्तक में यह कहा गया है कि हुमायूं का शव कब्र से खोदकर सरहिन्द ले जाया गया इस डर से कि हेमू उस जगह को बिल्कुल निराधार है। यदि शव गड़ा हुआ होता तो हेमू द्वारा उसकी दुर्गति होने की कोई सम्भावना न थी। सम्भवतः शव काफन (शव-गेही) में ही सुरक्षित था। मकबरा न बनने के कारण तथा राजनैतिक अस्तव्यस्तता से उसे दफनाया न जा सका था। सरहिन्द ले जाने में यह तात्पर्य था कि यदि लौटकर दिल्ली न आ सके तो शव को कैसे दफनाते। संकटकालीन परिस्थिति का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन इसी से हो जाता है। खोए हुए सिंहासन को प्राप्त करके पुनः विपत्ति में पड़ने के कारण दिल्ली सीमा ही लौटने की सुविधा के लिए स्वल्प ही था।

१—डा आर्शीवादि लाल मुगल साम्राज्य पृ० सं ११०

२—अबुल-फजल अकबरनामा पृ० ८१ ६१६ जिल्द १ अध्याय ६२।

३—मुन्शी-अब्दुल-बाकी-नेहावन्दी मासिर ए-रहीमी —अब्दुर-रहमान खान-खाना के सम्मरण बिबलियोथिका इंडिका अरबी तथा फारसी ग्रन्थमाला। सम्पादक डलेयो मुहम्मद हिदायत हुसैन द्वारा संपादित। पृ० सं०—६१६ जिल्द १।

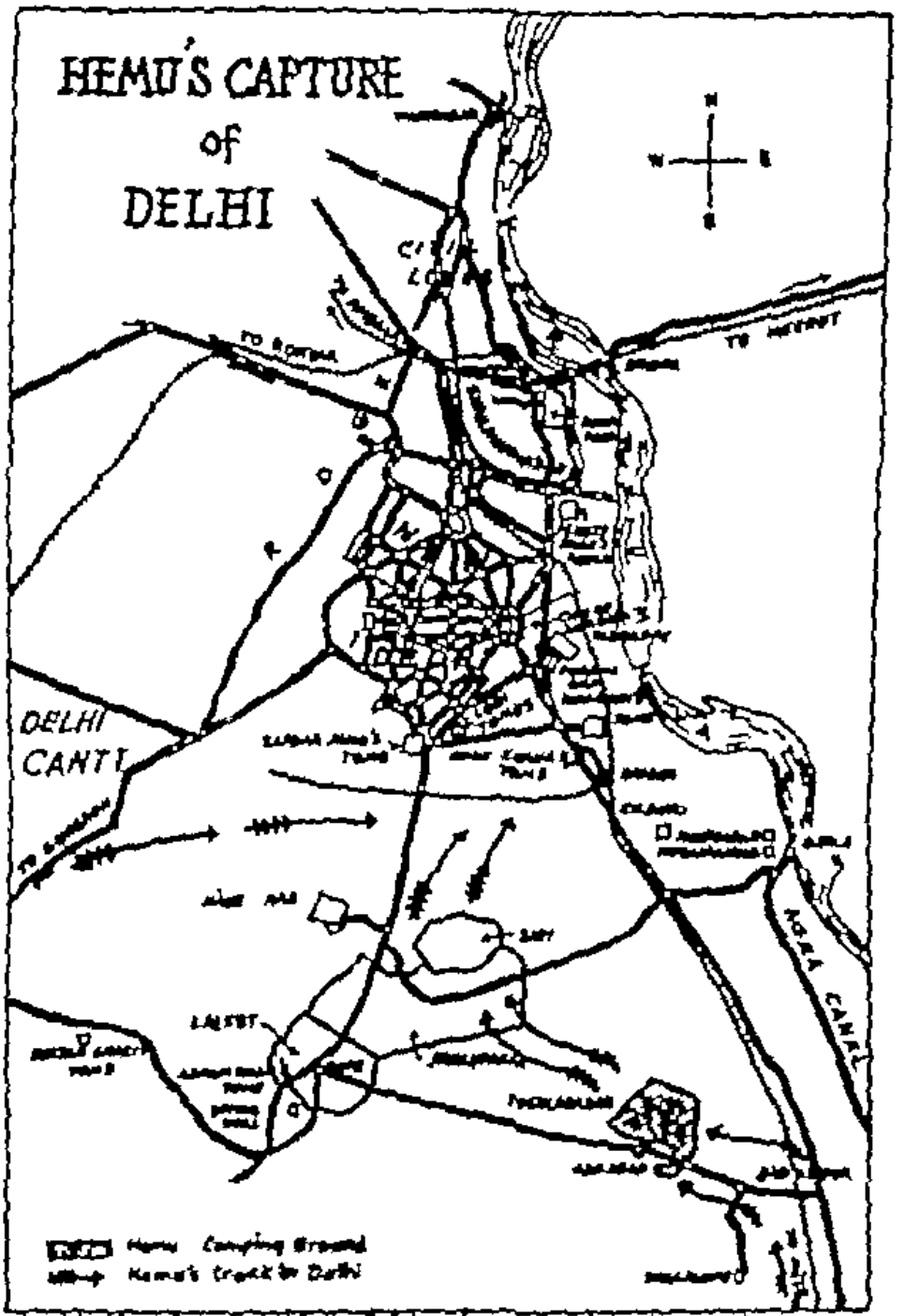
HEMU'S CAPTURE
of
DELHI
DELHI
CANTT
AGRA CANAL

अध्याय—६

दिल्ली पर आक्रमण तथा सिंहासनारोहण

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात तुरन्त ही मुगल शिविर में आतंक छा गया। शुक्रवार रबी उस सब्बल २ सन् हिजरी ९६३ तदनुसार १४ २ १५५६ को कलानौर[1] में अकबर को सम्राट घोषित कर दिया गया। यह घोषणा ११ फरवरी ही को कर दी गई थी।[2] बैरम खाँ ने संरक्षक का कार्य किया तथा उसने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि असन्तुष्ट तथा अवज्ञा करनेवाले मुगल सेनापति अकबर ही के साथ रहें। कहा जाता है इन प्रमुख सेनापतियों में से शाह-आबू-उल-मआली ने राज्य तिलक के अवसर पर किए जाने वाले दरबार में तुरन्त ही सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। यह समारोह सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे दिन मनाया जाने वाला था। मुगल इलाका आगरा तथा संभल से एक-एक करके निकाले जा रहे थे। हेमू की सेना बढ़ती चली आ रही थी। निजामउद्दीन इतिहासकार के कथनानुसार मुगल सैनिकों के एक दल ने जिसने सिकन्दर खाँ उजबक तथा कबाड़ खाँ सूर के नेतृत्व में आगरा पर अधिकार पा चुके थे अपने को हेमू की सेना के विरुद्ध असमर्थ पाकर दिल्ली वापिस आय कर शरण ली। यहाँ उन्होंने पुरे तारदी बेग खाँ के साथ आकर अपने को संगठित कर लिया।

अबुल फजल के अनुसार भी इन प्रान्तों में नियुक्त किए गए मुगल अधिकारी दिल्ली में एकत्रित हुए। तारदी बेग खाँ ने इन विभिन्न टुकड़ियों को संगठित किया तथा युद्ध की तैयारियाँ की। उसने प्रत्येक मनुष्य को ऐसी भाषा से प्रोत्साहित किया कि उनकी हिम्मत बढ़ गई तथा अविश्वास भरे हृदयों को शान्ति मिली। अनेक उत्साही तथा वीर मनुष्य विभिन्न जिलों से यहाँ आ गए परन्तु कुछ विद्रोही अफगानों को शान्त करने में लग रहने के कारण अली कुली बैरामी दिल्ली में अन्य साथी सेवकों से आकर न मिल सके।[3]

१—कलानौर गुरदासपुर नगर से १५ मील पश्चिम की ओर पूर्वी पंजाब में स्थित है। इसमें २००० निवासी रहते हैं। इनों का एक साधारण पक्का चबूतरा जिसकी लम्बाई १० फीट, ऊँचाई ३ फीट है उस स्थान का स्मारक है जहाँ अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ था।

२—अबुलफजल अकबरनामा जिल्द—१-पृ० ५१८।

३—अबुलफजल अकबरनामा पृ० ४६। जिल्द—२।

सम्भल का शादी खां—

जिस समय कि कलानौर में अकबर के राज्य तिलक का कार्य क्रम चल रहा था और दिल्ली में आतंक छाया हुआ था सम्भल [1] के शादी खां ने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दी एवं दिल्ली की ओर कूंच कर दिया। अकबर ने सिंहासनारूढ़ होने वाले दिवस से ही 'खान जमन' की उपाधि प्राप्त करने वाले अली कुली खां को अदली [2] के एक अमीर शादी खां अफगान के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सम्भल की ओर भेजा। बदाऊनी के अनुसार जब कि खान जमन (अली कुली खां) अफगानों का सामना करने की तैयारियाँ करने में व्यस्त था उसी समय दिल्ली आगरा तथा इटावा से यह सूचना मिली कि हेमू बड़ी संख्या वाली सेना हाथी तथा अदली से प्राप्त अपार धन राशि को लेकर मुगल आधीन भारत की सीमा पर स्थित सेना को हराता हुआ युद्ध करने की नियत से दिल्ली के समीप आ पहुँचा था। तब आगरा से इसकन्दर खां उजबेग इटावा से इब्राहीम खां काक्षी से मुबुस्सा खां उजबेग बियाना से हैदर मोहम्मद खां तथा सरहदी क्षेत्रों से अन्य सेनापति दिल्ली आ पहुँचे और तारदी बेग खां से मिल गए।[3] जिस समय यह सब जगहें हेमू द्वारा विजित की जा रही थी अली कुली खां के सिपाही शादी खां से जूझ रहे थे। उसको भी पीछे हटना पड़ा परन्तु यमुना के एक ही किनारे पर होने पर भी वह उनके तारदी बेग खां तथा अन्य मुगल सैनिकों के साथ हेमू का विरोध करने के ध्येय से साथ मिल न सका।

अबुल फजल ने निम्नांकित पंक्तियों में खान जमन द्वारा शादी खां तथा मुबारिज खां के प्रमुख अधिकारियों के साथ जिनके अधिकार में सम्भल सरकार के कई परगने थे युद्ध का वर्णन किया है—

अली कुली खां उसको (शादी खां को) कुचल डालने के लिए आगे बढ़ा। अपने से पूर्व ही उसने अपने कई अन्य अधिकारियों को भेज दिया था जैसे कि महावत खां सतीफ खां तथा यमानुद्दीन जिसमें कि वह रहाब नदी[4]

१—आधुनिक मुरादाबाद जिले में।

२—मुन्तखबाउल्लुबाब-उल-तवारीख-पृ १ हुमायूँ के द्वितीय आक्रमण के समय भारत वर्ष का नाम मात्र का बादशाह।

३—मुन्तखबाउल्लुबाब त-उल्-तवारीख—पृ १।

४—देखिए अरस्किन बाबर के संस्मरण का अंग्रेजी अनुवाद सम्भवतः बाबर के व्यक्तिगत संस्मरण में वर्णित 'रहाप' से तात्पर्य है। तुर्की में रहाप' लिखा गया है। बम्बई से प्रकाशित फारसी संस्करण में भी यही है। उसमें इसके स्थान पर 'राहत' है। जैसा कि अरस्किन ने सुझाया है यह रापती का नाम नहीं हो सकता यह तो बाह्य रूप से राम गंगा प्रतीत होती है। देखिए इलियट जिल्द १—पृ ४९।

को पार करके उसके आने की प्रतीक्षा करे। साहस के दम की मदिरा ने इस सेना को सतर्कता तथा हथियों से जो कि बुद्धिमत्ता की प्रथम अवस्था है रोक दिया। खाड़ी खाँ ने यकायक उन पर आक्रमण कर दिया तथा उन्हें पूर्णतया परास्त कर दिया। यह अयोग्य मुगल सिपाही बगैर किसी युद्ध नीति को अपनाए हुए मद और धृष्टता तथा साहस को सन्तुलित रखने के स्थान पर उसे खो बैठे। सलीम खाँ तथा कुछ और सैनिक डूब गए। इस दुर्घटना की सूचना पाते ही अली कुली खाँ अपनी सेना को लेकर, जिसमें मेहदी कासिम खाँ बाबा सईद खिजकाक तथा मुहम्मद अमीन दिवाना थे खाड़ी खाँ पर आक्रमण करने चल पड़। [1] परन्तु इसके पूर्व ही कि वह नदी पार कर सके उसको ज्ञात हुआ कि हेमू एक बहुत बड़ी सेना को लेकर दिल्ली के पास आ गया था तथा मुगल अत्यधिक संकट में थे। उसने (अली कुली खाँ ने) वहाँ से पीछे चलने का निश्चय किया परन्तु दिल्ली में सैनिक कार्यवाही इतनी तेजी से हुई तथा मुठभेड़ इतनी आकस्मिक हुई कि वह तारदी बेग से मिल न सका। अबुल फजल के अनुसार उसका विचार अगड़े में बचकर अथवा निश्चिन्त होकर दिल्ली आने का था। परन्तु इस घटना के विस्तृत वर्णन को देखने से मालूम होता है कि न तो वह पूरे उत्साह के साथ खाड़ी खाँ से युद्ध करने की तैयारी ही में था और न उसे इस बात की चिन्ता थी कि तारदी बेग खाँ को सहायता पहुँचाये। अकबर नामा के रचयिता ने स्वयं भी यह लिखा है —

'उसके (अली कुली खाँ) आने के पूर्व ही दिल्ली के अधिकारी एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ चुके थे हार चुके थे और दिल्ली हेमू के हाथों में आ चुकी थी और इस प्रकार उसे (हेमू को) वह सब साधन प्राप्त थे जिससे कि उसका गर्व तथा उद्दण्डता बढ़े।' [2]

हुमायूँ अबुल मासी का बड़ा सम्मान करता था परन्तु अपने निजी विचार तथा अविवेक के कारण उसको हिसार फिरोजा भेज दिया गया था तथा अकबर को पंजाब का प्रशासक नियुक्त किया गया था जिस समय अकबर तथा उसके शिक्षक व संरक्षक सिकन्दर सूर से मुकाबला करने सरहिन्द की ओर बढ़े उस समय मासी खाँ के बहुत से अधिकारियों ने उसे छोड़ दिया तथा अकबर से आ मिले। इस प्रकार परिस्थिति बदल जाने से अबुल मासी बड़ा व्यग्र तथा किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ। सिकन्दर अब भी स्वतंत्र रूप से विचर रहा था और अपनी सुनापति को ऐसा कोई अवसर न मिल सका कि वह उसे हरा

१—अबुल फजल अकबरनामा—पृ० ४६।

२—अबुल फजल अकबरनामा—पृ ४१—जिल्द—२

सकें।[1] खान खाना, अली कुली खाँ के किया कलापों का निरीक्षण करता रहा और अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के उपरान्त उसे अफगानों से युद्ध करने को नियुक्त किया। उद्दण्ड एवं गर्वीले सेनापति ने अपनी निन्दा को सहन कर लिया। परन्तु फिर कृत्रिम उत्साह से अपना कार्य करता रहा। हुमायूं की मृत्यु के पूर्व भी जब कि तारदी बेग को दिल्ली का गवर्नर बनाया गया था सम्राट द्वारा अबुल मामी को हटाने का आदेश दिया गया था क्योंकि वह अनुचित कार्य कर रहा था[2] मृत्यु के पश्चात बैरम खाँ तथा अली कुली खाँ अधिकार प्राप्ति की होड़ में परस्पर प्रतिद्वन्द्वी बने रहे।

दिल्ली पर अधिकार –

जब कि खानी खाँ विजय पूर्वक दिल्ली की तरफ बढ़ रहा था हेमू भी दिल्ली पर झपटा और तुगलकाबाद[3] के पास आकर अपना डेरा डाल दिया।

अबुल फजल के तत्कालीन घटनाओं के विस्तृत वर्णन के अनुसार मुबारिज खाँ के विरोधियों के ऊपर इस दुष्ट (हेमू) की सर्वनाश की और पतनोन्मुख विषयों ने उसे कुत्सित भावनाओं के कुचक्र में डाल दिया और जब 'जहाँबानी अल्लत आशियानी की दुखद मृत्यु वाली अवश्यम्भावी घटना की सूचना प्रान्तों में पहुँची तो उसने हेमू ने) अपनी अदूरदर्शिता के कारण दिल्ली में छाए हुए आतंक से लाभ उठा करके उसी समय सम्राट की शक्तिमान फौज से जिसका कि रक्षक उस समय अमरोहा ही था युद्ध करने का साहस किया।" निजामतुल्ला ने भी कहा है कि जिस समय अदली को हुमायूं की मृत्यु की सूचना मिली उसने (अदली ने) हेमू को अकबर को परास्त करने के लिए भेजा।[4]

इटावा कालपी तथा आगरा होकर हेमू दिल्ली की ओर बढ़ा। आगरा में उसका विरोधी सिकन्दर खाँ उजबेग दिल्ली की ओर वापस चल पड़ा। हेमू ने खानी खाँ की विजय का हाल जानकर आगरा का घेरा डाल दिया और

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं १२० १२८ अकबरनामा पृ० ६६२ जिल्द—१ अबुल मामी का अन्त बड़ा दुखद हुआ। ११ मई १५६४ ई को काबुल के मिरजा हाकिम की आज्ञा से उसे प्राण दण्ड दिया गया।

—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० ११२।

२—तुगलकाबाद यह दिल्ली से १२ मील दूर मेहरौली-कुतुबपुर मार्ग पर स्थित है। इसकी नींव सन् ११२१ ई में गयासउद्दीन तुगलक ने अपनी राजधानी के लिए डाली थी। यह ११२२ ई० में बनकर तैयार हुआ था तथा ११२७ ई में उसके बेटे मुहम्मद बिन तुगलक की आज्ञा से खाली कर दिया गया था।

४—निजामतउल्ला मखजन ए अफगाना डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

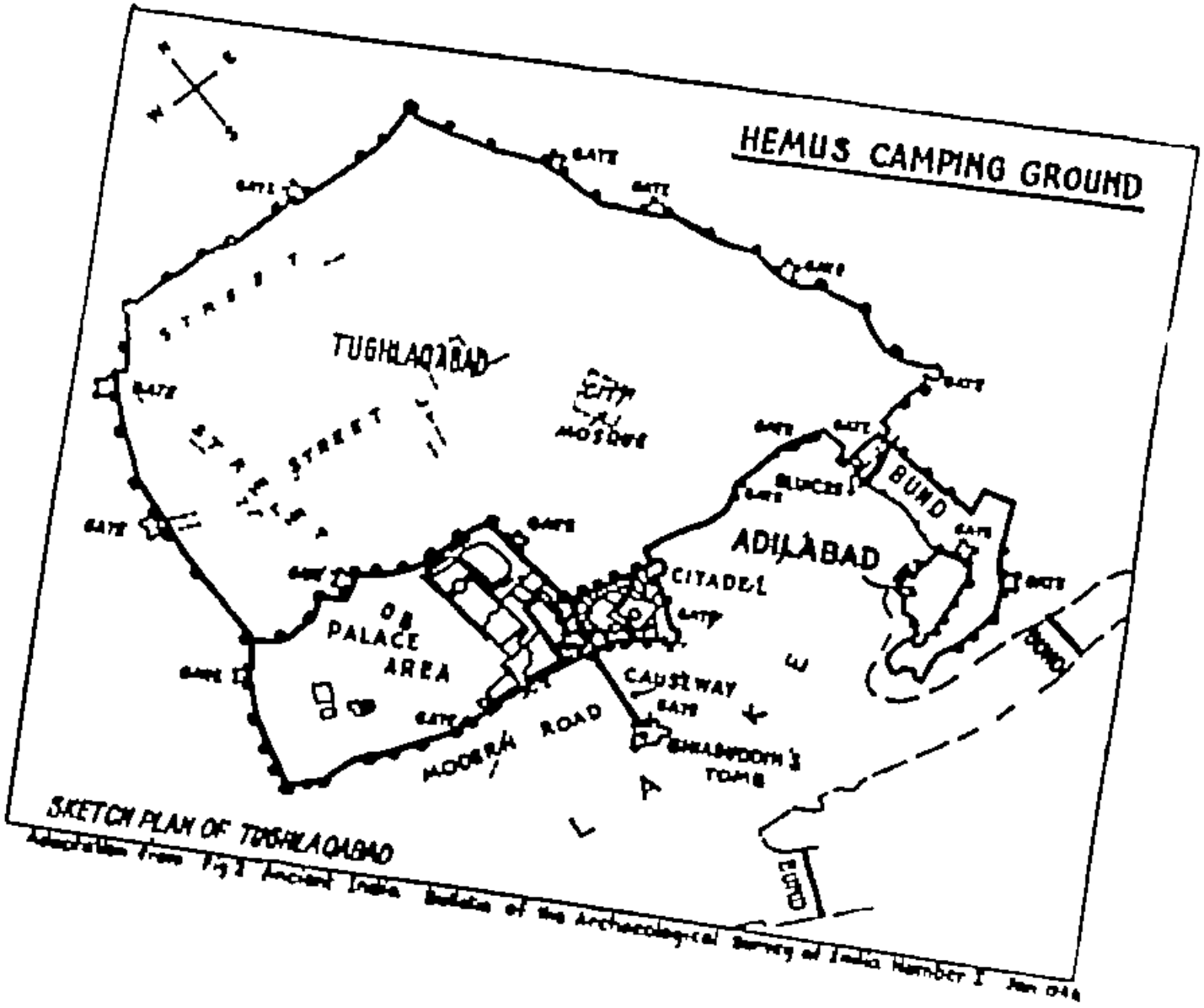

SKETCH PLAN OF TUGHLAQABAD

Adaptation from Fig 2 Ancient India Bulletin of the Archaeological Survey of India Number 2 Jan 1946

उसे अपने अधिकार में करके दिल्ली की ओर चल पड़ा[1]। निजामउद्दीन ने यह भी लिखा है कि हेमू ने सौगन्ध खाई थी कि यदि वह दिल्ली को विजित कर सकेगा तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेगा परन्तु यह उसके भाग्य में लिखा न था। उसने अपने प्रण का पूरा न किया और सदैव हिन्दू बना रहा।[2] परन्तु उस समय के किसी भी अन्य इतिहासकार ने इसका बखान नहीं किया है। हेमू के निजी धार्मिक प्रवृत्तियों तथा दृढ़ संकल्प को देखते हुए इस सोद्देश्य पर विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है।

यह भी कहा जाता है कि उसने (हेमू ने) अफगानों के प्रति बड़ा गर्वीला व्यवहार किया। सेना के अधिकांश भाग को हेमू आज पर आमन्त्रित किया करता था तथा स्वयं एक इतने ऊँचे सिंहासन पर बैठता था जहाँ कि किसी का हाथ भी नहीं पहुँच सकता था और उस स्थिति में अफगानों से हास्य विनोद किया करता था तथा उनको आज्ञा देता था कि वह बादल खाय तथा उसे हेमू शाह के रूप में सलाम करें। इससे क्रुद्ध अफगान सामन्त असन्तुष्ट हो गए और उन्होंने निश्चय किया कि अवसर आते ही वह उसका पक्ष छोड़ देंगे। परन्तु बाद की घटनाएं, शादी खाँ का सम्मान तथा हाजी खाँ का असफल न सम्मिलित आक्रमण तथा दिल्ली विजय इस बात की पुष्टि नहीं करते हैं। यहाँ तक कि तथा कथित हेमू की सेना के तोपखाने के अपनी ओर के पानी पत के युद्ध में विद्रोह करने का भी कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता क्योंकि हेमू बराबर अपने पर्वताकार युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता रहा। तोपखाने के बहुत भाग खो जाने से हेमू की हानि अवश्य हुई परन्तु उससे वह विचलित नहीं हुआ। अकबरनामा के रचयिता ने यथार्थ ही लिखा है कि —

"अपार धन सैनिकों की संख्या तथा युद्ध के सामान से जिन्हें भारत के विभिन्न भागों से एकत्रित करके छोड़ गए थे उसे और भी साहसिक एवं निर्भीक बना दिया तथा इसी प्रकार राज्य के नगरों तथा कस्बों को उनके विजेता अधिकारियों में आधीनता स्वीकार करने का भी प्रभाव पड़ा।"

"हेमू दिल्ली पर पूरी तैयारी के साथ बढ़ आया। अन्तर्ज्ञानरूपी वह अपनी दुस्साहसपूर्ण यात्रा की पूर्ति के लिए ५० ०० घुड़सवार १० ० हाथी ५१ तोपें तथा ५०० छोटी नौकाएं लेकर अग्रसर हुआ।[3]

अन्त में—

"प्रथम वर्ष के पवित्र मास २४ वीं सिहिर को सशस्त्र, पूर्ण तैयारी के साथ जिस हिजरी ९६३ अर्थात् ६ अक्तूबर १५५६ ई को हेमू दिल्ली के पास

१—फिरिश्ता पृ० १८४— से १९ ।
२—निजामउद्दीन मक्तबात—ए—अफगाना।
३—मासिर रहीम-अकबर-नामा—जिल्द २ पृ ४७।

पहुँच गया तथा उसने तुगलकाबाद के पास डेरा डाला। फलतः मुगल अधिकारीगण एकत्रित हुए एवं परामर्श किया। बहुत से भय के कारण लड़ना नहीं चाहते थे। उनका कहना था कि जब तक कि बादशाह की सेना न आये उनको चाहिए कि वह दुर्ग का दृढ़ करते रहें। कुछ ने इस बात की अनुमति दी कि अली कुली खां के तथा उस सेना (सम्मस) को विजित करने गए हुए अधिकारियों के आने की प्रतीक्षा की जाए। कुछ वीर जिन्हें यश के लिए जीवन दान करने में संकोच नहीं था तथा युद्ध क्षेत्र को भोजन कक्ष से अधिक प्रिय समझते थे कह रहे थे कि इस अवसर को ईश्वर प्रदत्त उपहार समझा जाए तथा तुरन्त युद्ध के कार्य में व्यस्त हो जाना चाहिए।

गजल

भाग्य कहता है उसको त्याज्य समझो।
जो आज का काम कल पर छोड़ता है॥

अन्त में उन सबने युद्ध करने का निश्चय कर लिया तथा साहस से कमर बांधी।[1]

तारदी बेग खां ने दिल्ली में शीघ्रता से हेमू का मुकाबिला करने की तैयारियां शुरू कर दीं। उसने उन सभी अधिकारियों को एकत्रित किया जिन्हों ने कि राजधानी में आश्रय प्राप्त किया था। इनमें सब से प्रमुख अब्दुल्ला खां उजबेग तथा अबदुल्लाह के साले खां थे। इनके अतिरिक्त इस्कन्दर खां किया खां काक तथा हैदर मुहम्मद खां थे। बैरम खां न जिस तारदी बेग के प्रति स्पर्धा तथा साम्प्रदायिकता की विचार धारा के कारण कोई रुचि न ली पीर मुहम्मद खां शरवानी को दिल्ली का प्रबन्ध देखने भेजा।[2] अबुल फजल ने मुगल फौजों की हार का कारण पीर मुहम्मद को बताया है। उसके अनुसार 'यह (दिल्ली का पतन) सब भाग्य वश हुआ जिसका उद्देश्य केवल परमात्मा को ज्ञात था अथवा यह सब मौसाजी पीर मुहम्मद के निकृष्ट सलाहों के कारण हुआ। उसके अनुसार तारदी बेग ने अपना कर्तव्य[3] भली भांति निबाहा उसने अपना हृदय साहसपूर्ण बनाया तथा उन सबका साहस बढ़ाया जिनमें साहस की कमी थी।[4] बदाऊनी ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि खान जामा में जा स्वस्थ होते हुए भी तारदी भय से अवश हो गया था और उसके बावजूद भी उसका 'बड़ा भाई' कहता था। सेना की हार

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २ पृ ८७।
२—अल-बदाऊनी-पृ० ५
३—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द २-पृ ८६।
४—वही पृ ४७।

की कारण तारदी बेग का विश्वासपात्र जता कर तथा सम्राट को खान जमा तथा अन्य सामों की साक्षी इसकी पुष्टि में दिलाई और इस बात का पूर्ण विश्वास दिलाकर सब प्रकार की आज्ञा प्राप्त कर ली कि उसे मार दिया जाय।[1] उसके साथी ख्वाजा मुस्तान अली तथा मीर मुन्शी जिन पर की विश्वासघात का संदेह था तारदी बेग के एक सम्बन्धी सुंदर बेग के साथ जेल भेज दिए गए। माइने-अकबरी के लेखक ने भी तारदी बेग पर लड़ाइयों के बाद ही तुरन्त बिना विचार दिल्ली खाली कर देने का आरोप लगाया है।[2]

बैरम खाँ ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा। कुछ मुगल सेना पतियों ने काबुल चले जाने की सलाह दी। परन्तु ख्वाजा सही की परिस्थिति से भी भिन्न था जिसके कारण कि मुगल महिलाएँ लाहौर आश्रय प्राप्त करने को भेजी जा रही थीं। खान जमान उस समय मेरठ में था जब उसने इस दुर्घटना का हाल सुना तथा वह दिल्ली बचाकर सम्राट से मिलने गोंडेहरा की ओर चल पड़ा था (सम्राट) इस दौरान में अलवर में था तथा पंजाब के अतिरिक्त सभी प्रान्तों के छिन जाने के कारण किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था।[3]

अकबर ने बैरम खाँ पर पूर्ण विश्वास किया तथा उसे खान बाबा की उपाधि प्रदान की। उसने बैरम खाँ से विश्वासपात्र बने रहने का वचन पा लिया। परन्तु जब उसने मुगल अधिकारियों की सभा बुलाई तो उसमें अधिकांश इस मत के थे कि "चूंकि शत्रु की सेना में । . . अस्त्रागारेही तथा साही सेना में अटिलता से २० . होंगे अतः यही बुद्धिमानी होगी कि काबुल वापस चले जाया जाय। बैरम खाँ ने इसका दृढ़ता से विरोध किया। अकबर भी भारत में रहने के पक्ष में था। अन्ततः बादशाह मत मान्य हुआ तथा मुगलों ने भारत में ठहरने तथा युद्ध करने का निश्चय किया। फलस्वरूप मुगल सैनिक शिविर में पानीपत की ओर कूच करने की तैयारियाँ भी होने लगीं। जब कि अकबर आखेट में व्यस्त था बैरम खाँ तारदी बेग के घर गया तथा उसे अपने डेरे में ले आया। संध्या के समय जबकि वह प्रार्थना में लगा हुआ था उस समय उसका सर्वा दिया।[4] उसके ऊपर इस बात का अभियोग लगाया गया था कि उसने उस समय दिल्ली को छोड़ दिया जब कि उसकी रक्षा करनी चाहिए थी।

१—अकबरनामा पृ १।

२—अबुल फजल ब्लौचमैन द्वारा अनुवादित-आईन-ए-अकबरी जिल्द २—पृ० ११८-११९।

३—फिरिश्ता ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद। पृ० १८४ १९०।

४—अकबरनामा पृ १ ७।

अकबर के आने पर उसने अपने किये की सूचना उसे दे दी तथा यह भी सूचित किया कि दया का इस परिस्थिति में भयंकर परिणाम हो सकता था क्योंकि मुगलों की आकांक्षाएँ उस समय ऐसे ही योजनाओं पर अवलम्बित थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक शक्ति प्रयोग में ला सकता था। अकबर को विश्वास हो गया कि यदि तारदी बेग खाँ भी इस प्रकार उदाहरणार्थ दंडित न किया जाता तो मुगल सेना की परिस्थिति कुछ और ही होती तथा बाहरी खानों की भावनायें कुछ इस प्रकार की थी कि शेरशाह वाला अवसर (अर्थात् मुगलों का भारत से निष्कासन) एक बार पुनः दुहराया न जाये।[1]

बैरम खाँ का तारदी बेग का हत्या का दण्ड विधान में इस प्रस्तुतमता का बड़ा अच्छा प्रभाव अगताई सामन्तों पर बहुत पड़ा जो कि उसे उचितयुक्त न समझते थे। परन्तु वह निराश हो गये थे और उनके पास अकबर के शिक्षक व संरक्षक की आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। फिरिश्ता बदाऊनी तथा अबुल फजल सब इसका अनुमोदन करते हैं।

दिल्ली का युद्ध ७ नवम्बर १५५६

अबुल फजल के अनुसार मुगलों तथा हेमू की सेनाएँ पंचम माह मिहिर की अरब २५ वीं—तदनुसार २ जिलहिज्जा—७ नवम्बर १५५६ को तैयार होकर युद्ध-स्थल में एक दूसरे के सम्मुख आई दोनों पक्षों के प्रमुख सेनापति निम्नांकित थे—

मुगल पक्ष		हेमू—पक्ष
१—तारदी बेग खाँ		१—हेमू—केन्द्र तथा वामपक्ष के अध्यक्ष।
२—अफजल खाँ		
३—असरफ खाँ		
४—मौलाना पीर मुहम्मद शरवानी—बैरम का प्रतिनिधि		२—आदी खाँ (सम्मुख में)।
५—हैदर मुहम्मद खाँ	दाहिना पक्ष	१—हार्मा खाँ अलवर में।
६—कासिम माखसिम		
७—हैदर बख्शी		
८—अली दोस्त खाँ बाहेजी		
९—इस्कन्दर खाँ तथा दूसरी दुकड़िया।	वाम पक्ष	४—राय दुर्गेश शरवानी सम्मुख तथा दाहिना पक्ष।
१०—अब्दुल्ला उजबेग	सम्मुख पक्ष	
११—किया खाँ		
१२—लाल खाँ		

१—फिरिश्ता पृ० १८४ '९०।

२—अबुल फजल अकबरनामा—जिल्द २ पृ० ४८।

अकबरनामा के रचयिता ने हेमू की सेना की बराबर की प्रशंसा की है। उनके मत्ता में बैरी के पक्ष में भी टुकड़ियाँ सैनिक तरीके पर खड़ी की गई थीं और उन्होंने आगे बढ़कर पूर्ण प्रयास किये थे।

मुगलों के पक्ष से आक्रमण आरम्भ हुआ। उनकी आगे की सेना ने हेमू की सेना के दाहिने पक्ष पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण का भीषणता आगे की सेना के सेनापति अब्दुल्ला उजबेग तथा वामपक्ष के सेनापति इस्कन्दर मिर्जा द्वारा हुआ। उनका आकस्मिक आक्रमण सफल रहा और 'उन्होंने हेमू की सेना के अग्रिम एवं दाहिने पक्ष को भगा दिया और खदेड़ते रहे"[1]। बदाऊनी ने बदख्शां के साथ खाँ का दाहिने पक्ष पर रहना लिखा है परन्तु यह असत्य है। बल्कि उन्होंने बैरी की सेना को पूरी तरह भगा दिया और अपने सामने की ओर होंडल तथा पालवाल के कस्बे तक पीछा करते रहे। उनके हाथ बहुत सा सामान लगा। 'अबुल फजल के अनुसार" ४०० प्रसिद्ध हाथी भी इसी के *लूट के सामान में सम्मिलित थे तथा हेमू की सेना का प्रसिद्ध सेना नायक हुसैन* खलवानी बृहत जन संहार रूपी सागर में डूब गया। १०० से अधिक बैरी युद्ध में मृत्यु के घाट उतर गए।

हेमू अकबर से सहायता के लिए सेना की प्रतीक्षा कर रहा था। मुगलों की प्रारम्भिक सफलता देखकर वह आगे बढ़ आया था तथा 'पर्वतों जैसे बड़े हाथियों सहित सेना के मध्य में भी युद्ध से अलग रहा था। हाजी खाँ जैसे ही अकबर से आगे बढ़ा कि हेमू ने आवाज दी और तारदी बेग खाँ पर आक्रमण कर दिया जिसके पास मुट्ठी भर आदमी थे और एक ही बार में उसे पूर्णतया हरा दिया'।[2]

अबुल फजल ने हेमू की युद्धनीति का व इस आश्चर्यजनक विजय का एक और वर्णन इस शब्दों में किया है —

'अभागे हेमू ने जिसने अदम्य साहस के साथ चातुर्य को भी अपना लिया था युद्ध के मैदान में विकट चालाकी की नीति अपनाई। उसने १० चुने हुए हाथी तथा भीषण स्थिति उत्पन्न करने वाले युद्ध वीरों को आप सेना से अलग कर लिया और उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब उसे भागना अथवा आक्रमण करना पड़ता। जिस समय कि मुगलों की अस्त व्यस्त समय के लिए विजयी

१—अबुलफजल एलाटमैन द्वारा आईन-ए अकबरी का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३६१।

"इस्कन्दर मिर्जा जो बाबू (बुरंगबर) का नायक था उसने हेमू के अग्रणी भाग (हरावल) तथा बाएं बाजू (बुरंगबर) को पराजय कर दिया और बहुत से मनोहों को मार गिराया।

२—अलबदाऊनी पृ० ६।

सेना ने अपने अनुकूल परिस्थिति बना ली थी और सड़क धामों को खदेड़ रही थी तथा उसके कुछ लोग लूट का सामान एकत्रित करने में व्यस्त थे । तारदी बेग खाँ जिसको इस वीरता के मैदान में सम्मान का पद प्राप्त था थोड़े से सैनिकों के साथ दूरस्थ पर विचार-मग्न खड़ा था। चतुर हेमू ने यह अवसर देखकर उन पर आक्रमण कर दिया।"

"मुगल सेनापति हेमू के इस भीषण आक्रमण का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त साहस संचित न कर सके। पीर मुहम्मद ने भी भागना ही पसन्द किया। तारदी बेग खाँ सब कुछ खोया हुआ जानकर भाग खड़ा हुआ। हेमू तुरन्त ही दिल्ली नगर में प्रविष्ट हुआ। जो मुगल सेनापति आगे गया हुआ था उसने जब दिल्ली वापस आकर इस परिवर्तित परिस्थिति को देखा तो वह भी तुरन्त ही भाग खड़ा हुआ। परन्तु हेमू ने अपने सैनिकों को उनका पीछा करने से मना कर दिया।

सिंहासनारोहण—

हेमू की यह दिल्ली विजय निर्णयात्मक थी और उसने तुरन्त ही उसे सुदृढ़ बनाना आरम्भ कर दिया।

"संक्षेप में हेमू ने जो कि अपनी बड़ी सेना को तितर-बितर तथा अनिश्चित अवस्था में देख रहा था इस घटना को (तारदी बेग खाँ का भागना) अपने पैरों की बाग समझा तथा उनका पीछा नहीं किया। तारदी बेग खाँ ने लेकिन अपनी सेना को समस्तपूर्वक उसी युद्धक्षेत्र में ला खड़ा किया। सेना के बड़े दलों को विचलित कर देने वाले वीरों ने जिन्होंने सैनिकों का पीछा किया था जब वह वापस आये आश्चर्य चकित रह गये और तुरन्त उसी दिशा में चल दिये जिधर तारदी बेग भाग गया था।

'इसके पश्चात् हेमू दिल्ली में प्रविष्ट हुआ और अपनी उद्दण्डता में और भी वृद्धि कर दी जिससे उसका गर्व कभी नशा पागलपन में परिवर्तित हो गया।[1]"

इस महान विजय को प्राप्त करने के उपरान्त हेमू ने अपने को दिल्ली का सम्राट घोषित करने का निश्चय किया।[2] अब तक उसने अदली के ही नाम पर युद्ध संचालन तथा शासन किया था व अधिकार प्राप्त किये थे परन्तु दिल्ली तथा आगरा जैसे स्थानों की आकस्मिक विजयों को सुदृढ़ तब तक नहीं

१—अकबरनामा पृ० ६ ७

२—साधु चरितमिश्र द्वारा प्रकाशित बयाना-लेख से ज्ञात होता है कि हेमू ने अपने भाई पुजारी राय को दिल्ली के दक्षिणी भू भाग का सूबा नियुक्त किया था। और महिपाल व रमैया को सेना-नायक बनाया था।

बनाया जा सकता था जब तक वह स्वयं सम्राट के पूर्ण अधिकार न प्राप्त कर ले। इस कथन में कोई सत्यता नहीं पाई पड़ती कि हेमू ने अदली के आदेश के विरुद्ध शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिए। अदली की बार की चिन्ता बनाकर हामत का व पानीपत में हेमू की मृत्यु पर उसके खेद प्रकट करने से स्पष्ट है कि अदली पूर्वी प्रान्तों ही से सन्तुष्ट था और यदि हेमू दिल्ली के सम्राट पद का भोग करने के लिए जीवित भी रहता तो अदली उसका पूर्ण सहयोग देता। अन्य अफगानों की स्वामी भक्ति का पता भी उनके पानीपत के मैदान में प्रदर्शित विकट विरोधपत्र युद्ध तथा अकबर के शासन के ६ आरम्भिक वर्षों में हुए युद्धों से पता चलता है जो कि हेमू की मृत्यु के उपरान्त भी चलते रहे।

जहाँ तक कि बदाऊनी द्वारा लिखित विक्रमाजीत की उपाधि ग्रहण करने का सम्बन्ध है उसके विषय में पहले ही सन्देह व्यक्त कर दिया गया है। उसका भुगार की विजय के पश्चात् ही अदली द्वारा यह सम्मान सूचक पद प्राप्त हुआ था और अबुल फजल ने यह सत्य ही लिखा है कि उसको कुछ समय पहले से यह उपाधि प्राप्त रही। दिल्ली विजय ने उसे अपने को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया।

बदाऊनी के इस कथन में कोई सत्यता नहीं जान पड़ती कि 'जब उसने इस्लाम धर्म के कानूनों को उलटने में अपने पूरे प्रयास कर लिए तो वह १४ • युद्ध के हाथियों तथा असंख्य एवं असीमित अफगानि के बहुत बड़ा सेना के साथ पानीपत के मैदान में युद्ध करने के लिए आया।[1] हेमू सिंहासन पर ७ अक्तूबर १५५६ को बैठा और यदि यह तिथि सत्य है तो उसने केवल २९ दिन शासन किया जब कि ५ नवम्बर १५५६ ई० को उसका भाग्य सदैव के लिए पानीपत के द्वितीय युद्ध के फलस्वरूप मृत्यु द्वारा सहसा अस्त हो गया। इतने थोड़े समय में जब कि उसे मुसलमों द्वारा पूरे युद्ध की भावना बनी हुई थी हेमू सिवाय असम्भव उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना द्वारा राज्य करने के अतिरिक्त कुछ साथ ही नहीं सकता था। यद्यपि हेमू की सेना में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही थे परन्तु अपनी जाति भाइयों तथा राजपूत के अलावा अफगान सबसे अधिक प्रमुख थे। ऐसी दशा में यह उसकी समझ के बाहर था कि वह इस्लाम के नियमों को उलटने की घोषणा। इसके विपरीत यह स्पष्ट है कि अफगानों को उस पर पूरा भरोसा था तथा उन्होंने पानीपत के मैदान में वीरतापूर्वक उसके लिए लड़कर प्राण दिए। इस युद्ध में हेमू की आकस्मिक मृत्यु ही थी जिसने युद्ध का पांसा पलट दिया न कि अफगानों का विश्वासघात।

१—बदायूनी मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ ६-७।

अध्याय—७

पानीपत की दूसरी लड़ाई

सन् १५५६ ई० भारत भीषण आर्थिक और राजनैतिक समस्या की लपेट में था। दिल्ली में जुलाई सन १५५५ ई० में शीघ्रता में पुनः स्थापित मुगल आधिपत्य बहुत भ्रमात्मक सिद्ध हुआ और हुमायूँ की मृत्यु के साथ-साथ अचानक उसका अन्त हो गया। दिल्ली का सिंहासन एक बार पुनः कई प्रतिद्वंदियों के मध्य संघर्ष का कारण बना जिनमें से प्रमुख थे—हेमू सिकन्दर और अकबर। शिवालिक की उत्तरी पहाड़ियों में सिकन्दर के उभरते रहने और अवध के पूर्व में तथा चुनार के चारों ओर के प्रदेशों से सम्पुष्ट रहने के कारण दिल्ली के सिंहासन के लिए हेमू सबसे प्रभावशाली दावेदार बन गया। साम्राज्य की राजधानी पर जो तत्कालीन भारत की भी राजधानी थी अधिकार हो जाने से हेमू को मनोवांछित अवसर मिल गया और उसने सफलतापूर्वक उससे लाभ उठाया। ग्वालियर और चुनार में सूर सम्राटों के विशाल कोष को पाकर प्रथम श्रेणी के अफगान और राजपूत सैनिकों सहित और पूर्व में पर्वत सदृश युद्ध के हाथियों के अनुपम दल से सम्पन्न हेमू १५५६ ई० में दिल्ली का सम्राट हो गया।

मुगल बड़ी कठिन परिस्थितियों में थे। उन्हें सिकन्दर के सम्मुख टिकना तक कठिन प्रतीत हो रहा था। काबुल में भी उनकी दशा शोचनीय होती जा रही थी। यहाँ तक कि मुगल स्त्रियाँ जो वहाँ रह गई थीं अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं कर रही थीं और उन्हें बाहर लाया जा रहा था। मुगल सम्राट के साथ साथ जिसको एक स्थान से दूसरे स्थान को भागना पड़ा इन मुगल स्त्रियों को भी भाग्य के तीव्र परिवर्तनों को भोगना पड़ा। हुमायूँ ने यह प्रबन्ध किया था कि जैसे ही वह दिल्ली में अपने पैर जमा लेगा वे भारत आ जाएंगी। लेकिन उसकी मृत्यु और तदुपरान्त के फौजी झगड़ों ने जिनमें निम्नांकित मुख्य थे यह योजना भंग कर दी —

इनमें से प्रमुखतम ये थे।

(क) अधम—मा—अली के विद्रोह का दमन।

(ख) सिकन्दर अफगान के विरुद्ध कार्यवाही और।

(ग) पानीपत में हेमू के साथ संघर्ष।

जब हुमायूं अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा था तो उसने कामरान मिर्जा के पुत्र मिर्जा अबुल कासिम को बहुत से हाथी, ऊंट और कुछ चुने हुए हाथियों को लेकर स्वयं सुल्तान अली बदख्शी खां और मीर मुल्ला अशरफ खां के साथ सम्राट का अपनी अन्त्येष्टि अर्पण करने भेजा। "उसी वर्ष मिर्जा सुलेमान काबुल को जीतने के विचार से इब्राहीम मिर्जा के साथ आया और मुनाम खां के हिर जाने पर दरबार का त्याग भेजा। तब सम्राट ने मुहम्मद कुली खां बरलास और मक्का खां तथा पिरू खां हुमायूं का कुछ व्यक्तियों के साथ (हुमायूं की) विधवा रानी और अन्य पत्नियों को जो काबुल में थी लाने के लिए नियुक्त किया।[1]

इसीलिए जब तक काबुल का भय नहीं हुआ मुगल स्त्रियां आगरा के लिए रवाना न हो सकीं। स्त्रियां शिविर में उसके भग्न होने तक रहीं और तब रवाना के बाहिर गईं और वहां से ७ दिसम्बर १५५३ ई० को उन्होंने दिल्ली की ओर यात्रा की।[2]

१५५६ ई० में आरम्भ में मुगल अपने परिवार की स्त्रियों से दूर थे और चारों ओर कठिनाइयों से घिरे थे। भारत के विभिन्न भागों में राजनैतिक स्थिति उथल-पुथल की और उनके बिल्कुल विरुद्ध थी। बंगाल बिहार और उड़ीसा बिल्कुल स्वतन्त्र राज्य थे। करानी वहां शासन करते थे। हेमू की विजयों के कारण वे अपनी के नाम मात्र को राज्य नहीं थे। सन् १५५७ ई० में पराजित हो जाने के पश्चात राजपूत युद्धभूमि में थे। उनकी राजनैतिक क्रियाएं बीकानेर, जोधपुर और अमरकोट में केन्द्रित हो गई थीं। मालवा और गुजरात ने अपनी स्वतन्त्रता पहले ही से स्थापित कर ली थी। सुविख्यात रानी दुर्गावती के आधीन गोंडवाना हिन्दू सामन्त राज्य के रूप में पुनर्जीवित हो रहा था। दक्षिण में विजय नगर साम्राज्य अपनी कीर्ति के शिखर पर था। सुदूर उत्तर और पश्चिम काश्मीर, सिन्ध और बलूचिस्तान में स्वाधीन और स्वतन्त्र राज्य थे।

ऐसी परिस्थिति में आपके बादशाह (अकबर) के राज्याभिषेक ने केवल प्रभुता के लिए अधिकार स्थापित कर दिया। जब काबुलीर में उसका यह संस्कार सम्पन्न हुआ तो उसके अधिकार में कोई निश्चित साम्राज्य नहीं कहा जा सकता था।[3]

१—अकबरनामा मुन्तखाब उत-तवारीख पृ ५।

२—गुलबदन का हुमायूं नामा-अप्रकाशित-नोट ३—२६—५८। अर्सकिन को भी देखिए। पृ० ५ ।

३—विन्सेंट स्मिथ अकबर—पृ० ११—१२।

अकबर और उसके शिक्षक-अभिभावक बैरम खाँ के सामने सर्वप्रथम और सबसे प्रमुख कार्य दिल्ली में पुनः अधिकार स्थापित करना और तत्पश्चात हारे हुए प्रदेशों को जीतना था। तारदी बेग खाँ की हत्या के पश्चात और बालक सम्राट के भारत में ठहरने का निश्चय करने पर मुगलों ने हेमू से मोरचा लेने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

आर्थिक स्थिति—

आगरा और दिल्ली क्षेत्रों में विराणी सूर दावेदारों में लगातार होने वाले युद्धों ने प्रदेश को उपज विहीन और अव्यवस्थापूर्ण कर दिया था। बदाऊनी के प्रमाण के अनुसार जो १५५५-५६ ई० के अकाल का साक्षी था खाद्य सामग्री का अभाव २ वर्ष तक रहा और राक्षसी दृश्य देखने में आते थे। अकाल वर्षों न होने के कारण पड़े जब कि सेनाओं के एकत्र होने से विनाश और कष्ट बढ़ गए। बदाऊनी ने लिखा है कि जब आगरा के दक्षिण-पश्चिम से ५६ मील दूर बयाना के निकट हेमू ने डेरा डाला था—

'लाख' छोटी 'लाख' कहते-कहते मर गए जब कि वह एक लाख व्यक्तियों के जीवन का मूल्य जौ के एक दाने से अधिक नहीं आँकता था वह अपने १०० हाथियों का चारा चीनी और मक्खन खिलाता था। सारा संसार आश्चर्यचकित और रुष्ट था।

आर्थिक स्थिति और भारी विपत्तियों के होते हुए भी हेमू ने अपने रसद के मामले को ठीक कर लिया और जब वह दिल्ली में था तो उसने अपनी

१—मुन्तखाब-उत-तवारीख इलियट तथा डासन ५ ४९०-४९१ और अनुवाद में किया सम्बन्धी परिवर्तनों के साथ रैंकिंग जिल्द १ पृष्ठ २८९ २१ हेमू की बर्बरता केवल बदाऊनी द्वारा ही उल्लिखित है। अन्य इतिहासकार इस विषय पर मौन है। अबुल फजल जो स्वयं बर्बर हो सकता था अपने तथ्य ज्ञान के होते हुए भी हेमू के पौरुष के गुणों पर विश्वास करता है। (अकबरनामा—२ ६)। मनुष्य भक्षण की बर्बरता के प्रमाण के लिए हुमायूँ के प्रति कुछ विद्रोहियों के दण्ड का घृणास्पद वर्णन देखिए (अकबरनामा १ ११८-अध्याय १)। वह बाबर की आत्मकथा में अकाल और सम्बन्धित महामारियों का उल्लेख करता है। वह कहता है कि घोर अकाल महामान्य के राज्याभिषेक के वर्ष (अकबरनामा ९६३ १६ नवम्बर १५५६ ई० के आरम्भ में हुआ। राजधानी विनिष्ट हो गई और कुछ मकानों के अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहा (निर्देश दिल्ली की ओर ही होगा) एक संक्रामक प्लेग फैली और हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों में फैल गई। असंख्य व्यक्ति मर गए। (आईन-ए अकबरी जिल्द १ पृ ८८९)। वही लेखक इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि बहुत से व्यक्ति मनुष्य का मांस तक खाने लगे थे। और अकेले बैरा खाने का और खाने का दाम बढ़ गए थे। (अकबरनामा—२-५७)।

फौज की शक्ति चौगुनी बढ़ा ली। कुछ ही दिनों के अन्दर वह युद्ध के १५०० हाथियों अथाह और असंख्य सजावटों और युद्धास्त्रों के विरुद्ध कूच करने वाली एक विशाल सेना के साथ तैयार था।[1]

मुगल सेना में किसी भी समय १४०० हाथियों से अधिक सक्रिय न रहे। अकबर के हाथी खाने में कुल १७२१ हाथी थे। सेना में हाथी भारी तोपें खींचने के काम आते थे। हाथियों का कवच पहनाने तथा हाथियों को हथियारों से लैस करने की प्रथा में मुगलों ने हेमू का अनुकरण किया।

पानीपत के युद्ध का वर्णन करते हुए अबुल-फजल कहता है—

"दुर्भाग्य का मारा हेमू मूर्खतापूर्ण प्रेरणाओं के एकत्रित होने के कारण जैसा कि संकेत में पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है अत्यधिक दम्भ और उद्दंडता को और झुकता जा रहा था। सर्दी की ऋतु तथा आखेटियों से मानसिक सेना विशेष उत्साहित थी और उसमें भाग्य के आतिथ्यकारों से टक्कर लेने के लिए साहस भरा था। बड़े और छोटे समस्त में भरे थे और विध्वंसकारी कल्पनाओं में निमग्न थे।[2]

फिरिश्ता के कथनानुसार भी हेमू की सेना इतनी विशाल थी कि उसने "बादशाह से मिलने के लिए, सिंधु के दल व रेगिस्तान की चीटियों के समान असंख्य सेना के साथ राजधानी से बाहर की ओर कूच किया।[3]

हेमू की सेना का अग्रदल—

दिल्ली के राजसिंहासन के लिए युद्ध करने का निश्चय करके बैरम खाँ ने मुगल दुर्जनों व सामन्तों की एक आवश्यक मंत्रणा की जिनमें से अधिकतर अकबर के हितों की रक्षा करने के लिए और साधारण विपत्ति के समय साथ रहने के लिए एक थे। मुगल सेना ऐतिहासिक रण-क्षेत्र पानीपत की ओर बढ़ी। दूसरी ओर 'हेमू ने गुप्त और संख्या में महान अपनी सशस्त्र सेना के अग्रदल को मुबारक खाँ और बहादुर खाँ जो उसके प्रमुख अधिकारी थे के संरक्षण में दिल्ली से लगभग ३० कोस की दूरी पर स्थित पानीपत की ओर भेज दिया और युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।[4] यह सेना का अग्रदल बहुत अच्छी प्रकार सज्जित नहीं था और संख्या में भी न्यून था। मुख्य सेना से पहले पूर्व ऐसे अग्रदल को भेजकर हेमू ने भूल की। मुगलों की ओर से लगभग १० हजार

१—वही पृ० ७ बखिए का गर्मा मुगल राज्य तथा शासन रूपरेखा—१९११—पृ० १४७-१८।

२—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २—पृ० २८-२९।

३—फिरिश्ता जिल्द २ हिस्सा पृ १८४ से १९०।

४—अबुल फजल अकबरनामा पृ १८

अफगान सेना के अग्रदल ने अली कुली खां उजबक के नेतृत्व में कूच किया। उसके साथ लाल खां बदाख्शी मा० कुली अजबग और सामन्ती खां जैसे सक्रिय और युद्ध-प्रेमी सैनिक थे। अबुल फजल के अनुसार 'हेमू की सशस्त्र सेना पर अधिकार कर लिया गया और शत्रु का अग्रदल बिना लड़े ही भाग पड़ा हुआ।[1] बदाऊनी थोड़ा भिन्न वर्णन करता है जब वह कहता है —

'उसने अपनी सशस्त्र सेना अपने सामने भेज दी और खान जमन, इस्कन्दर खां जैसे तथा अन्य बड़े अमीरों के दल को जो अग्रदल के रूप में बढ़ रहे थे उस भेंट करने का अवसर उन्हें पानीपत के युद्ध लड़ाई करने के बाद मिला।[2] बाद का वर्णन वास्तविकता के अधिक निकट प्रतीत होता है लेकिन यह भी सच है कि हेमू का सशस्त्र तोपची सैन्यदल संख्या में न्यून होने के कारण और घोड़ा अधिक आगे बढ़ जाने के कारण मुगल अग्रदल का सहज शिकार हो गया। यह कहा गया है कि हेमू की सशस्त्र तोपची सेना के कार्य वाहक अधिकारियों ने उसको धोखा दिया या जान बूझकर आगे बढ़ गए। लेकिन बदाऊनी का उपर्युक्त वर्णन पूर्णतः प्रमाणित नहीं होता है। अल-बदाऊनी अगली कुछ पंक्तियों में केवल मात्र संकेत है कि अफगान हेमू की सुरक्षा आदि के वितरण से संतुष्ट नहीं थे लेकिन पानीपत के युद्ध के सम्पूर्ण व्यौरेवार कार्य वाहियों के बीच कोई न्यूनता दृष्टिगत नहीं होती। उसकी पराजय उसकी संख्या में शक्ति कम होने के कारण हुई। जैसा कि डा त्रिपाठी इसके बारे में कहते हैं— 'अपने सशस्त्र सैन्यदल का निर्बल रक्षक के आधीन पहले ही भेज देना हेमू के लिए एक घातक भूल सिद्ध हुई।[3]

हेमू का आगे बढ़ना—

लेकिन हेमू सशस्त्र सेना के चली ही जाने पर विचलित नहीं हुआ क्योंकि वह महत्वपूर्ण नहीं थी। वह अपना रक्षा और पानीपत रण क्षेत्र की ओर पूर्ण युद्ध-व्यवस्था के साथ तेजी से बढ़ा। उसने अपनी सेना को निम्न विभिन्न नायकों के अधीन तीन विभागों में प्रबन्ध किया।[4]

(१) दक्षिण पक्ष शादी खां कक्कर[5] के अधीन।

(२) वाम पक्ष हेमू के भानजे रमैया व अयोध्या जो घोड़ों के लिए मान्य था

(३) मध्य भाग स्वयं हेमू के अधीन

१—अबुल फजल अकबरनामा पृ २९।
२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाबात उत-तवारीख। पृ० ७ व ८।
३—डा आर०पी त्रिपाठी—मुगल साम्राज्य का उत्थान तथा पतन-पृ १०२।
४—अबुल फजल अकबरनामा पृ २९।
५—अफगान जाति।

हेमू के रण-मत्त हाथी—

हेमू अधिकतर अपने युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता था जिसका विशद वर्णन अकबरनामा में इस शब्दों में उपलब्ध है[1]—

'वह अपने साथ पहाड़ सदृश और अजगर के से मुँह वाले हाथियों को ले आता था जो अनेक भारतीय शासकों द्वारा एकत्रित किए गए थे और जो वैभवी ढंग के कारण तथा आडम्बर पूर्ण और अस्त्र दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों के लिए एक सजावटी के रूप में यथार्थ रूप एवं तत्व में इस परदेशी के लिए एक साथ जुटा दिए गए थे। उनमें ५०० ताड़ समान (सीधे) हाथी थे जिनमें से प्रत्येक तेजी और चतुरता में अनुपम था। शक्ति और साहस में[2] वे आदर्श थे और इन शक्तिमय पहलवानों का दौड़ना 'घोड़े' नहीं कही जा सकती थी क्योंकि यद्यपि 'ईराक (अरब) की घुड़दौड़ तेज कही जा सकती थी परन्तु वह इन हाथियों की चाल से तेज नहीं हो सकती थी। वास्तव में इन सुप्रसिद्ध हाथियों में से प्रत्येक एक बड़ी सेना को तितर-बितर कर सकता था। मुख्यतः उनका काम सशस्त्र सेना की व्यवस्था को अव्यवस्थित कर देना था क्योंकि घोड़ों ने ऐसे भीषण स्वरूपों का सामना कभी नहीं किया था। लेखक हाथियों के पराक्रम का भाग भी उसी अलंकारमय भाषा में वर्णन करता है —

'शत्रुओं की पतली ओर में उन दौड़ते हुए पहाड़ों के मुखों को कैसे पिरोया जा सकता है। उन्होंने विशाल इमारतों को हिला-हिलाकर नष्ट कर दिया और खेल ही खेल में मजबूत पेड़ों को जड़ से उखाड़ दिया। युद्ध और संघर्ष की सेना में वे आदमी और घोड़े को ऊँचा उठा लेते थे और उनको हवा में फेंक देते थे"।[3]

पद्य

"वे आगे मंथर गति से बढ़ते हैं परन्तु जब युद्ध करते हैं, तो शक्तिशाली भी उनके पैरों के नीचे 'पिसे हुए सुरमे' की भाँति हो जाते हैं।

हेमू की सुदृढ़ सेना —

१५ युद्ध के हाथियों और सशस्त्र सेना के अतिरिक्त "१० हजार अभ्यासी घुड़सवारों के साथ जिसमें से राजपूत और अफगान थे जिन्होंने अनेक अवसरों पर अपने आक्रमणों द्वारा उनके दंभ और उद्दण्डता को बढ़ा दिया था हेमू ने उत्तम व्यवस्था के साथ कूच किया। [4] सैनिकों और

१—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द २० पृ० ५९।
२—अनुवादक की टिप्पणी—"मैं समझता हूं कि 'कारनामा' के बाद 'इत्यादि' गलत है। एक हस्तलेख में इस शब्द के बाद एक संयोजक है।'
३—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ९०।
४—अबुल फजल—अकबरनामा—पृ० ९०।

अफ़ग़ान अमीरों का उत्साहवर्धन करने के लिए हेमू उन्हें जागीरों का उपहार दिया करता था और पराक्रमी योद्धाओं के लिए अपने खजानों का द्वार खोल दिया करता था।[1] उसकी अन्तिम चढ़ाई की तैयारियों, सुप्रशिक्षित हाथियों के वितरण का अबुल फ़ज़ल द्वारा भी इन शब्दों में सुन्दर वर्णन किया गया है।[2]

" ....उन विशाल मर्दों की पहाड़ सी पीठों पर जो कवच (काबिम)[3] और सुरक्षा करने वाली वेशभूषा से सज्जित रहते थे बन्दूक धारी सिपाही और धनुषधारियों को बैठाया जाता था और युद्ध के लिए तैयार किया जाता था। सब हाथियों पर ये युद्ध के सर्वांगीण-कवच थे उनकी सूंड़ भालों और बाहुओं से युक्त थी और वे रणधीर और साहसी महावतों के सुपुर्द थे। प्रत्येक के लिए उसका स्थान निश्चित था।

निम्नलिखित हाथियों के नामों का उल्लेख किया गया है, जो कि प्रमुख सेना नायकों के सुपुर्द निम्न प्रकार से किए गए थे—

(१)	मालिब अंबर	हुसैन खां फौजदार	के सुपुर्द
(२)	गज भंवर[4]	मैकस खां	
(३)	चोर बनिया	इख्तियार खां	"
(४)	फौज मदार	संग्राम खां	के सुपुर्द

(५) काली देव जिस पर कई युद्धों में हेमू स्वयं आरूढ़ हुआ था उस दिन कापस नामक महावत के सुपुर्द किया गया था। अबुल फ़ज़ल के कथनानुसार हेमू ने अफ़ग़ान सेनाओं को प्रसन्न किया जो युद्ध रूपी जंगल के शेर थे और शेर खां और सलीम खां और अन्य सभी व्यक्तियों के अन्तरंग मित्र थे और उनको युद्ध के लिए उत्साहित किया।

हेमू स्वयं 'हवाई'[5] नामक हाथी पर सवार हुआ और सारासम्ब जिले की ओर आया।

हेमू का सक्रिय होना—

हेमू के आगमन उसकी शक्ति और साज-सामान का समाचार सुनते

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाबात-उत-तवारीख—पृ० ७-८ बदाऊनी के अनुसार हेमू ने सेना को तोपची सेना की हानि के लिए सान्त्वना देने के लिए रुपया और उपहार बांटा। लेकिन उसकी आशा से जिसे धन को हजम न कर सकने के कारण अफ़ग़ानों ने उसके पतन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी आरंभ कर दी।"

२—अबुल फजल-अकबरनामा ६०। देखिए डा० शर्मा। मुगल शासन तथा उत्तर मुगल सेना में हाथियों का प्रयोग—पृ० १४३ १४८।

३—ब्लोच मैन प्लेट १४ बी।

४—पाठ्य में मर्दन जिसका अर्थ 'मतवाले' का होता है।

५—अल बदाऊनी-मुन्तखाबात उत-तवारीख—पृष्ठ ७-८।

शिविर में ईबादीन २३ वीं आबान खुताई महीना अनुसार, बृहस्पतिवार २ मुहर्रम ९६४ अर्थात ५ नवम्बर १५५६ ई०, को पहुँचा। मुगलों ने इसकी पुष्टि कर ली कि वह साहस से निकट आ रहा था।[1] उसने सबसे पूर्व एक बड़ी फौज एक कतार में कूच करती हुई शादी खाँ काकड़ के नेतृत्व में जिसने पहले ही दिल्ली का अधिकार करके अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और जो सम्भल का निवासी था आगे आगे भेज दी।

मुगल शिविर में घबड़ाहट—

जैसे ही मुगलों को हेमू की तैयारियों की विशालता का विश्वास हो गया शाही सेवकों के हृदयों में मूर्छामि गच्छ होकने लगा की क्रियाओं के कारण (जिनमें कोई सेना कभी मुक्त नहीं रहती बल्कि एक प्रकार से ऐसी भी भी सेनाएँ रहती हैं) व्यवस्था ने स्थान बना लिया।[2] मुगल अवश्य में १ हजार सशस्त्र सेना थी जिसमें ५ हजार अनुभवी सैनिक थे और वे हेमू के आगे बढ़े हुए सैन्य दल से टक्कर लेने के लिए तैयार हो गए। मुगलों की ओर सिकन्दर खाँ और अनेक प्रौढ़ सैनिक साहिबे आम में थे जब कि बांया भाग अबदुल्ला खाँ के नेतृत्व में था मध्य में अली कुली खाँ जमानी हुसेन कुली खाँ शाह कुली बैहराम और कुछ अन्य युवा सेना नायक थे।

बैरम खाँ और अकबर, जो पानीपत से दस कोस दूर कलानि में थे शत्रु की निकटता का समाचार पाकर शेष मुगल सेना के साथ आगे बढ़े।[3] वे पानीपत से ५ कास दूर एक स्थान पर रुके और वहाँ उन्होंने विचलित कर देने वाला यह समाचार सुना कि बहुत से मुगल पराजित हो चुके थे परन्तु लड़ाई तब भी तेजी से चालू थी। अकबर और बैरम ने रणक्षेत्र की ओर बढ़ने के आदेश दे दिए। बैरम खाँ खान खानन पंक्तियों के समस्त और विभागों के चारों ओर गया और उसने युद्ध के नियमों के अनुसार रखने और विशुद्धों की सुरक्षा के लिए उपाय किये।[4] उसने मुगलों को घेर कर एकत्रित किया और उपहार देकर और भावी परोन्नति के आश्वासन (वायदे) देकर सभाओं को अग्रसर किया और उन्हें युद्ध करने को उत्तेजित किया। लेकिन अब तक कि अकबर और बैरम पानीपत से ५ कोस की दूरी पर स्थित अपने शिविर से बाहर निकल सके उसी समय हेमू के प्राण घातक दुर्घटना में ग्रस्त होने का समाचार मिला और युद्ध मुगलों के पक्ष में समाप्त हुआ।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ९०।
२—अबुल फजल अकबरनामा—पृ ९२।
३—डा० आर्शीवादि लाल मुगल साम्राज्य।
४—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २-पृ०—९२।

अल बदाऊनी भी उक्त वर्णन की पुष्टि करता है कि 'मुहर्रम ९६४ के पवित्र मास के १० वें दिन (जो रबी-अशुरा भी कहलाता है) शुक्रवार की सुबह—

"मित्रों के लिए यह शोक का दिन नहीं है
पर साथ ही शत्रु के लिए प्रसन्नता का दिन भी उतना ही कम है।[1]

अबुल फजल के मुगल अमीरों और हेमू के बीच युद्ध और हत्याकाण्ड आरम्भ हुआ। सम्राट और खान खानान उस दिन तीन विभागों में विभक्त थे और एक दूसरे को सहायता भेजते रहे जब तक कि विजय की सूचना न मिल गई। अबुल फजल द्वारा आईन-ए अकबरी में आये यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'यद्यपि अकबर और बैरम खां निकट ही थे उन्होंने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया। मुगलों का अग्रदल अलीकुली खां के अधीन था जिसकी पानीपत के पास हेमू से टक्कर हुई।[2]

दूसरे सेनानायकों में से जिन्होंने मुगलों की ओर से भाग लिया सिंगापुर का मुहम्मद शाहिम खां एक था जिसने हेमू के साथ युद्ध होने पर खान जमान के अधीन हरावल या सेना के अग्रदल के नेता के रूप में कार्य किया था।[3] दूसरे नायक शाहकुली महराम-ए-बहरही थे जो बैरम की सेवा में था हेमू के विरुद्ध युद्ध में ख्याति प्राप्त की थी। यह शाह कुली ही था जिसने हेमू के हाथी पर आक्रमण किया यद्यपि वह यह नहीं जानता था कि उसका विपक्षी कौन था।[4]

घातक दुर्घटना—

उस दुर्घटना का संक्षिप्त वर्णन जो घातक और निर्णायक सिद्ध हुई, अबुल फजल द्वारा उग्रवाद और स्पष्ट ढंग से इन शब्दों में किया गया है —

'जब हेमू को पता चला कि कीर्ति के स्तम्भ अभी दूर हैं और कुछ अधिकारी आगे बढ़ आए हैं तो वह तेजी से उनकी ओर यह सोच कर बढ़ा कि यदि उसने उन व्यक्तियों को जो थुनी हुई सेना थी छिन्न-भिन्न कर दिया तो शेष कार्य सुगम हो जाएगा। *हेमू की यह आशा बिल्कुल सही थी। यदि वह* घातक दुर्घटना से ग्रस्त न होता तो मध्य में उसका भीषण आक्रमण सफल होता और मुगल सेना जो पहले ही एक दूसरे से पांच कोस की दूरी पर दो शिविरों में विभक्त थी उसका सामना कर सकने योग्य न होती। यदि पानीपत में वह विजयी हो जाता तो अकबर और बैरम खां केवल भागने की ही करते।

१—अल-बदाऊनी पृ० ७-८।
२—अबुल फजल-आईन-ए-अकबरी-जिल्द १ (ब्लाचमैन) पृ० ३१८।
३—अबुल फजल-आ मैन) पृ० ३१३।
४—वही ३१९।

हेमू की विशाल सेना की प्रगति के प्रवाह को रोकना उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। वास्तविक युद्ध में हेमू 'प्रमुखतः अपने बहुत से बलशाली हाथियों पर भरोसा रखता था।" प्रत्येक पक्ष के वीर पुरुष उत्तम प्रयास करते थे और चिल्लाकर एक दूसरे पर झपटते थे। उन्होंने साहस और भक्ति के साथ सेवा की और यश कमाया।[1]

पद्य

'दोनों सेनाओं की ऐसी टक्कर हुई
कि उन्होंने पानी से आग उत्पन्न कर दी।
आप कहेंगे कि हवा में केवल रक्त वर्णा तलवारें ही थीं
उनका इस्पात पूरा ठोस मणिका जैसा हो गया था।[2]

यद्यपि अफ़ग़ान सेना के सेनानी स्थिरता और निष्ठा में असफल नहीं रहे, तब भी हाथियों के आक्रमण ने बाएँ और बाएं विभागों को हिला दिया। और यदि हेमू का अकस्मात पतन न हुआ होता तो मध्य में किया गया धावा मुगल सेना के अग्रभाग को तुरन्त विच्छिन्न व पराजयी कर देता।

जब मुगल सेना-नायकों को विश्वास हो गया कि उनके घोड़े मदमाते हाथियों की बराबरी बिल्कुल नहीं कर सकते तो उन्होंने पकड़ कर काटना आरंभ कर दिया अर्थात् बाहर निकलने के लिए चेष्टा की। अकबरनामा के अनुवादक ब्याकमैन के अनुसार इसमें शायद पठानी युद्ध' का अर्थ था अर्थात् मुगल घोड़ों की पीठों पर से उतर पड़े और हाथियों को घेर लेने की नीति अपना ली। युद्ध तलवारों को पहुंचे ही घोड़ों की काठियां पर से नीचे फेंक दिया गया था तथा फ़ौलाद तेज व उग्र घोड़ों की छुरी जैसे खुरों द्वारा उनको मरवा दिया गया था। ऐसे संकटमय समय में मुगलों में धनुर्धारियों के एक स्वामिभक्त दल को चारों विभागों में भेज दिया जिन्होंने महत्वपूर्ण सेवा की। उसी कुशलता से हाथियों के आक्रमण से एक खाई द्वारा सुरक्षित रहा सका जिसे वे पार न कर सके। 'युद्ध के बीच इच्छक और केन्द्र के सिंह-सदृश्य व्यक्ति एक छोटे से स्थान में संकुचित थे और आक्रमण करने के अवसर की खोज में स्थिर थे। उन्होंने ऐसी सहन शक्ति प्रदर्शित की कि केन्द्र की ओर से हाथी वापस खदेड़ दिए गए। तत्पश्चात वे लोग शत्रु के पीछे निकल पड़े और अपने तीर चलाये और तलवारें घुमाईं।" इसी समय जब कि युद्ध अपनी चरम सीमा पर था और मुगल टूटने टेकने ही वाले थे और एक निराश प्रतिरोध कर रहे थे दुर्भाग्य का भाग हेमू हवाई नाम के हाथी पर, जो उसके सबसे अच्छे हाथियों में से एक था बड़े गर्व से

१—लुब्ब तवारीख-अकबरनामा—जिल्द २-पृ ६१।
२—बीजाद्रा माणिक से मिलता-जुलता एक पत्थर और कच्चर के आकर्षक गुण रखनेवाला।

सवार हुआ और उसने एक ओर वीर तलवार चलाने वालों को तथा दूसरी ओर पंक्ति को भेदने वाले गजियों के आक्रमण की ओर देखा।[1] हेमू ने अपने भीषण हाथियों को एकत्रित करके हर प्रकार का रण-कौशल जो उसकी शक्तिशाली सामर्थ्य में था, और हर प्रकार का साहसिक कार्य जो उसकी विध्वंसकारी आत्मा में छिपा था दिखाया। अबुल फजल इस वीर की प्रशंसा में आगे कहता है—"उसने शक्तिशाली आक्रमण किए और बहुत से पराक्रमशील कार्य किए, तथा प्रभाव शाली सेना के कई साहसी सैनिकों को हटा दिया। लेकिन दुर्भाग्य ने समय का पलड़ा पलट दिया।[2]

दुर्घटना—

'अचानक संघर्ष के बीच में दैवी कोप रूपी धनुष द्वारा छोड़ा गया तीर हेमू की आँख में लगा और पुतली को छेदता हुआ उसके सिर के पीछे निकला।[3] अलबदाऊनी के शब्दों में भी अचानक मृत्यु का तीर, जिसे कोई ढाल रोक नहीं सकती उसकी कटाक्ष पूर्ण आँख में लगा जिससे खोपड़ी में से उसका दिमाग' बिल्कुल स्पष्टतः बाहर निकल आया और वह मूर्छित हो गया।[4] हेमू इस समय अपने पर्वत-सदृश हाथियों के साथ उस स्थल पर, जहाँ खान जमान टिका था मध्य भाग का मार संभालने में रत था। इस समय जब विजय उसको प्राप्त हो सकती थी वह अपनी घातक दुर्घटना में ग्रस्त हो गया 'तीर के आँख में घुस जाने पर, वह असहनीय पीड़ा के कारण अपने हौदे में गिर गया।[5] अपने को पुनः उठाते हुए हेमू ने तीर को खींचा और नेत्र के छिद्र से बाहर निकल आने पर जिसे उसने रूमाल में लपेट लिया और अपनी कष्टमय दशा के होते हुए भी उसने अदम्य साहस के साथ उन घोड़े से व्यक्तियों को लेकर प्रयास करते हुए जो उसके निकट रह गए थे शत्रु पंक्ति के बीच से वापसी मार्ग प्रशस्त करने के लिए मुड़ करता रहा।[6]

शादी खाँ और भगवान दास की मृत्यु –

शादी खाँ जो हेमू के पक्ष का प्रमुख मुकद्दम सेना-नायक था लड़ता हुआ मारा गया और अबुलफजल के कथनानुसार भाग्यशाली मुगल सेना के इस तेज घोड़ा के पैरों के नीचे कुचला गया। भगवान दास को भी उसके अग्रगण्य आदमियों में से एक था और जो रण क्षेत्र में अपनी वीरता के लिए

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २ पृ ९४।
२—अबुल फजल अकबरनामा-जिल्द २ पृ ९४।
३—वही—पृ० ९४।
४—अलबदाऊनी मुन्तखाब उत तवारीख—पृ ४०—८९।
५—अबुलफजल अकबरनामा जिल्द २ पृ० ९४।

विश्वास था उसके (हेमू के) सामने ही टुकड़े-टुकड़े कर दिये गए।[1] यह स्पष्ट नहीं है कि इन पराक्रमी योद्धाओं का अन्त उस अराजकता और भगदड़ के पश्चात हुआ जो हेमू के घातक पतन के पश्चात हुआ था। सेना में भगदड़ मच गई, और संहार और हत्याकाण्ड आरम्भ हो गया। इस दौर में ऐसी मृत्युओं की सम्भावना कहीं अधिक है। किसी भी दशा में प्रमुख अफगान योद्धा हेमू की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। साधारण व्यक्तियों के हृदय बैठ गए और वे भाग खड़े हुए।

हेमू का बन्दी होना—

स्वामी को हौदे में आयत पड़ा देखकर हेमू के हाथी हवाई के महावत ने अपने का किंकर्तव्य-विमूढ़ पाया। हेमू के बन्दी बनाए जाने के विभिन्न वर्णन किए गए हैं—

अस-बदायूनी के अनुसार— 'शाह कुली खाँ महरम हेमू के हाथी से मिला था और उस हाथी के महावत ने उससे कहा 'मुझे मत मारो। मेरे हाथी पर हेमू सवार है। इसलिए वे उस उसी अवस्था में शिविर में ले आए।[2]

अबुल फजल के शब्दों में "उसी समय शाह कुली खाँ और कुछ और व्यक्ति उस हाथी के पास आए जिस पर हेमू सवार था। वह नहीं जानता था कि हेमू हाथी पर था और उसने महावत को इसलिए मार डालना चाहा ताकि वह हाथी को अपनी लूट का भाग बना ले। बेचारे महावत ने जिसके पास न तो रणशक्ति का कवच था और न साहस का शिरस्त्राण, अपनी जान जाने के भय से अपने स्वामी की ओर संकेत कर दिया। जब शाह कुली खाँ ने अपने महान सौभाग्य के बारे में सुना तो उसने अपने नक्षत्रों का आभीर्वाद लिया और प्रसन्नता से टोली को आक्रमण की ओर उत्प्रेरित किया। उसने महावत को आश्रय का आश्वासन दिया और उसे राज पुरस्कार दिलाने की आशा दिलाई तब उसने उसको तथा कुछ अन्य हाथियों का अलग किया और युद्ध क्षेत्र को छोड़ दिया"।[3]

अबुल फजल ने उस हाथी के महावत द्वारा किए गए कार्य का तथा हाथी व महावत के महत्व का जिसकी कल्पना हेमू न कर सका विस्तृत वर्णन इन शब्दों में किया है—

"विमूढ़ता के नशे में वह (हेमू) यह न समझ सका कि वह, जो हाथी के महावत पर आश्रित है उस पर निश्चय रूप से प्रवृत्त हो जाएगा

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६४।
२—अल बदायूनी मुन्तखबाबाद—उर्दू—तर्जुमा। पृ० ८-९।
३—अबुल फजल-अकबरनामा। जिल्द—२—पृ० ६५।

जिसका भरोसा हाथी में है। तब फिर उसकी श्रेष्ठता कैसे न मानी जाए, जिसे हाथी के सजनहार का विश्वास प्राप्त है और उसके विरुद्ध हाथियों को सहायक बनाकर क्या प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है" ?[1]

यह भारतीय युद्ध पद्धति के जिसमें हाथी एक प्रमुख भाग लेते थे सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुकूल था। बहुत से शूरवीर हाथियों की तरंगों का शिकार हो गए। महत्वपूर्ण अवसर पर हाथियों की भगदड़ से उत्तम सेनाओं का नाश हो गया केवल हाथियों के घाव के कारण कई सम्पूर्ण साम्राज्य हाथ से जाते रहे। हेमू इसका अपवाद न था। घातक घाव के कारण उसका हौदे में गिरना सेना की भगदड़ के लिए एक संकेत मात्र था। उसके दो धुरंधर सेना नायक आदी खाँ और भगवानदास का भी गौरव भंग अस्त हुआ। उसके अपने निकट सम्बन्धी भांजे रमैया और भतीजे महीपाल विपद तथा संकटकालीन परिस्थिति पर काबू न पा सके। वे सब भाग खड़े हुए। बिखरा खजाने के साथ वे अलवर लौट गए और अपने अनिष्ट की प्रतीक्षा करने लगे। अफगान शूरवीर भी देश के विभिन्न भागों में अपने गढ़ों की ओर भाग निकले। जैसा कि आगे की घटनाओं से ज्ञात होगा अकबर को इन छोटे-छिन अफगानों के विरुद्ध २ से ६ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। आगरा, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार और पूर्व में कुछ अन्य स्थान तथा सड़ अवधी और हेमू के स्वामी भक्त सेवकों के अधिकार में बने रहे और मुगलों द्वारा उन पर एक-एक करके ही अधिकार किया जा सका।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ ६५।

अध्याय—८

हेमू का शहीद होना

हेमू के हाथी का महावत शत्रुओं का झण्डा सामने देखकर प्राण जाने के भय से हाथी को जहाँ शाह कुली खाँ ने निर्दिष्ट किया वहीं, हाथ में आने के लिए प्रस्तुत हो गया। जैसे ही महावत ने हाथी को अन्य हाथियों में मिलाने के लिए उसे शत्रुओं के व्यूह के एक ओर ले जाकर खड़ा कर दिया गया और पलीता से ५ मील दूर अकबर के शिविर में ले जाया गया। वहाँ क्या घटित हुआ इसका समकालीन वृत्तान्तकारों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया है।

हेमू की हत्या का सबसे अधिक प्राय उद्धरणीय वर्णन बदायूनी का है जो कहता है[1]

"और तब शाह-ए-सब्बाह तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों से सम्राट ने कहा—'क्योंकि महामान्य का धर्मद्रोहियों के विरुद्ध यह प्रथम युद्ध है इसलिए आपको इस नास्तिक के अपनी तलवार भोंकनी ही चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के कार्य का प्रतिफल महान होगा।'

लेकिन सम्राट ने उत्तर दिया—"मैं अब इस पर प्रहार क्यों करूँ क्योंकि वह तो पहले ही मृत प्राय है? यदि उसमें वीरता और शिष्टता शेष हो तो मैं ऐसा करूँगा।"

इसके पश्चात् बैरम खाँ ने स्वयं अपनी तलवार हेमू के शरीर में भोंक दी और शाह-ए-सैब तथा अन्य व्यक्तियों ने जो वहाँ उपस्थित थे उसका अनुसरण किया। बदायूनी आगे कहता है—"इस प्रकार यह उक्ति पूर्ण हुई—'उसका मारने से क्या लाभ, जो अपाया जाने वाला हो?'[2] और उन्हें उस विधि के लिए निम्नलिखित स्मरण-उक्तिसहित-पद उचित लगा—

"यदि इस धोखे और कपट से महान् निन्दनीय
विधि के लेख द्वारा हिन्दू हेमू के हाथ आ गई
तो मोहम्मद अकबर ने वह शाह जिसकी कीर्ति आकाश तक पहुँची,
ईश्वर की महायता से उस काफी सूरत वाले हिन्दू हेमू को बंदी बना लिया।

१—बदायूनी मुन्तखाब उत-तवारीख—पृ० ९ १२।

२—अर्थात्—मरने जाने वाला हो-चुपना कीजिए पाइ पृ० ३१-से-१०

जिसका भरोसा हाथी में है। तब फिर उसकी उच्चता कैसे न मानी जाए, जिसे हाथी के सूझबूझ का विश्वास प्राप्त है और उसके विरुद्ध हाथियों को सहायतार्थ बुलाकर क्या प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है' ?[1]

यह भारतीय युद्ध पद्धति के जिसमें हाथी एक प्रमुख भाग लेते थे सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुकूल था। बहुत से शूरवीर हाथियों की टक्करों का शिकार हो गए। महत्वपूर्ण अवसर पर हाथियों की भगदड़ से उत्तम सेनाओं का नाश हो गया केवल हाथियों के डाप के कारण कई सम्पूर्ण साम्राज्य हाथ से जाते रहे। हेमू इसका अपवाद न था। घातक घाव के कारण उसका हौदे में गिरना सेना की भगदड़ के लिए एक संकेत मात्र था। उसके दो धुरंधर सेना नायक शादी खां और भगवानदास का भी गौरव मय अन्त हुआ। उसके अपने निकट सम्बन्धी भांजे रमैया और भतीजे महीपारा विषय तथा सङ्कटकालीन परिस्थिति पर काबू न पा सके। वे सब भाग खड़े हुए। विश्वास जमाने के साथ वे अलवर लौट गए और अपने अनिष्ट की प्रतीक्षा करने लगे। अफगान शूरवीर भी देश के विभिन्न भागों में अपने घरों की ओर भाग निकले। जैसा कि आगे की घटनाओं से ज्ञात होगा अकबर को इन घेर-दिन अफगानों के विरुद्ध २ से ६ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। अलवर, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार और पूर्व में कुछ अन्य स्थान तथा मढ़ अलवर और हेमू के स्वामी भक्त सेवकों के अधिकार में बने रहे और युद्धों द्वारा इन पर एक-एक करके ही अधिकार किया जा सका।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ० ६१।

अध्याय—८

हेमू का शहीद होना

हेमू के हाथी का महावत शत्रुओं का भारी सामन देखकर, प्राण जाने के भय से हाथी का अहं वाह बुद्धी को से निर्दिष्ट किया वहीं होद से जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। जैसे ही महावत ने हाथी का अन्य हाथियों से अलग किया उसे शत्रुओं के भाड़ों के एक दल द्वारा घर लिया गया और पानीपत से ५ मील दूर अकबर के शिविर में ले जाया गया। वहाँ क्या घटित हुआ इसका समकालीन वृत्तान्तकारों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया है।

हेमू की हत्या का सबसे अधिक प्रामाणिक उल्लेख अल-बदाऊनी का है वह कहता है [1]

"..... और मेक गदा-ए-कम्बाह तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों से सम्राट ने कहा—'क्योंकि महामान्य का धर्मद्रोहियों के विरुद्ध यह प्रथम युद्ध है इसलिए आपको इस नास्तिक पर अपनी तलवार भोंकनी ही चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के कार्य का प्रतिफल महान होगा।

किन्तु सम्राट ने उत्तर दिया—"मैं अब इस पर प्रहार क्यों करूँ, क्योंकि वह तो पहले ही मृत-प्राय है? यदि उसमें कठिनाई और कियाशीलता रूप हो तो मैं ऐसा करूँगा।"

इसके पश्चात् बैरम खाँ ने स्वयं अपनी तलवार हेमू के शरीर में भोंक दी और गदा-ए-खास तथा अन्य व्यक्तियों ने जो वहाँ उपस्थित थे उसका अनुसरण किया। बदाऊनी आगे कहता है—"इस प्रकार यह उक्ति पूर्ण हुई—'उसको मारने से क्या लाभ जो अपाया जाने वाला है?' [2] और उन्हें उस विधि के लिए निम्नलिखित स्मरण-चलितवर्द्धक-पद्य उचित लगा—

"यदि इस बाज और कर से महान् हिन्दी
विधि के मद्य द्वारा हिन्दू हेमू के हाथ आ गई
तो माहात्म्य अकबर के यह शाह विजयी कीर्ति आकाश तक पहुँची,
ईश्वर की सहायता से उस काफी मूरत काफे हिन्दू हेमू का बंदी बना लिया।

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाब उत-तवारीख—पृ १२।
२—अर्थात्—मरक जान वाला हो-दुनना कीजिए पाइ पृ० २१-से १०

शक्ति रूपी कलम से स्थायी लेख-पत्र सृजनकर्ता के लेख ने उस दिवस के संबंध में लिखा उसने हिंदू हेमू को पकड़ लिया। [1]

इतिहासकारों द्वारा इस कथा को अधिकृत कहा गया है, जो अकबर के दरबार के मुसाहिबों द्वारा आविष्कृत कही जाती है। [2] अहमद यादगार और इस लेखक बदायूंनी जिसने अपनी सूचना एक 'साम्राज्य के विश्वस्त सूत्रों' से ली थी, के स्पष्ट कथनों द्वारा, इसी का खंडन भी किया गया, यह इस प्रकार है—

'हेमू के सैनिक' अपने सेनापति को अकेला छोड़कर, विभिन्न दिशाओं को चले गए, जिससे मुगलों को समस्त युद्ध के सामान तथा हाथियों पर अधिकार मिल गया। और हेमू को जो युद्ध के बीच में आंख में एक तीर लग जाने के कारण भागने को बाध्य था लेकिन शाह कुली महरम-ए बहादी द्वारा पकड़े जाने पर और शिविर में वापस लाये जाने पर अकबर के सामने प्रस्तुत किया गया जो कि वहां पर हेमू तथा पठानों की पराजय का समाचार जानते ही शीघ्रता से भगा गया था। अकबर ने अपनी दुखी सास की प्रार्थना पर, एक ऐसे कार्य द्वारा जो एक युवराज की शान के विरुद्ध था बहुत से अभ्यर्थित बंदी की गर्दन को अलग कर दिया। और सिर को दिल्ली के द्वार पर लटका देने का आदेश दिया। [3]

१—शब्द "विक्रमजीत हेमू-राँ" १६४ तिथि प्रकट करते हैं।
हेमू-राँ के अन्तिम अनुस्वार (राँ) के उच्चारण का लोप हो जाता है जैसे "जमीदारान के लिए "जमीनदारान में पाठ-भू ५१ ७।

२—विन्सेंट स्मिथ मुगल-ए-आजम अकबर पृ० ९६।
१४ वर्ष का बालक बैरम खां जिसका आज्ञापालन की आशा रखने का अधिकार था के निर्देशों का पालन करने के लिए उचित रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता न यह समझ लेने का उचित कारण ही है कि उस समय बालक अपने अभिभावकों से अधिक सन्देह करता था। अधिकृत कथा के पहले ही एक असहाय बंदी को मारने के लिए अतिरिक्त की एक महान भावना ने उसको अपने अभिभावक के निर्देशों का पालन करने-को मना कर देने को बाध्य किया ऐसा दरबारी मुसाहिबों का बाद का आविष्कार प्रतीत होता है।

३—रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल (पत्रिका) १९१६ पृ० ५२७-५३५
The death of Hemu De Iect de Imperio Magul sive India Vera, Lugduni Batav rum Elzevir १६३१
पृ० १०८ १८१। असल पृष्ठ संख्या बाईं ओर विषय हैं दोनों में तिथि १६३१ ही है। अनुच्छेद Vanden Broeck द्वारा लिखित Fragmentum Indicae Historiae में से है। (स्मिथ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) (De Iact of Vanden Broecke के उच्च (पाठ) से अनुवादित किया है)।

बहमन बादशाह द्वारा किया गया वर्णन कुछ सीमा तक "इब" लेखक से मिलता है, लेकिन अन्य वर्णनों से बहुत भिन्न है। वह कहता है—

"ऐसा हुआ कि सर्वशक्तिमान के विधान से हेमू के मस्तक में एक तीर लगा। उसने अपने हाथी के महावत से हाथी को रणक्षेत्र से बाहर ले चलने को कहा.....इस आकस्मिक दुर्घटना का समाचार जब शाह कुली बेग से बताया गया तो वह हाथी के पास आया और उस हाथी को बैरम खाँ के सामने उपस्थित किया गया। बैरम खाँ ने अपने को विश्रामावस्था में लिटाते हुए, और धन्यवाद देते हुए, हेमू को हाथी से नीचे उतारा तत्पश्चात उसके हाथ बांध दिये उसको मान्यशाली युवक राजकुमार के सामने ले गया और कहा— "यह हमारी प्रथम सफलता है इसलिए महामान्य अपने पुनीत कर से इस धर्म द्रोही का तलवार द्वारा मार डालें। फिर युवराज ने उसे मार डाला और उसके सिर को उसके मलीन शरीर से अलग कर दिया। (नवम्बर ५ सन् १५५६ ई०)"।[1]

अकबर के पुत्र और उत्तराधिकारी जहांगीर के संस्मरणों द्वारा इस घटना का एक और विस्तृत वर्णन प्राप्त हुआ है। उसमें लिखा है —

'कई व्यक्तियों ने हेमू को वह जैसी दशा में था वैसा ही बादशाह (अकबर) के पास तुरन्त भेज दिया। बैरम खाँ ने कहा कि यह उचित होगा यदि बादशाह स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही का तलवार से हनन करें, ताकि "गाजी" (धर्मवीर) की उपाधि प्राप्त करके उसका प्रयोग शाही घोषणाओं में कर सकें। बादशाह ने उत्तर दिया "मैंने इससे पहले ही उसके टुकड़े कर दिए हैं और समझाया "एक दिन बाबुल में मैं सैयाद अब्दुस-समद चीरी-कलाम की उपस्थिति में एक चित्र की नकल कर रहा था अब कि मेरी तूलिका से एक आकृति बनी जिसके मुख एक दूसरे से पृथक और विभक्त थे। उस समय जो निकट थे उनमें से एक ने पूछा 'यह किसका चित्र है?' मेरे मुंह से निकल गया कि 'यह हेमू जैसा है।"

'उसके (हेमू के) खून से अपने हाथ को अपवित्र न करके उसने अपने सैनिकों में से एक से उसका सिर काटने को कहा।"[2]

कथा का यह स्वरूप जहांगीर ने दरबार में सीधे से सुना होगा और इस प्रकार अपनी यादों में उसे सम्मिलित करने का अवसर प्राप्त किया। जैसा कि विन्सेंट स्मिथ कहता है यह आश्चर्यजनक है कि युवराज (जहांगीर)

१—बहमन बादशाह की तारीख-ए बाबरी (लीडन और बासल) जिल्द २—पृ ५२९ और १ ले नोट का भाग। अन्य कथनों के अनुसार हेमू का वध ११ ११ ५६ को हुआ था।

२—जहांगीरनामा अंग्रेजी अनुवाद रोजर्स और बेवरिज।

द्वारा किया गया वर्णन, जिसकी सत्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता अबुल फजल द्वारा किए गए वर्णन से भिन्न है। जब हेमू अकबर के सामने लाया गया उस समय जो कुछ हुआ उसका सबसे अधिक ब्यौरेवार वर्णन अकबरनामे से उपलब्ध है—

' ... जब कि सूरवीरों में से प्रत्येक को उपस्थित किया जा रहा था और वे सांसारिक और आध्यात्मिक पुरस्कार पा रहे थे बाह कुली खां बंदी हेमू को वहां लाया। यद्यपि उन्होंने उससे प्रश्न किये उसने अज्ञानता (अहासत) के कारण उत्तर नहीं दिया। शायद वह बोल सकने में असमर्थ था या वह लज्जा से अवाक था और कुछ कहने के लिए असमर्थ था। बैरम खां खान खाना ने महामान्य शाहंशाह से इस 'राजद्रोह की राशि' को अपने पवित्र हाथ से मारने की और एक पवित्र युद्ध द्वारा विशेषता प्राप्त करने की प्रार्थना की ... ।'[1]

अबुल फजल के अनुसार अकबर ने हेमू की हत्या करने में बड़ी अनिच्छा प्रकट की जितना ही राजभक्तों ने उससे आग्रह और अनुरोध किया वह उतना ही उसके प्रतिकूल हो गया। बालक सम्राट को "अपने मस्तिष्क के पाक दामन पर ऐसी धूल के जब्बे न पड़ने देने का' निश्चय करने का भी श्रेय दिया गया है और यदि ऐसी घटना हो भी "तो वह अपनी तलवार को ऐसे मरणासन्न व अपवित्र शत्रु के रक्त से कैसे रंजित करेगा? यह ठीक ऐसा ही वर्णन है जो एक खुशामदी चाटुकार दरबारी लेखक की लेखनी से ही फूट सकता है जैसा कि विन्सेंट स्मिथ द्वारा भी उल्लिखित है। उसके अनुसार "पानीपत के युद्ध के समय अकबर पुनर्जन्म न लिया हुआ बालक था। जो मनोरंजन में मग्न था और अपने परिपक्व-पुरुषत्व की भावनाओं से मुक्त न रहा होगा। अतः उसमें अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन न करने का साहस न था और इसीलिए तलवार से प्रहार किया। किन्तु 'गाजी' की उपाधि धारण करने का मोह और आकर्षण भी बालक सम्राट द्वारा रोकने के लिए अत्यधिक उत्तेजक था।'[2]

इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि अकबर ने अपने शासन के प्रथम वर्ष में गाजी की उपाधि धारण कर ली थी। इस बात पर कि यह उसके द्वारा अपने हिंदू प्रतिद्वंद्वी हेमू का हनन करने पर धारण नहीं की गई थी संदेह करने का कोई कारण नहीं है। अपनी अधिकृत जीवनी में अकबर द्वारा किये गए वर्णन में यह स्पष्टतः अंकित है कि अकबर को उपाधि प्राप्त करने के लिए ऐसा करने की सम्मति दी गई जिससे उसका प्रयोग सारी फरमानों पर हो सके।

१—अबुलफजल अकबरनामा—बिब्लि —पृ० ७१ ७२।
२—विन्सेंट स्मिथ अकबर पृ ३९।

कि अकबर इस उपाधि का प्रयोग करने में गर्व समझता था और उसको कोई मनस्ताप नहीं था इससे यह स्पष्ट होता है कि उसने अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन किया, और जैसा इतिहासकार फिरिश्ता द्वारा उल्लिखित है या तो उसने तलवार से प्रहार किया और या तलवार से केवल हेमू का सिर छू दिया।

घटना के बारे में दिए गए विविध उल्लेख बहुत से सूक्ष्म विवरणों में एक-दूसरे से विस्तृत रूप से भिन्न है। मुख्य प्रश्न निस्सन्देह रूप से केवल एक विषय को निश्चित करता है— अकबर में शिक्षक-अभिभावक की आज्ञा मानी अथवा नहीं ? क्या बैरम खाँ के आदेशों का पालन करते समय उसने कुछ हिचकिचाहट अनुभव की ? क्या उसने अपने सेवकों में से किसी एक को कार्य सम्पन्न करने को कहा या स्वयं (इसके लिए) कष्ट उठाया ? अबुल फजल का रोचक व अलंकारमय वर्णन बदाऊनी का सरल उल्लेख तथा अहमद यादगार और हीसामत के पूर्ण रूप से विरोधी वर्णन आज पाठक को भ्रम में डाल देते हैं। विविध वर्णनों का सावधानी से अध्ययन करने पर अकबर की आयु को विचार में रखते हुए और वे परिस्थितियाँ जिनमें उसे शिक्षा और आदेश दिए जा रहे थे एक व्यक्ति को इस परिणाम पर पहुँचाती है कि फिरिश्ता द्वारा दिया गया हेमू की आहुति का निम्नांकित वर्णन पूर्वगामी वर्णनों से कहीं अधिक वास्तविक लगता है।

जब हेमू को उपस्थित किया गया बैरम खाँ ने बादशाह से स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही को मारकर एक प्रशंसा योग्य काम करने के लिए प्रस्ताव किया। अकबर ने अपने वजीर की इच्छा पूर्ति करने के लिए अपनी तलवार चौथी और बन्दी का सिर छूकर 'गाजी' [1] के विशिष्ट नाम का पात्र बन गया जब कि बैरम खाँ ने अपनी निजी कटार खींचकर, एक ही प्रहार से हेमू के सिर को उसके धड़ से विलग कर दिया। [2]

धड़ से सिर के अलग होने पर, हेमू के सिर को अम्बाला का मिक्षा देने के लिए काबुल भेज दिया गया और उसका धड़ दिल्ली से लाया गया और मुगलों के पक्षपातों को चेतावनी के रूप में पानीपत की दिशा पर लटका दिया गया। अबुल-फजल के अनुसार यह घटना ५ नवम्बर १५५६ ई० को हुई थी।

युद्ध की लूट का माल—

विजयी मुगल सेना द्वारा जिसने तुरन्त दिल्ली नगर की ओर कूच किया 'लूट के माल' के रूप में लगभग १२०० हाथी और इतनी राशि में

१—इसका अर्थ है वह व्यक्ति जिसने युद्ध में अपने कार्यों द्वारा धर्मद्रोहियों को मारा हो और सच्चे धर्म का प्रचार किया हो।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स का अंगरेजी अनुवाद जिल्द २ पृ० १८४ १९०।

कोषागार एवं भण्डार की विशे कल्पना भी सोचन में सक्षितहीन है हस्तगत किया गया । [१] पानीपत से लेकर दिल्ली तक मार्ग में कोई विरोध नहीं हुआ। अबुल फजल के शब्दों में—"दुर्भाग्यशाली बाबु ने तुरन्त अपनी पीठें दिखा दी और भागने में भी अपनी सुरक्षा समझी। साहस रूपी अंगद के धरों ने तीरों तथा युद्ध के भालों के प्रहारों द्वारा महावतों का उनके पहाड़ों (हाथियों) की चोटियों पर से सिर के बल नीचे गिरा दिया और पर्वत सदृश गर्वों को एक तूफान की भाँति (भाग) जाने के लिए बाध्य कर दिया। [२] विजयी मुगल सैनिक भागनेवालों की अविवेकपूर्ण हत्या में और लूट का माल एकत्र करने में रत हो गए। उन सैकड़ों और हजारों सैनिकों के अतिरिक्त जो रणक्षेत्र से भागते समय घोड़ों और हाथियों द्वारा कुचल गए होंगे रणभूमि में लगभग ५००० व्यक्ति नष्ट होगए। सिकंदर खाँ उजबेग को एक सैन्यदल के साथ भागनेवालों का पीछा करने के लिए भेजा गया। उसे विशाल लूट का माल मिला। मुगल सेना तत्पश्चात् शीघ्र ही दिल्ली में प्रविष्ट हो गई और अकबर भी पानीपत से आ पहुँचा। उसने 'ब्यास्याम-मैच से एक बार फिर से खुतबा घोषित करवाया वहाँ वह एक मास ठहरा। और प्रतिभाशाली अमीरों को मालवा सम्भल और अन्य नगरों के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया गया। [३] मुगल इतिहासकार के कथनानुसार "नगर की आम जनता ने बहुत बड़ा शान्ति पाकर उसका स्वागत किया क्योंकि उन्हें आशा थी कि मुगल सम्राट की वापिसी' दिल्ली को और अधिक विध्वंसक युद्ध और परिणामस्वरूपहोने वाले विनाश से बचा सकेगी।

१—मस-अराऊमी मुन्तखाब उत्-तवारीख पृ ९ १९
२—अबुल-फजल अकबरनामा —जिल्द ३ ३१ ७२
३—मस-अराऊमी मुन्तखाब उत्-तवारीख पृ० ११

अध्याय—६

परिणाम व प्रतिकार

दिल्ली पहुँचकर, अकबर ने बैरम खाँ के परिवार के मुआमले पीर मुहम्मद खाँ को मेवात की ओर भेजा जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ कहा जाता था। उस स्थान का शासक हाजी खाँ था और हेमू के कुटुम्बियों ने वहीं अकबर में शरण ग्रहण की थी। अकबर के शासन के प्रथम वर्ष की समाप्ति के पूर्व अर्थात् जनवरी १५५७ ई० में पीर मुहम्मद ने 'हेमू के जन्म-स्थान रेवाड़ी (या सवारी) तक अकबर की सरकार पर अधिकार कर लिया।'

हेमू के वृद्ध पिता को फांसी—

हेमू के वृद्ध पिता राय पूरन मल को ८० वर्ष के वे पकड़ लिए गए और मौलाना (पीर मुहम्मद) के सामने लाये गए। वहाँ उनसे इस्लाम धर्म को अंगीकार करने को या मरने के लिए प्रस्तुत होने को कहा गया। इसका उन्होंने उत्तर दिया—[1]

८० वर्ष तक मैंने अपने भगवान की अपने धर्म के अनुसार उपासना की है। तो मैं अब अपने जीवन की सांझ होने पर उसे क्या बदल दूं, और वह भी केवल जीवन के भय से और बिना यह समझे कि वह तुम्हारी पूजा में तुम्हें कैसे बाधा पहुँचाती है। पीर मुहम्मद ने ऐसे सम्मानपूर्ण उत्तर पर कोई ध्यान नहीं दिया और अस्सी वर्ष के वृद्ध और दुर्बल व्यक्ति का तुरन्त फांसी पर लटका दिया। अबुल फजल के मतानुसार "पीर मुहम्मद ने उसे मार डाला। उसका सूट का माल एकत्रित करके वह अकबर के पास लौट आया।"[2]

महारानी का पक्ष निकलना—

अब बदाऊनी हेमू की पत्नी के जिसको मुगल सेनानायक बन्दी न बना सके के साहस पूर्ण भाग निकलने का एक विषद वर्णन छोड़ गया है—

'और, पीर मुहम्मद खाँ और मेहदी कासिम खाँ का संबंधी हुसैन खाँ और कई अन्य सेनानायकों ने मुगल सईद खाँ के साथ मिलकर दिल्ली से मार्च

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २ पृ० ७१-७२।
२—अकबरनामा से बदायूनी मुन्तखबात आईन-ए-अकबरी पृ० ३२९।

बातों का पीछा किया, और अजमेर से होते हुए वे हेमू की पत्नी तक पहुँचे जिसके साथ सोने से लदे हाथी थे। महारानी ने स्वयं तो कुचा चिले और बैजवाड़ा में पहाड़ और जंगल का सहारा लिया और सोना पीछे छोड़ दिया जिसका बहुत बड़ा भाग बैजवाड़ा प्रदेश के बंजारों के हाथ लगा। फिर भी राजभक्तों की सेना के हाथ जो माल लगा वह इतना बड़ा था कि उन्होंने डाल भर भर के उसे बाँट दिया और 'निसार-ए-जर' सोने के टुकड़ों का बिखेरना तिथि (९६४) प्रकट करता हुआ पाया गया। और सड़क पर, जिससे महारानी गई सोने की सिक्की व सिक्कों की इतनी बड़ी संख्या गिरी थी कि बहुत वर्षों तक आबियों और पथिकों को प्राप्त होते रहे।[1]

हाजी खाँ का भागना—हेमू के पिता से लिपटकर और हेमू की पत्नी के बच निकलने को रोकने में असफल होने पर मुगलों ने हाजी खाँ को जो मेवात का सूबेदार था पकड़ना चाहा। उसने बुद्धिमत्ता और सेना एकत्रित करने की कुशलता में पहले ही अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और उसने हेमू के साथ साथ दिल्ली के संग्राम में विजय प्राप्त की। लेकिन इस बार वह विजयी सेना की शक्ति से डर गया और उसके पहुँचने से पूर्व ही भाग गया।[2] उसके भाग जाने के फलस्वरूप मेवात की सम्पूर्ण सरकार मुगलों के अधिकार में आ गई। हाजी खाँ दक्षिण-पश्चिम की ओर गया और मेवाड़ में प्रविष्ट हुआ। हाजी खाँ और राणा उदयसिंह के मध्य एक युद्ध हुआ। वह और उसका वकील मुबारक खाँ भेरवानी वीरता से लड़े और उन्होंने राणा को हरा दिया। फलस्वरूप अजमेर, नागौर और समीपवर्ती प्रदेश हाजी खाँ के हाथ आ गये। बाद में हाजी खाँ बसावरी में मुगलों और अदली तथा हेमू के एक अन्य मुकाम संग्राम खाँ के बीच राजीनामा कराने में बहुत विशिष्ट भाग लिया। लेकिन तत्पश्चात् शीघ्र ही दोनों मुबारक में जाकर, जब कि बैरम खाँ ने भी पदच्युत व निष्कासन के पश्चात वहाँ शरण ली तो मूसा खाँ फौलादी और अजमेर के हाजी खाँ ने उसका फाटक में स्वागत किया। वहीं पर मुबारक खाँ अफगान द्वारा बैरम खाँ की हत्या की गई थी। हाजी खाँ कुछ समय के लिए मुगल-दरबार में गया लेकिन पुनः भाग खड़ा हुआ। वह १५७० में आसफ खाँ के विरुद्ध मोर्चा में लड़ा और मारा गया।

सिकन्दर सूर का पीछा—

जब कि हेमू अपनी विशिष्ट चेष्टा द्वारा दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था और मुगल उसको नष्ट करने की तैयारी में लगे थे सिय एकामा को सिकंदर का जिससे उन्हें पीछे से भय हो सकता था विरोध करने के लिए नियुक्त किया था। परन्तु देर है। हेमू और सिकन्दर के बीच कोई मिलाप नहीं

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाब-उत्-तवारीख पृ ।
२—अबुल-फजल-अकबरनामा जिल्द—२ पृ ७१-७२।
३—अल-बदाऊनी मुन्तखाब उत-तवारीख : २८ ४, ५५।

किया और कोई सहयोग न था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुगल एक के बाद एक स्थान स्थापित कर सके और दूसरे को रोके रहे। जैसे ही दूसरे मुगल सेनापति स्वतन्त्र हो सके उनको लाहौर भेज दिया गया। सम्भवतः इसी बीच मुल्ला अबदुल्ला सुल्तानपुरी ने एक शाहरा कार्य किया। एक ओर तो उसने बरसातों में "दीन-ए इस्लाम" की उपाधि और दूसरी ओर मुगलों से "मखदुम उल-मुल्क" की उपाधि प्राप्त की।[1] उसने पंजाब में कहा कि वह मुल्तों की सेना में है और सिकन्दर को पहाड़ियों से बाहर निकालने के लिए वार्मोचित किया और राजा-कर की वसूली के लिए निकला। सिख तो सिकन्दर का प्रतिरोध करने के लिए लाहौर नगर में थे। जब वह आसपास शहर में पहुँचा तो सिकन्दर ने एक बृहत सेना के साथ उसका सामना करने के लिए कूच किया। सिखों का अग्रदल जिसमें २००० चुने हुए व्यक्ति थे पराजित हुआ और वह बापस लाहौर भगा गया। वस्तुतः यही वह समय था जब कि पर्वतीय का निर्णायक युद्ध लड़ा गया। मुगल सेनाएं दिल्ली पहुँची ही थी कि दिल्ली में समाचार प्राप्त हुआ कि लाहौर से ८० मील के अन्तर पर एक स्थान अमरावती की सीमाओं पर सिकन्दर के सम्मुख सिख सेना पराजित हो गया था और लाहौर पहुँच गया था। "महामान्य (अकबर) ने जालंधर के लिए प्रस्थान किया ही था कि सिकन्दर ने एक बार फिर शिवालिक पहाड़ियों का मार्ग लिया तब पीछा करती हुई शाही सेना सिखों और बाहमनियों तक प्रविष्ट हो गई"।[2]

यदि पानीपत में उनकी हार हो गई होती तो सिकन्दर की और से मुगलों को जो भय था वह जाता रहता। वह बाबुर को उनकी बापिसी के कार्य को कार्य देता और हिन्दुस्तान की सीमा में आने की किसी की वह सर्वोच्च के मुगलों में कभी एक न हो पाती। लेकिन पानीपत में हेमू की हार ने अफगानों की मृत्यु का घण्टा बजा दिया। यद्यपि सिकन्दर कुछ समय तक बड़ा प्रतिरोध करता रहा और अपने को मानकोट के दुर्ग में बन्द रखा फिर भी मुगलों ने अब कूटनीति का सहारा लिया और असमान सामन्तों से मिलकर सैनिकों का कुछ हिस्सा देकर नौकरी में भरती करके उसके प्रतिरोध को कम करना आरम्भ किया। जब कि घेरा डालने का कार्य चल रहा था। सिकन्दर के सामन्त एक-एक करके उसका साथ छोड़ना आरम्भ किया और मुगल दरबार में उपस्थित हो गए। सैयद महमूद बारहा गाजी खां सूर के साथ अकबर सम्राट के पास आया और २० वीं रमजान ९६८ हिजरी—११५८ ई० को हाथी में दिए। वहां दो सेनानायक शाहिम प्रस्ताव भी लाए

१—अकबर नामा—अकबरनामा जिल्द—२ पृ० ७१।
२—तब-तबाकती-मुहम्मद-तब-तबातीब-पृ० ११।

और सिकन्दर को अफगानों से खान जमन द्वारा विजित कर लेने पर जौनपुर की जागीर की भेंट अर्पित की गई। लेकिन अफगानों के गढ़ पर जो उन्होंने हेमू के मंत्रित्व में सुदृढ़ किए थे अधिकार करना एक कठिन कार्य था जैसा कि अकबर के शासन का प्रारम्भिक इतिहास बतलाएगा।

लखनौ का युद्ध—

खान जमन अफगानों का दमन करने के लिए पूर्व की ओर बढ़ा। हुसन खां बघगोती ने २० हजार व्यक्तियों के साथ उसका सामना किया लेकिन खां जमन और बहादुर खां संख्या में कम होते हुए भी लखनौ में अफगानों को हराने में सफल हुए।

जौनपुर—

जौनपुर में अगला संघर्ष बंगाली अफगान से हुआ जो अपने को सुल्तान बहादुर कहता था और जिसने सिक्के जारी किए थे तथा बंगाल में अपने नाम में खुतबा पढ़वाया। पहले मुगल फौजों की जौनपुर में बुरी हार हुई, लेकिन खान जमन ने उत्तम-युक्ति से पराजय को विजय में बदल दिया। यह विजय बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि इससे एक बार पुनः मुगलों के लिए पूर्वी प्रदेशों के द्वार खुल गए। बहुत सा-लूट का माल तथा विशाल भंडार खान जमन के हाथ लगा जो उस समय अन्य आक्रमणों के लिए सैन्य था।[1]

ग्वालियर—

वर्ष ९६६ तक अर्थात् १५५८ में ग्वालियर अदली और हेमू के एक खास बुहेल[2] खां के अधिकार में बना रहा। मुगल सेनानों ने उसे घेर लिया उसने दया की भीख मांगी और चाबियां सौंप दीं। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के दो वर्ष पश्चात् १५५८ ई में ग्वालियर का दुर्ग अकबर के अधिकार में आ गया।

रणथंभौर—

यह दुर्ग अदली और हेमू के एक खास संग्राम खां[3] के अधिकार में बना रहा। लेकिन १५५८ ई० में मुगलों द्वारा उस पर अधिकार किए जाने के भय से उसने इसे राजा सुर्जन हाड़ा को बेच दिया। कुछ समय पूर्व उसने हिन्दू बेग मुगल के विरुद्ध घोर संघर्ष किया था लेकिन और आगे क्या कर सकता

१—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० १८ १९।

—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १८ १९ तारीख-ए-अल्फी का इलियट के हस्तलेख में 'हुम्मत' है अबुल फजल कहता है कि सहेम अदली ने ग्वालियर का प्रभुत्व इस खास को दे दिया था।

२—तबकात-ए-अकबरी में इसको खां लिखा गया है इलियट ५ २६०।

कठिन पाकर उसने शान्ति की विनती की। हाजी खाँ भीकन बखावत और बल बदाऊनी के पिता मध्यस्थ बने और संग्राम खाँ कुछ शर्तों पर दुर्ग को त्याग देने के लिए तत्पर हो गया। लेकिन जब मुगल अमीरों ने नकद धन मास के रूप में मुआवजे के देने में विलम्ब और टालमटोल करना आरम्भ किया तो संग्राम खाँ ने इस राय मुजेंन झाड़ा को सौंप दिया और हाजी खाँ के साथ मुजफ्फर चला गया। इस प्रकार हेमू के य वा घनिष्ठासी सहयोगी सेना-नायक मुगलों के राप से बचने के लिए गुजरात के अधिक सुरक्षित प्रदेश में जाकर बस गए। उनको इसका आभास तक न था कि एक दिन हेमू का सच्चा शत्रु और प्रायद्वीप बैरम खाँ एक अफगान के हाथों अपना अन्त कराने के लिए गुजरात आएगा।[1]

अदली का सर्वनाश और मृत्यु—

हेमू की मृत्यु अदली के भाग्य के लिए एक भयानक धक्का था। वह हेमू ही था जो उसके लिए एक स्तम्भ था और उसके पीछे अथवा कृपाण पर उसकी सहायता को आ सकता था। जैसे ही उसकी मृत्यु का समाचार पूर्वी प्रदेशों में पहुँचा अंमास के मुहम्मद शाह पुत्र ने जिस हेमू ने हराया था तथा कालपी में मार डाला था, का पुत्र सिकन्दर खाँ अदली से बदला लेने के लिए, उसके विरुद्ध विद्रोह के लिए उठ खड़ा हुआ।[2] उसने सीढ़ में लूटमार पहचान की आज्ञा दी। अदली को युद्ध हारना पड़ा और वह विनष्ट हो गया। 'उसका शरीर जो पूर्णतः मृत नहीं था और जो सिकन्दर खाँ के आदेशाधीन था एक हाथी के पैर से बाँध दिया गया और खींचा गया।"[3] इस प्रकार पूर्वी प्रदेशों में अदली का शासन ३ वर्ष तक रहा और उसकी मृत्यु ९६४ हिजरी अर्थात् १५५८ ई० में हुई।

चुनार पर अधिकार –

पूर्व में अदली के राज्य का केन्द्र चुनार का दुर्ग अदली के एक राम जमास खाँ के अधिकार में बना रहा। जब उसने सुना कि मुगल खान जमान के नेतृत्व में पूर्व की ओर बढ़ रहे हैं तो उसने दुर्ग के आत्म-समर्पण की शर्तों को निश्चित करने के लिए एक प्रतिनिधि मुगल दरबार में भेजा। मुगलों से इसके निबटारे के लिए मेहतर अली बेग को भेजा। उसके पास शर्तों से युक्त पत्र फरमान था।[4] जमास ने दूत का बड़ा हार्दिक स्वागत किया और उसको

१—मुन्तखाबुल्लुबाब-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ ४१।
—रिजिस्ता पृ० १४७ से १५१।
२—तियामतउल्ला जिल्द १ पृ० १७१ से १७७।
४—मुन्तखाबुल्लुबाब-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० २६ २७।

शेरशाह और सलीम शाह के राजमहल तथा दुर्ग की सभी सुरक्षा सम्बन्धी युद्ध सामग्री दिखाई। लेकिन जब जमाल खाँ को सन्धि का फरमान जिसमें उसे जौनपुर में पाँच परगने प्रदान किये गए थे दिखाया गया तो उसका भ्रम दूर हुआ क्योंकि उसकी आशाएँ कुछ इससे अधिक थीं। उत्तर में उसने मेहर अली के सामने अपनी निजी शर्तें रखी और मुगल दरबार से अपने प्रार्थना पत्र का उत्तर आने तक उसे रोक रखने का प्रयास किया। इसी बीच खान जमन और फत्तू खाँ अफगान जो रोहतास दुर्ग में था के साथ उसका समझौता सफल हो गया। मेहर अली को षड्यंत्र की गन्ध आई और फत्तू खाँ की आशानुकूल विमुखता और खान जमन की अवज्ञा के कारण उसके कान खड़े हो गए। उसने बड़ी व्यग्रता में गंगा के किनारे-किनारे बिना किसी साथ के दुर्ग से भागकर बच निकलने की चेष्टा की। अपने ध्येय में असफल होकर मेहर अली आगरा लौट गया। चुनार का दुर्ग जमाल खाँ के अधिकार में रह गया।[1] इसका आत्म-समर्पण करा लेने का मुगलों का प्रथम प्रयास सफल न हो सका।

कुछ समय पश्चात चुनार का दुर्ग अरसी के एक दूसरे दास फत्तू[2] ने उसके पुत्र शेरखाँ के अधिकार में रहा। हिजरी ९६८ में खान जमन[3] ने उसके विरुद्ध एक युद्ध किया जब कि वे एक पर्याप्त बड़ी सेना के साथ आए थे। खान जमन की विजय प्राप्त हुई। फत्तू ने जिसकी ख्याति पहले ही चारों ओर फैल गई थी मुगल दरबार के पास दुर्ग के आत्म समर्पण का प्रस्ताव करते हुए याचना-पत्र भेजा। इस समय खान जमन पर अवध का सन्देह किया जा रहा था और अकबर स्वयं कड़ा (जिला इलाहाबाद में) की ओर बढ़ रहा था। फत्तू को ठिकाने से लगाने के लिए शेख मुहम्मद (जिसका कि फत्तू एक शिष्य था) और आसफ खाँ गए और उन्होंने चुनार दुर्ग पर शान्ति पूर्ण अधिकार कर लिया। तत्पश्चात फत्तू ने मुगलों की नौकरी कर ली और बाद में नगरकोट और कांगड़ा के घेरे में मिर्जा युसुफ खाँ इस्माइल कुली खाँ राजा बड़हर और अन्य अमीरों के साथ भाग लिया। अल-बदाऊनी द्वारा उसका इन शब्दों में उल्लेख है—'अरसी का एक दास[4] मुसाहबी अली फत्तू।

अफगानों के विरुद्ध नई कार्यवाही ९७२ हिजरी—१५६१ ई

अपने को बैरम खाँ की कष्टप्रद तथा अप्रिय अभिभावकता से मुक्त करके अकबर ने दुसौतों को अपनी आधीनता में सेना आरम्भ किया। जब उसके सेना नायक आसफ खाँ ने अपनी दुर्भावती से अपना संघर्ष समाप्त किया

१—२—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ४२—४४।

३—अली कुली खाँ।

४—अल-बदाऊनी—पृ० ७८-८।

तो अकबर को पूर्व से समाचार मिला कि खान-ए जमन अफगानों से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। परिणाम स्वरूप बंगाल का शासक सुलेमान करर्रानी सक्रिय हो गया। इस्लाम शाह के पुत्र फिरोज खाँ में उसके मुखियाओं मामद इस्कन्दर खाँ खान-ए-आलम बहादुर खाँ और इब्राहीम के साथ मिल कर अकबर से राजद्रोह के चिन्ह दर्शाना आरम्भ कर दिया। अकबर स्वयं रणभूमि में आया जैसा कि अल-बदाऊनी द्वारा निम्नलिखित शब्दों में उल्लिखित है[1]—

"महामान्य शहंशाह शक्ति सम्पन्न कृत्रिम प्रस्थानों द्वारा सजनी आए। सिकन्दर खाँ ने युद्ध नहीं किया परन्तु खान जमन और बहादुर खाँ से मिलकर, मदन मामद खाँ और मजनू खाँ का विरोध करना बन्द कर दिया और मदन सब आदमियों और परिवारों के साथ जौनपुर का मार्ग लौटते हुए गंगा नदी को पार किया और निचले देश को चले गए ।

पूर्वोक्त वर्ष के जिल-हिज्जाह मास में १ ले दिन शुक्रवार को सम्राट जौनपुर के किले पर उतरा ।" उस दिवा सम्राट ने बंगाल के शासक सुलेमान करर्रानी (जिसकी खान-जमन से घनिष्ठ मित्रता थी) के पास खान-जमन को किसी प्रकार का सहयोग अथवा सहायता देने से रोकने के लिए हाजी मुहम्मद खाँ सिस्तानी को दूत बनाकर भेजा। जब वह राजदास दूत पहुँचा दुष्ट अफगानों ने उसे पकड़ लिया और उस खान-जमन के पास जिससे उनका एक प्रकार का एक्य था भेज दिया ।

खान-जमन के विद्रोह का प्रतिरोध करने के लिए अकबर ने हुसेन खाँ चगताई और महापात्र बादरायण (जो शेरशाह और इस्लाम शाह के दरबारियों में से एक था और जो संगीत शास्त्र और हिन्दी कविता में अद्वितीय था) को उड़ीसा के राजा के पास (जो दूसरे राजाओं की अपेक्षा अपनी सेना व सैनिक ज्ञान के लिए विख्यात था) दूत के रूप में भेजा ताकि वह उसे खान जमन को सहयोग और सहायता देने से रोके। पूर्वी अभियानों में जहाँ अकबर पहले से ही दिये थे शरण ग्रहण करने में उसका रोका जाना था। इसी बीच अली कुली खाँ ने मुनीम खाँ द्वारा संधि के लिए समझौता करना आरम्भ कर दिया। उसने भी क्षमा-याचना की। बहादुर खाँ ने भी अधीनता मान ली। अकबर ने विद्रोहियों को क्षमा कर दिया और इस प्रकार उनका प्रेम प्राप्त किया। अफगान एक बार फिर पूर्व में अकेले रह गए।

रोहतास का आरम्भ समर्पण—

सुलेमान करर्रानी इस समय तक रोहतास तक कूच कर चुका था जब वहाँ अफगान मुगलों की ओर से पूर्व के गवर्नर के रूप में कार्य कर रहा

1—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ७७—७८।

था) और उसका घेरा लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगम सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में र खान जमन ने एक बार फिर जौनपुर की ओर दृष्टि किया और बहादु से जौनपुर और बनारस से मुक्त किया । अली कुली खां ने जा गोरखपुर गया था एक बार पुन क्षमा की भीख मांगी । मुनीम खां की सम्मति ३ बार और क्षमा कर दिया गया । ३ मार्च १५६६ ई तक अकबर न सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगा सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । लेकिन १५६७ ई उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह ९ जून १५६७ ई को फतेपुर परसोही में पर हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खां को फांसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७१ म मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरो क दी गईं पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खां को सबसे बड़ा लाभ मिला ।

सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुन के दुर्ग तक तथा जमा मियाद से लेकर जूहखान नदी के घाट तक बहादुर और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोषाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमा कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था । लेकिन अफगान सरदार ने उजबक विद्रोह के बाद में अपने को न फंसाने में चतुरता दिखाई । तत्पश्चात् उजब मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया । सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खां के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । उसने मुगल सम्राट में अपने नाम में सिक्के ढ़ालना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया । पूरब, बंगाल, उड़ीसा और कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे । १५७२ ई में सुलेमान की अन्तिम सांस ली और उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ । लेकिन अपनी परिपक्वहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्त

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १०४ ।

अपने छोटे साले हेन्मू और अन्य अमीरों के छल से कारण मार डाला गया।[1] बयाजीद के स्थान पर सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में बड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर खानेखाना जिसका शीघ्र ही राजा बिरमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई का सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों में पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुनसबदारों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में [illegible] हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर [illegible] किए बिना पटना को ले लेना असम्भव था। मुगल सम्राट को [illegible] सामरिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ [illegible] के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आगरा [illegible] पर अफगान फिर सर न सिकने। १५७५ ई० में [illegible] का घुटना टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध [illegible] एक संधि सम्पन्न करा ली लेकिन दाऊद द्वारा [illegible] कुछ समय तक ही चलता रहा। मजबूर १५७५ [illegible] पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और [illegible] प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधी [illegible] को सफल किया और मसनद बनाया। [illegible] से परास्त हो गए और मुगलों को

[illegible] । हाजीपुर इस अवसर में भली भाँति

मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला [illegible] काला पहाड़ घायल होकर [illegible] । टोडरमल ने दाऊद का सिर म

पृ० १६७ से १८७ तक।

[illegible] का उत्थान और पतन

था और उसको घेर लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर मालवमयू की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस में युद्ध किया । अभी कुली खाँ में जो गोरखपुर चला गया था एक बार पुन क्या की भीख माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । ३ मार्च १५५६ ई तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय का दूर भगा दिया । लेकिन १५६७ ई में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह जून १५६७ ई को फतेपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला ।

'सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा तिमाह में सैकर कूहगान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।"[१]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के
फर्तानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय
विद्रोह के जाल में
मुखियाओं
पूर्व ।

बल छोड़े जाने हेमू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[1] बयाजीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति का ढोंग रचा। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध मचा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। अकबर को इस अवसर पर बीरबर जिसका शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुनीम का इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य का अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में मुंगेर से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सांकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना से निकाल गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम ने एक संधि सम्पन्न करा दी जिसके द्वारा दाऊद अकबर का कुछ समय तक ही चला रहा। अक्तूबर १५७५ ई०

बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और
मारा पड़ा। राजा टोडरमल की आधी
संघर्ष किया और यश कमाया।
स्व हो गए और मुगलों को

मगरों में भली भाँति

बाबा
र

था और उसका घेरा लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर मालवगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस में युद्ध किया । अभी कुली खाँ मं का दारापुर बसा गया था एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । ३ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । सन् १५६७ ई में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । यह जून १५६० ई० को फतेपुर परसाही में पराजित हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर सलतनत से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा भाग मिला ।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा सिवाह से लेकर कुहसान नदी के पार तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था । लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह के समय में अपने को न दर्शाने में चतुरता दिखाई । तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया । सुलेमान ने एक संधि पूर्ण रूप अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए तत्पर हो गया । इसमें मुगल सम्राट ने अपने नाम में सिक्के ढलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया । इस ढंग से अफगान कुछ समय तक शान्त में शासन का आनन्द लेते रहे । १५७२ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ । लेकिन अपनी परिपक्वहीनता के कारण वह, कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ १०४ ।

बल छोड़ सामे हेमू और अन्य अमीरों के छप के कारण भार डाला गया।[1] बयाजीद के स्थान पर, मुहम्मद का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी शक्ति बढ़ा दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में बड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर सीपर, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई, की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हेमू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रथमकालीन सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य का अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में पटना में एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में आंशिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद मारा गया। आक्रमण करके पटना से लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को चुनार छोड़ने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक हिचकता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आयी सेना में मुजफ्फर ने एक बार फिर अपने को संगठित किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त ही गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से खुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला कालापहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अब्दुल बाकी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० ११७ से १८७ तक।

२—डा० आर पी त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन

था और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द ले रहा था खान जमन ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस में युद्ध किया। अभी कुली खाँ में था मारखपुर जमा गया था एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। १ मार्च १५५६ ई तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय का दूर भगा दिया। लेकिन १५६० ई में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह जून १५६० ई को खैरपुर परसाही में पराजित हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलाकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर सलतनत से भाग गया और १५७० में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ का सबल बड़ा हाथ मिला।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा सिपाह से लेकर कुहसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीर दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह के लाभ से अपने को न फंसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शांति पूर्ण संधि अफगानों और मुनीम खाँ के हस्ताक्षर द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सम्मत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम में खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया। इस संधि से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लूट रहे। १५७२ ई० में सुलेमान के अल्पवयस्क पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी परिस्थितियों के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख भाग १ पृ०।

अपने छोटे भाई हेमू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[1] बैरामखाँ के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली, मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में बड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर बीघर, जिसका शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की अजेय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में टांडा में एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सांकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना-कुछ समय तक ही चला रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आयी सेना में मुगलों ने एक बार फिर अपने को संगठित किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

'अफगानों की तलवार से जुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला कालापहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का पीछा से

१—अब्दुल्ला मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १६७ से १८७ तक।
२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

था और उसको घेर लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर भाग गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर आक्रमण की ओर रुख किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया । अभी कुछ ही दिन हुए थे जब गोरखपुर भेजा गया था एक बार पुनः इसकी सीमा माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । १ मार्च १५१६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह जून १५६७ ई० को कालपुर पर्सोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर सलामत से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला ।

सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा सिपाह से लेकर घूहसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दीं और उन सम्मान की पोषाक और एक घोड़े का उपहार देकर उनको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था । लेकिन अकबर खानेजहाँ के उजबक के विद्रोह की आग में अपने को न झोंकने में चतुरता दिखाई । तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया । सुलेमान ने एक बार पूर्व की भाँति अपनापन और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सम्मत हो गया । उसने मनसब सम्राट से अपने नाम से खिलअत भेजा और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार करा लिया । इस बात से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का अवसर पा गये । १५७३ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ । लेकिन अपनी अदूरदर्शिता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १०४ ।

कत्ल हो गये हेमू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[1] हुमायूं के स्थान पर, मुहम्मद का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र का राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खां को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खां को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। अकबर को इस अवसर पर सौभाग्य जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को हेमू की प्रबंधकीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में सिमट कर एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खां ने एक संधि सम्पन्न करा दी जिसके द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चलता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खां की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधीनता में मुगलों ने एक बार फिर अपने को संगठित किया और युद्ध जीता। जुलाई १५७६ ई० में अफगान पूरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आंका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से चुनैद न मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जयराम को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदायूनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ १६७ से १८७ तक।

२—डा आर पी त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन

था और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट सिकार का आनन्द लूट में रत था खान जमन ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। अली कुली खाँ ने जो गाजीपुर भेजा गया था एक बार पुनः दया की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। ३ मार्च १५७६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह जून १५७० ई० को फतेपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर सलतऊ से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला।

'सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा अमा सियाहू से लेकर जूहखान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह के साथ में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम में सिक्के ढलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार करा लिया। इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द भोग रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी चरित्रहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अब्दुल्ली-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ १४।

अपने छोटे भाई हेमू और अन्य मंत्रीयों के छल के कारण मार डाला गया।[1] बयाजीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी शक्ति बटोर ली और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर खीझर जिसका शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में सूरजगढ़ में एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सांकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आगे मार्च करके पटना से लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी जिसके द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना-कुछ समय तक ही चलता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आयी सेना में मुगलों ने एक बार फिर अपने को संगठित किया और बल जमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से पराजित हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इस शब्दों में आँका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से जुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जयपराय को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अब्दुल बाकी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ १६७ से १८७ तक।
—डा आर पी त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

था और उसको घर लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर शिकार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर मालवमय की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया । बसी कुसी खाँ ने जो गोरखपुर बसा गया था एक बार पुन दया की भीख माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । १ माघ १५७६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उसके मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । लेकिन १५८७ ई में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह १ जून १५८७ ई को फतेपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला ।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा सियाह से लेकर कुहसान नदी के पाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोषाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था । लेकिन अफगान सरदार ने उसके विद्रोह के काल में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई । तत्पश्चात् उसके मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया । सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । उसने मुगल सम्राट के अपने नाम में सिक्के ढलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया । इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लूट रहे । १५७२ ई० में सुलेमान ने अंतिम साँस ली और उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ । लेकिन अपनी अदूरदर्शिता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ १०८ ।

अपने छोटे भाई हेमू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[1] बमाजीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। युद्ध में युद्ध संधा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में बड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना किन्तु पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर बीमार, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और ये मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में *इकट्ठा में एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा।* हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असम्भव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में आंशिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया, पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक सन्धि सम्पन्न करा ली लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चला रहा। अक्टूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधी सेना में मुगलों ने एक बार फिर अपने को संगठित किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से खुदैद में मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जमशाद को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला कालापहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदायूनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ १६७ से १८७ तक।

२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

पीछा किया और उसे पकड़ लिया। खान-ए-जहान बाऊजूद सदृश सुन्दर व्यक्ति के प्राण लेने के लिए इच्छुक नहीं था लेकिन बमीरों ने उसके सिर को काटकर, सम्राट के पास भेज दिया व कृतज्ञता दिखाई। उसके साथ साथ बंगाल की स्वतंत्र 'बादशाहत' भी समाप्त हो गई।" यह केवल बंगाल के स्वतंत्र शासन का ही अन्त नहीं था वरन् अफगानों व मुगलों के संघर्ष का भी अन्त था। १५५६ ई० व १५७६ ई० तक की २० वर्ष की अवधि में अकबर को आए दिन अफगानों के विरोध का सामना करना पड़ा।

सन् १५५६ ई० में हेमू की पराजय से और देश के विभिन्न कोनों में अफगानों के भाग जाने से ही अकबर की विजय निश्चित नहीं थी। पूरे बीस वर्ष तक उसे मुगल साम्राज्य को जीवित रखने और दृढ़ करने के लिए बारम्बार संघर्ष करने पड़े। अन्त में उसे एक-एक गढ़ों पर अधिकार करना पड़ा। असवर, रणथंभौर, मालियर, चुनार, रोहतास और कई अन्य (गढ़) कड़े और लम्बे युद्ध के बाद मुगलों के हाथ लगे। अदली और हेमू के दास के रूप में उल्लिखित अफगान शूरवीरों ने कड़े प्रतिरोध के बाद ही हार मानी। बिहार, उड़ीसा और बंगाल में उनके अन्तिम गढ़ का विनाश होने पर मुगलों को एक सांकेतिक विजय प्राप्त हुई। मुगल साम्राज्य की नींव स्थिर हो गई और सम्राट धन-मान-मर्यादा की अवधि में व विस्तार के तथा मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के युग में प्रविष्ट होने के लिए स्वतंत्र था। हेमू और उसके संगठन व सेना-नायक घटनास्थल से पूर्णत अदृश्य हो गये थे। जो जीवित रहे उन्होंने नए शासन से समझौता कर लिया और मुगलों से पद सम्मान और कृपा स्वीकार कर ली।

अध्याय—१०

अफ़गानों और दूसरों से मुग़लों का राज़ीनामा

अकबर प्रारम्भ से ही समझौते की भावना से ओतप्रोत था और वह उसके शासन काल के प्रारंभिक वर्षों से ही प्रकट होने लग गई थी। यह कहा गया है कि १५६१ ई० में ही उसने साधुओं और फ़कीरों की सगति करना प्रारंभ कर दिया था। मुग़ल सम्राट के चरित्र के इस स्वरूप से संबंधित सर्व प्रथम कथा आने वाली पीढ़ियों को सत श्रीहित हरिवंश के निष्ठावान् शिष्यों राधावल्लभी संत से हस्तगत हुई। राधावल्लभी सम्प्रदाय के कवि संत और संस्थापक श्रीहित अकबर के समकालीन थे। उनका जन्म संवत १५५९ में हुआ और वह १६५९ वि० संवत्[1] तक जीवित रहे। अकबर के राज्याभिषेक के समय वह पूर्ण यौवन पर थे और उनका संप्रदाय मथुरा-वृन्दावन में कीर्ति सम्पन्न था। उनके शिष्यों में से दो दूसरे जाति के थे जिनमें से एक ने अकबर को अपने आध्यात्मिक बल के चमत्कार दिखाये थे जैसा कि नागरीदास द्वारा रचित निम्नलिखित चौपाइयों से प्रकट हो जायगा।

नवल दास की कथा

अब श्रीहित हरिवंश के शिष्य नवल ह्वै आन॥
दूसर कुल पावन कियो, तिनकी करौं बखान॥ १॥

१—डा आर पी त्रिपाठी मुग़ल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २२९।
"वर्ष १५६१ ई० में ही वह साधारण मनुष्यों साधुओं और फ़कीरों के बीच आगरा की गलियों में बेरा बदलकर घूमा करता था। १५६२ ई० में अपनी ही इच्छा से उसने राजपूतों से विधिवत् वैवाहिक संबंध करने का महत्वपूर्ण पग उठाया ……। सम्भवत उस समय वह अफ़गानों और अपने दरबार के अविश्वासी कुलीनों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए राजपूतों से घनिष्ठतम संबंध स्थापित करने का इच्छुक था ……।"

१५६३ ई०में उसने मथुरा में यात्री-कर समाप्त कर दिया और १५६४ ई० में जजिया समाप्त कर दिया।

२—कविता कौमुदी—भाग १-पृ २२१ १९२१ संस्करण १५०२ ई० में जन्म और १६०२ ई० तक जीवित। विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार भी उसकी सम्भावित १५१९ वि० संवत् है—राधावल्लभी सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य २०१४ वि० संवत्।

रंवारी (रिवाड़ी) मधि घर है तिनको कथा कीरतन में मन तिनको ॥ २ ॥
साधुन की सेवा सुठि करैं, महा मत्त सबको मन हरैं ॥ ३ ॥
सत संमति वृन्दावन आए, श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत दीस (दिवस) सौं सेवा कीनी गुरु ने शिष्य परीक्षा लीनी ॥ ५ ॥
तब निज मन्त्र सुनायो ताकौ धर्म अनन्य बतायो ताकौ ॥ ६ ॥
महाविरक्त सुमत रस भीनौं तथा स्वाम संतोष न हीनौं ॥ ७ ॥
श्री राधा वल्लभ के गुन गावैं रसिक जनन के चित्त सुहावैं ॥ ८ ॥
बाहिर भीतर प्रभु को देखैं हानि लाभ सुख दुःख समलेखैं ॥ ९ ॥
जहाँ तहाँ फिरे नवल को भाव गुरु हो पुनि गहिबे को चाव ॥ १० ॥
छपा भया के नहिं कोई अति अगाध हिये माहिं न कोई ॥ ११ ॥
गुरु हरि साधुनि सुतव सुभाव कृपा सकास भजन चित आई ॥ १२ ॥
और सुनौ कौतुक एक नीकौ परयौ भयो नवल बल जी को[1] ॥ १३ ॥

ऐसा था श्रीहित हरिवंश का शिष्य जिसने अकबर के रोष से हेमू की मृत्यु-पर्यन्त दूसर जाति को बचाया। हेमू की जाति के होने के कारण दूसरों को सताने वाली नीति को छोड़ देने के लिए अकबर को सफलता पूर्वक प्रेरित करने वाले यही थे। मुगल सम्राट ने बन्दी बनाये गये रिवाड़ी के सब दूसरों को उन्हीं के कहने से मुक्त कर दिया और महिपाल के पुत्र चौधरी माधवसेन को सारसौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।[2] इस उदार अनुदान से संबंधित कथा जिस (अनुदान) के नाम वर्तमान शताब्दी के आरंभ काल तक पटियाला के सिख राज्य (अब पूर्वी पंजाब में विलीन) के अधीनस्थ कलौंदिया दूसरों द्वारा उठाए गए हैं अनन्य रसिकमाल के लेखक द्वारा इन दोहों में उल्लिखित हैं।[3]

हुमायूँ साह[4] जब यह गिर मरो हेमू राज बन्धन दिन करी ॥ १४ ॥
बहुरि अकबर को भयो राज हेमू मार्‌यो बैठ्यो गाज ॥ १५ ॥

१—भगवत मुदित रसिक अनन्य माल ना प्र० सभा काशी के पुस्तकालय से प्रतिलिपि १९८९ सम्वत्।
स्वामी नवलदास को बंगालवासी में जगन्नाथ का पुत्र उल्लिखित किया गया है। वह नवलकिशोर के नाम से प्रसिद्ध हुए।
२—देखिए-अध्याय १। पृ सं १२ से १४
३—भगवत मुदित अथ रसिक अनन्य माल प्रकरण नवलदास की कथा पृ सं ४५ ४७ हस्तलिखित प्रति मायाशंकर याज्ञिक संग्रह नागरी प्रचारिणी-सभा-संग्रह बारहवीं।
४—यही दूसरी हस्तलिखित प्रति में "शेरशाह" लिखा है जो त्रुटिपूर्ण है क्योंकि शेरशाह की मृत्यु गढ़ से गिरकर नहीं हुई थी। व हेमू ने हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् राज्य किया था न कि शेरशाह के पश्चात्। इसी प्रकार 'अकबर को भयो सिमाऊ' लिखा है, यह भी त्रुटिपूर्ण है।

सिंहासनारूढ़ होते ही अकबर ने आज्ञा दी कि सब दूसरों को बंदी बना लिया जाय—

"साह कही बनियन को मारहु मारो सबन जहाँ लगि पावहु ॥ १६ ॥
अहदी[1] गए पकड़ि सब लाए, आन भरोपे तर दिखाए ॥ १७ ॥

मुगल सैनिक गए और बिना कुछ सोचे विचारे सबको बंदी बना लाये और उनको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया—

तब उजीर से बिनती कीनी चूक सब दूसर सिरदीनी ॥ १८ ॥
बधिक छोड़ सब दूसर ही पकड़े ढूढ़ ढूँढ़ बड़िन में अकड़े ॥ १९ ॥

लेकिन बजीर ने बतलाया कि सब दूसरों का नहीं पकड़ा जाना था बल्कि केवल हेमू की जाति से संबंधित दूसरों का ही बंदी बनाना था।

हेमू कुल पकड़न को पाए, सोय सात दिवाड़ी से लाए ॥ २० ॥
बंदी किये बहुत भात दिखाए दूरे छिपे तिनहूँ बताए ॥ २१ ॥

सैनिकों ने परिवर्तित आज्ञा का पालन किया और केवल दिवाड़ी से हेमू जाति के लगभग २०० दूसरों को पकड़ लिया। उनको बंदी बनाया गया और डरा-धमकाया गया जिससे और बहुत सों का भी पता चल गया जो भाग गए थे तथा छिप हुए थे। यह दमन इतना व्यापक था कि दिवाड़ी और दिल्ली में या उसके आस पास कोई एक दूसर भी नहीं मिल सकता था। उस समय सम्राट को यह सूचना मिली कि केवल एक दूसर साधु रह गया था जो वृन्दावन में एकांतमय जीवन-यापनकर रहा था आगरा लौटने पर आकर कहा—

दूसर दो सब कोई नाहीं एक रहो वृन्दावन माहीं ॥ २२ ॥
तब वृन्दावन अहदी[1] आये नवलदास को ले पहुचाए ॥ २३ ॥

जब संत नवलदास को अकबर के सामने लाया गया तो उसने उनसे उनकी जाति और पूर्वजों के बारे में पूछा। इस पर उन्होंने उत्तर दिया —

"उनकी कोई जाति नहीं थी और हरिभक्तों की अपनी निजी पूर्व चार पीढ़ियों की जिसके अन्तर्गत वह अपनी जाति का कोई भेद शेष नहीं रह गया था। यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है —

"बादशाह ने पूछी बात कहिरे नवल अपनी जात ॥ २४ ॥
नवल कही जिन पैदा किय सब उन हम अपने करि लिये ॥ २५ ॥

१—जेन्टलमैन अश्वारोही (Gentleman Troopers) डॉ० शर्मा मुगल शासन का उदय पृ १४१ मुगल सम्राट के अधीन एक सेना के नायकत्व में जेन्टलमैन अश्वारोहियों का एक दल होता था।

रेवारी (रिवाड़ी) पति पर हू तिनको कथा कीरतन मे मन तिनकी ॥ २ ॥
साधुन की सेवा मुठि करै, महा मत्त सबको मन हरै ॥ ३ ॥
सत संगति वृन्दावन आए, श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत दौस (दिवस) लौ सेवा कीनी गुरु में शिष्य परीक्षा लीनी ॥ ५ ॥
तब निज मन्त्र सुनायौ आको धर्म अनन्य बतायौ ताको ॥ ६ ॥
महाविरक्त भूषन रस भीनौं अधा राम संतोष न हीनौं ॥ ७ ॥
श्री राधा अस्सम के गुन गावें रसिक अनन्नि के चित्त सुहावें ॥ ८ ॥
बाहिर भीतर प्रभु को देखें, हानि लाभ सुख दुख समलेखें ॥ ९ ॥
जहां तहां फिरै नवधा को भाव गुरु हो गुरु पहिवे को चाव ॥ १० ॥
छपा पथा के नहि कोई अति अगाध छिवे नहं न कोई ॥ ११ ॥
गुरु हरि साधुनि सुखद सुधाम्य, वृथा नकाल मजन बिन जाई ॥ १२ ॥
और सुनौ कौतुक एक नीकौ परचे भयो नवल अन की को[1] ॥ १३ ॥

ऐसा था श्रीहरि हरिवंश का शिष्य जिसने अकबर के रोष से हेमू की मृत्यु-पर्यन्त दूसर जाति को बचाया। हेमू की जाति के होने के कारण दूसरों को सताने वाली नीति को छोड़ देने के लिए अकबर को सफलता पूर्वक कुछ समझाने वाला वही थे। मुगल सम्राट ने बन्दी बनाये गये रिवाड़ी के सब दूसरों को उन्हीं के कहने से मुक्त कर दिया और महिपाल के पुत्र चौधरी नाथमल को मारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।[2] इस उदार अनुदान से संबंधित कथा जिस (अनुदान) के साथ वर्तमान शताब्दी के आरंभ काल तक पटियाला के सिख राज्य (अब पूर्वी पंजाब में विलीन) के अधीनस्थ कमौदिया दूसरों द्वारा उठाए गए है अनन्य रसिकमाल के लेखक द्वारा इन दोहों में उल्लिखित है।[3]

हुमायूं शाह[4] जब मर गिर मरो हेमू राज कछुक दिन करी ॥ १४ ॥
बहुरि अकबर को भयो राज हेमू मार्यो बैठ्यो गाज ॥ १५ ॥

१—अनवन मुदित रसिक अनन्य माल ना प्र० सभा काशी के पुस्तकालय से प्रतिलिपि १७८९ सम्वत्।
स्वामी नवलदास को बेलावली में अगस्त्य का पुत्र उल्लिखित किया गया है। वह नवलकिशोर के नाम से प्रसिद्ध हुए।
२—देखिए-अध्याय १। पृ सं १२ से १४
३—अनवन मुदित अथ रसिक अनन्य माल प्रकरण नवलदास की कथा पृ० सं ८६ ४७ हस्तलिखित प्रति मायाशंकर याज्ञिक संग्रह नागरी प्रचारिणी-सभा-संग्रह वाराणसी।
४—यही दूसरी हस्तलिखित प्रति में 'शेरशाह' लिखा है जो त्रुटिपूर्ण है क्योंकि शेरशाह की मृत्यु सन से गिरकर नहीं हुई थी। न हेमू ने हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् राज्य किया था न कि शेरशाह के पश्चात्। इसी प्रकार अकबर की जगह 'हिमाऊं' लिखा है वह भी त्रुटिपूर्ण है।

सिंहासनारूढ़ होते ही अकबर ने आज्ञा दी कि सब दूसरों को बंदी बना लिया जाय—

"साहु कहो बलियन को लावहु मारो सकल जहाँ लगि पावहु ॥ १६ ॥
अहदी[1] गए पकड़ि सब लाए, आन भरोपे तर दिखाए ॥ १७ ॥

मुगल सैनिक गए और बिना कुछ सोचे विचारे सबको बंदी बना लाये और उनको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया—

'तब उजीर ने बिनती कीनी चूक सबै दूसर सिरदीनी ॥ १८ ॥
बलिए छोड़ सब दूसर ही पकड़े ढूँढ़ ढूँढ़ बहिन में जकड़े ॥ १९ ॥

लेकिन बजीर ने बतलाया कि सब दूसरों को नहीं पकड़ा जाना था बल्कि केवल हेमू की जाति से सम्बन्धित दूसरों को ही बंदी बनाना था।

"हेमू कुल पकड़न को आए, सोध जात रिवाड़ी से लाए ॥ २० ॥
बंदी किये बहुत आन दिखाए दूरै छिपे तिनहीं बताए ॥ २१ ॥

सैनिकों ने परिवर्तित आज्ञा का पालन किया और केवल रिवाड़ी से हेमू जाति के लगभग २०० दूसरों को पकड़ लिया। उनको बंदी बनाया गया और डरवा-धमकाया गया जिससे और बहुत लोगों का भी पता चल गया जो भाग गए थे तथा छिप हुए थे। यह दमन इतना व्यापक था कि रिवाड़ी और दिल्ली में या उसके आस पास कोई एक दूसर भी नहीं मिल सकता था। इस समय सम्राट को यह सूचना मिली कि केवल एक दूसर शेष रह गया था जो वृन्दावन में तपोमय जीवन-यापनकर रहा था। शाही दूतों ने आकर कहा—

दूसर तो सब कोई माही, एक रहो वृन्दावन माही ॥ २२ ॥
तब वृन्दावन महदी[2] आये नवलदास की मे पहुचाए ॥ २३ ॥

जब संत नवलदास को अकबर के सामने लाया गया तो उसने उनसे उनकी जाति और पूर्वधारणायें पूछी। इस पर उन्होंने उत्तर दिया —

'उनकी कोई जाति नहीं थी और हरिभक्ति की अपनी निजी पूर्व धारणायें थीं जिसके अन्तर्गत वर्ण अथवा जाति का कोई भेद भेद नहीं रह गया था। यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है —

"साहसाहु ने पूछी बात कहिए नवल अपनी जात ॥ २४ ॥
नवल कही जिन पैदा किय सब उन हम अपन करि लिये ॥ २५ ॥

१—मुगल अश्वारोही (Gentleman Troopers) डी० शर्मा मुगल शासन के राज्य पृ १४५ मुगल सम्राट के अधीन एक सरकारी के नायकत्व में मुगल अश्वारोहियों का एक दल होता था।

जाति न कोई भये अतीत, हरि भक्तन की औरहि रीति ॥ २६ ॥
साह कही बाँधू मत तोही, न्यारी रीत दिखावत मोहि ॥ २७ ॥

संत के ढीठ और उदासीन उत्तरों से मुगल सम्राट उत्तेजित हो उठा और उसको कारागार में डाल दिया। उसके तत्पश्चात् वह घटना घटी जिससे अकबर सबसे अधिक प्रभावित हुआ। नवलदास कारागार में भी प्रार्थनाएँ करते रहे और कठिनाइयों व यातनाओं के होते हुए भी अपने 'श्याम के गुण' गाते रहे तथा उन्होंने कारागार-गृह से बच निकलने एवं सशरीर वृन्दावन में भक्तों के बीच पहुँचने का चमत्कार दिखाया। जब अकबर को इसकी सूचना मिली तो वह बहुत पछताया और उन्हें एक बार फिर बुलवा भेजा। इस बार क्लेश देने के लिए नहीं बल्कि सम्मानित करने के लिए। इस घटना का वर्णन कवि द्वारा इन पंक्तियों में किया गया है—

साखी नवलकृत

जो कोई करै अलगीरन में तो छोड़ों सत सास।
प्रभु तन्नु अटकयौं नवल मटकयौं तनक न आस ॥ २८ ॥"

चौपाई—साह न समझी नवल कू कह्यो अर्थ गंभीर कहे तो नहीं ॥२९॥
सुनत साह अलगीर मंगाई पग अरु हाथ बुद्दी में माई ॥३०॥
बाँधि अलगीर दियो बंदसाला, मारि कपाट लगायो तारा ॥३१॥
छस मास अन्न जानि नहिं पाव छुटाई ही नवल स्याम गुण गावै ॥३२॥
गुण पर ध्यान चित लायो, देह सहित वृन्दावन आयो ॥३३॥
तीन दिना पाछ सुध लीनी सब अंजीर कोठे मधि दीन्ही ॥३४॥
फिरि के महली साहि बठायौ नवल बहुरि वृन्दावन पायौ ॥३५॥

जब नवलदास दूसरी बार अकबर के सामने आए, उनको बैठने को स्थान दिया गया और कोई प्रार्थना करने को कहा गया —

'करामात तुम प्रगट दिखाई ताते मो मन बड़ा डराई ॥३७॥
आज्ञा करौ सोई फरमान — — — — — ॥३८॥

इस पर नवलदास ने उत्तर दिया—

— — — दूसर क्यों रोके बिन जान ॥३९॥
जो कोई करै सोई करता पाप पुण्य तू इनको क्या समझाव ॥३९॥
जैसे उपदेस्यौं बहु ज्ञान दूसर सब दुइबाय अज्ञान ॥४०॥
अपने अपने धरनि पठाए तप से दूसर भगत कहावे ॥४१॥

"तुमको बिना उनका अपराध जाने दूसरों को बंदी क्या बना रखा है? या जैसा करना है वैसा ही फल पावगा। उनका अपना कर्म दोष न होने पर

तुम उनको दंड क्यों देते हो ? ऐसी मर्मस्पर्शी प्रार्थना से अकबर में सद्विचार जागृत कर दिए और उसने हरिवंश को मुक्त कर दिया तथा उनको उनके स्थानों पर पहुँचवा दिया। तब से हरिवंश राजभक्त हो गए और मुसलों द्वारा मित्र बना लिए गए। नवलदास का कुछ भी स्वीकार करने को मना कर देने से मुगल सम्राट इतना प्रभावित हुआ कि उसने महिपाल हरिवंश के पुत्र चौधरी माधवलाल के नाम में नारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।

कथा की सत्यता—

यही समय था जब कि राधावल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन में अपने शिखर पर था जब कि विद्वान और निष्ठावान् संत हित हरिवंश के निकट एकत्रित हुए थे। अकबर द्वारा नवलदास के प्रति दर्शायी गयी उदारता से संबंधित उपर्युक्त कथा को राधावल्लभी संतों के बीच बहुत बड़ा विश्वास प्राप्त हुआ और सम्प्रति के लिए भगवतमुदित द्वारा रसिक अनन्यमाल द्वारा सुरक्षित किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी के पुस्तकालय में रसिक अनन्यमाल की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।[1] हस्तलेखों में से एक पर तो वर्ष १८३७ वि० संवत् (अर्थात् १७८० ई०) अंकित है और दूसरे पर वर्ष १८१७ वि० सं० (अर्थात् १७६० ई०) प्रथम तो सभा का मौलिक संग्रह है, जब कि दूसरी श्री माया शंकर याज्ञिक के संग्रह में से लिया गया है। उन पर निम्नांकित हस्तलिखित अंतिम वाक्य अंकित है, जो उनकी सत्यता और प्राचीनता की और पुष्टि करते हैं—

(१) "इति श्री रसिक माल भगवत मुदित कृत समाप्तं सम्पूर्णम्। अनन्य पुस्तक लिखितं। श्री वृन्दावन धाम। श्री जमुना तट संवत् १८३७ मिती चैत सुदी २ भंगलवार। श्री हरिहर प्रियादास पठनार्थ नवनीत लाल। श्री' (हस्तलेख)

(२) 'संवत् १८१७ वर्षे मासानां आश्विन मासे शुक्लपक्षे पूर्णमिषी

१—भगवतमुदित—

रसिक अनन्यमाल (हस्तलेख) काशी-नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय की प्रति से उद्धृत। अन्तिम पृ०—१२७-१२८ यह भी देखिए विजेन्द्र स्नातक "राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' (हिन्दी में) वि० संवत २०१४ (१९५७ ई०)।

द्वितीया मास्य मुखा से लिख्यतहि इहं स्वामी बालकदास समीपे भी गुरु प्रसाद छूपरसी लिख्यते ।"[1]

हस्तलिखित प्रति से यह स्पष्ट है कि नवलदास हित हरिवंश के शिष्य उस समय जीवित थे जब कि वृन्दावन रासावल्लभी सम्प्रदाय की क्रियाओं से गुंजार रहा था। सम्प्रदाय के संस्थापक की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर के लोग मथुरा में एकत्रित होने लगे। हित-हरिवंश के शिष्यों में से कुछ ने सुदूर स्थानों की यात्रा की और लोगों को अपनी विचारधारा में परिवर्तित किया। नवलदास को ओड़छा भेजा गया जहाँ उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर हरी राम व्यास ने उनका पदानुसरण किया और वे वृन्दावन आ कर बस गये।[2] उनकी धार्मिक कविताएं एवं रचनाएं भी उपलब्ध हैं। नवलदास के अतिरिक्त हेमू के पिता श्री पूरनदास का उल्लेख है जो स्वयं भी नवलदास के साथ-साथ वृन्दावन आये थे। उनको ठट्टा (सिन्ध) जाने को कहा गया और वे एक प्रमुख मनसबदार श्री परमानन्द को अपनी विचारधारा में परिवर्तित करने में सफल हुए।[3] उसने अपने मनसबदारी अधिकार त्याग दिये और वह मथुरा पहुँचने पर हित हरिवंश का शिष्य बन गया। इस प्रकार श्री पूरनदास को प्रेम सन्देश का प्रचार करने का अवसर मिला और उन्होंने सिन्ध में एक दूरस्थ स्थान के लिए सफलतापूर्वक एक सद्भावनापूर्ण यात्रा की।

हस्तलेखा में अनेक संतों के वर्णनात्मक रेखाचित्र हैं – जैसे हित हरिवंश, हरीराम व्यास सुन्दरदास श्री पूरनदास और नवलदास। इन संतों के विस्तृत वर्णन से इस सम्प्रदाय के निष्ठावान संतों के प्रभाव के विस्तार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कोई आश्चर्य नहीं यदि अकबर का रासावल्लभी कवि और संतों में श्रद्धा हो गई हो। मथुरा और वृन्दावन की की गई उसकी घुमी और गुप्त यात्राओं के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं। उसकी कृपालुता नीति के कारण इस क्षेत्र में शान्तिपूर्ण भक्तिभावयुक्त कार्य होते रहे। मन्दिरों के निर्माण के विषय में भी विवरण उपलब्ध हैं जिनसे प्रकट होता है कि अकबर के समय में

१—भगवत मुदित रसिक अनन्यमाल माधवसंकर मालिक की प्रति से उद्धृत (नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित)।

२—वही प्रकरण हितचरित्र—व्यास जू की प्रसंग १४ ५४ प्र० सं० १२ १८।

३—वही प्रकरण हितचरित्र हरिवंश का वृन्दावन आगमन—पृ सं ४ ५। तथा रसिक अनन्यमाल—प्रकरण—परमानन्द की परिपाटी—१३ से पृ० सं ५२ ५४।

यह सम्प्रदाय चमत्कार पर था। १५८५ ई में ही वृन्दावन में एक मन्दिर का निर्माण हुआ जो राधा को समर्पित कर दिया गया।[१ २ ३]

हेमू के वंशज—

हेमू के करीब महिपाल के वंशजों में से चौधरी नाथमल को जागीर प्रदान करने वाला मूल फ़रमान उपलब्ध है। इससे बिना किसी शंका के यह सिद्ध होता है कि हमायुं-हृदय मुग़ल सम्राट ने दूसरा से पूर्णतः राज़ीनामा कर लिया था। फ़रमान स्थाई रूप से प्रदान किया गया था। चौधरी नाथमल या उसके वंशजों के लिए वर्ष प्रति वर्ष उसका नवीकरण आवश्यक न था। यह भी सत्य है कि पिछले मुग़ल सम्राटों द्वारा १९ वीं शताब्दी तक इस फ़रमान का मान किया गया था और पटियाला राज्य का सिख शासक तक जिसके अधिकार-क्षेत्र में यह जागीर आई कुछ वर्षों तक उसका मान करता रहा। अनुदान राशि को धीरे-धीरे घटाकर, राज्य न कनौडिया दूसरों को यह अनुदान बंद कर दिया। पटियाला राज्य के नारनौल इलाका म डोसी पहाड़ी में जातीय मंदिर और अन्य इमारतों को राज्य-कोष म सहायता अनुदान प्राप्त होते रहे थे।[४] नाथमल को जागीर मिलने के पश्चात् कई अन्य दूसरों को मथुरा बुलन्दशहर गुड़गाँव और दूसरी सरकारों में परगनों की कानूनगोई प्राप्त हुई। इसके उपरान्त कुछ दूसरों मुग़ल सम्राट के अधीन उच्च पदों पर पहुंच गए।

१—उसने वहाँ एक मन्दिर भी बनवाया जो अब भी स्थिर है—और द्वार पर अंकित लेख म यह प्रकट होता है कि यह संवत् १६४१ या १५८५ ई में हरिवंश द्वारा श्री राधाबल्लभ को समर्पित कर दिया गया था।

२—'राधाबल्लभा का 'श्री राधा बल्लभ' के नाम से वृन्दावन में कृष्ण को समर्पित एक मन्दिर है, जिसका निर्माण सम्प्रदाय के संस्थापक तथा सहारनपुर जिले में देवबंद के निवासी हरिवंश द्वारा वर्ष १५८५ ई० में कराया गया कहा जाता है। दीवारों पर बड़ेपन से लिखित कई लेख हैं लेकिन इस समय दर्शनीय सबसे प्राचीन लेख पर संवत् १६८४ (१५२७ ई०) की तिथि अंकित है—मथुरा-पृ० १२ १२९।

३—'इन का पत्नियां मे उसके दो पुत्र थे—बृज चन्द्र और कृष्ण चन्द। जिनमें से दूसरे ने राधामोहन का मन्दिर बनवाया जो अब भी उसके वंशजों के अधिकार में है। बृजचन्द्र सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिर राधाबल्लभ का मंन्दिर के वर्तमान गोसाइयों का पूर्वज था। मन्दिर के स्तम्भों म से एक पर लेख है जिस पर तिथि १६८३ संवत् (१५२६ ई) अंकित है।

४—डोसी में स्थित मंदिर और इमारतों के पोषण के लिए जो भार्गव सभा के प्रबंध में है कानौड़ में कानूनगोई और नानकार अधिकारों के स्थान पर अनुदानों को प्रदान करने तथा लौटाने के लिए मुख्य मंत्री दीवान बहादुर सर पण्डित दया किशन कौल को भेजा गया धर्म मित्र भार्गव का प्रार्थना-पत्र देखें—दिनांक ८ जनवरी १९२४ ई। देखिए परिशिष्ट—क

इनमें से राव सुजानसिंह पर्याप्त प्रसिद्ध हुए। वह कुतुबपुर के निवासी थे और १८ वीं शताब्दी में वह मथुरा और कासगंज (अलीगढ़) में एक उच्च पदाधिकारी के रूप में रहे। इनके वंशज अब भी अलीगढ़ में रहते हैं।

इस प्रकार हेमू के शक्तिशाली नेतृत्व में दूसरे एक व्यवसायी जाति ने भारत के शिखर पर पहुँचने और उन्होंने उसके परिणाम भी भोगे। व्यापारिक प्रवीणता व सैनिक भावना के इन दो पूर्णतः विपरीत भावों का सम्मिश्रण आज भी हेमू की जाति में स्पष्ट है। यद्यपि संख्या में जाति कभी बड़ी नहीं रही है[1] इसकी पृथकता और संकीर्णता ने अन्य जातियों से—यहाँ तक कि गुजरात और दक्षिण के भागों तक से उसके सम्मिश्रण को परिमित बना दिया था। कुछ सहस्र की संख्या वाली जाति की ऐसी संकीर्ण परिधि के साथ और हानि सारे देश में फैल जाने के कारण और अधिक हो गए हैं। विवरण के लिए अधिकतर नागरिक क्षेत्र इसके पर्याप्त साक्षी हैं। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान दूसरों ने वीर राजनीतिज्ञ हेमू के साथ विशेषता कथाएँ और वृत्तान्त पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रखी हैं। मुगल सम्राट द्वारा किये गये राजीनामे ने इनको एक नया जीवन दान दिया था। ऐसी छोटी जाति का क्लेश रहित संताप के कारण सर्व नाश हो जाना बहुत कठिन न होता।

अकबर ने दूसरों से राजीनामा किया उनकी राजभक्ति प्राप्त की और अपने द्वारा धीरे-धीरे निर्मित नई कुलीनता सामन्तशाही में अफगानों को सम्मिलित कर लिया। २० वर्ष की अवधि में जैसा कि पहले के एक अध्याय में उल्लिखित है अकबर ने चित्तौड़ गुजरात ग्वालियर कालपी चुनार, रोहतास झारीपुर पटना बंगाल और उड़ीसा में अफगान योद्धाओं को सफलतापूर्वक दास बनाया। उनकी जागीरों का बृहत जाल उनके गढ़ और छिपने के स्थानों पर निष्ठुरतापूर्वक अधिकार कर लिया गया और एक एक करके अफगानों ने या तो अकबर की कृपा प्राप्त की या युद्ध करके परास्त हो गए। जब २० वर्ष पश्चात उसके प्रभावशाली शत्रु दूसर और अफगानों ने उसके राज्य से पूर्णतः राजीनामा कर लिया तब अकबर के राज्य की प्रथम अवस्था समाप्त हो गई और मुगल साम्राज्य दृढ़ हो गया।

१—विभिन्न जनगणना की रिपोर्टों के अनुसार जाति की संख्या यह रही है—

१९०० ई०	१०१७ पुरुष	२८६६ स्त्रियाँ	=३८८०
१ १२ ई	१८८१	२४४१	=३३१०
१९११ ई	१७६५ ,,	३११७ ,	=४९४२

उपसंहार

हेमू का उत्थान उल्कावत था। वह विद्युत की भाँति चमका और प्रकाश मान हुआ। उसके यश और कीर्ति ने उसके समकालीनों की आँखें चौंधिया दी। वह कुछ काल तक काले बादलों में रजत-रेखा सा चमका लेकिन राजनैतिक क्षेत्र के दृश्य से उसका ग्रहण भी उतना ही अचानक और अप्रत्याशित हुआ।

जन्म से ही एक असाधारण व्यक्ति जिसमें भाग्य अथवा शिक्षा से कोई राजसी अभिमान न था हेमू एक सेनापति शूरवीर, विजेता दिग्विजेता एवं एक प्रमुख सेनानायक बन गया। उसकी चतुराई भरी चालें उसके आक्रमण का ढंग और उसकी संगठनात्मक दक्षता ने उसके शत्रुओं का स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी अदली द्वारा, राजा विक्रमादित्य की उपाधि से सम्मानित किए जाने पर वह दिल्ली का राजा बल्कि यूं समझिए कि मध्यकालीन भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट बन गया।

एक धर्मात्मा पिता का पुत्र होने के कारण जो कृष्णभक्त में थी हित बंधु के शिष्य के रूप में श्याम और हरी के प्रेम और पूजा में रत थे हेमू ने विश्व बन्धुत्व की सभी भावनाओं और विशाल-हृदयता को ग्रहण कर लिया। संस्था में अल्प और अलवर, रिवाड़ी और नारनौल स्थानों के निवासी दूसरे भागवों की जाति का होते हुए, उसने राजपूतों और अफगानों का सच्चा और स्वामी सहयोग प्राप्त किया। अपने सुदृढ़ शारीरिक गठन विनीत व्यक्तित्व अदली जैसे स्वामी के प्रति अनन्य राजभक्ति न होने पर भी उसकी वाणी आत्मविश्वासपूर्ण थी और वह युद्ध के बीच में उल्लासपूर्वक चिल्लाता था। वह अपने संगी साथियों पर काबू पाने में सक्षम रहा उसने सेनानियों की राजभक्ति प्राप्त की और अपने भीषणतम शत्रुओं पर विजय पाई। चाहे रणभूमि हो या प्रीति भोज का भवन वह सदैव कोलाहल पूर्ण था और जो उपस्थित होते थे उनको पराक्रम और शूरवीरता के शिखर पर पहुँचानेके लिएउत्तेजित किया करता था।

हेमू प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न था। उसका बहुत ही अल्प समय में प्रधान-मंत्रित्व प्राप्त कर सेन और भारत की तत्कालीन राजधानी दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होने की कल्पना इतिहास में अद्वितीय है। उसने इस्लाम शाह के अधीन सरकारी नौकरी पाई, और सन् १५५३ ई में मुबारिज खां अर्थात् अदली के सिंहासनारूढ़ होने पर उसने प्रधान-मंत्रित्व केवल योग्यता के बल पर प्राप्त किया। उत्तरी भारत में तीन वर्ष की अवधि तक सब मामलों की बागडोर सँभालकर वह आगे-आगे रहा। इतने कम समय में उसने २२ युद्धों का विजेता होने दिल्ली को जीतने तथा अन्तत पानीपत में शहीद होने का यश प्राप्त किया। उसके विपक्षी वृत्तान्तकारों द्वारा छोड़े गए वर्णनों से उसके साहस और बुद्धिमानी और प्रत्येक पग पर निर्विवाद सफलता का प्रमाण

मिलता है। एक सेनानायक के लिए यह वस्तुतः एक गौरवमय सेवा है विशेष कर उसके लिए जो पेशे या जन्म से नहीं बल्कि समय की आवश्यकताओं द्वारा एक योद्धा बन गया।

हेमू की युद्ध की तैयारियां और आवश्यकता से अधिक सावधानी से किए गए विवरण पाठकवृन्द को आज भी आश्चर्यान्वित कर देते हैं। पर्वत सदृश १२०० युद्ध-मत्तों को एकत्रित करने में उसकी प्रमुख सफलता निहित थी। उनको खिलाना-पिलाना—और वह भी चावल मक्खन और शक्कर का भोजन—विशेषतः जब कि भारत के कुछ भागों में अकाल और महामारी का जोर था—बहुत ही विस्मयकारी कार्य था—यही नहीं युद्ध भी लड़े जाने थे शान्ति पुनः स्थापित की जाने वाली थी और दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी किया जाना था। युद्ध की सर्वांगीण तैयारियों के बिना यह सब संभव नहीं था। युद्ध की गतिविधि की कला में हेमू अपने देशवासियों को अतिक्रमित कर गया था। १२० हाथियों और हजारों घोड़ों सहित एक टिड्डीदल के समान सेना को पूर्णतः सुव्यवस्थित रखकर वह एक प्रकार का चमत्कार दिखा रहा था। सब लेखकों ने उसकी युद्ध की तैयारियों की प्रशंसा की है, और उसके द्वारा प्राप्त की गई सफलता अस्त्रों युद्ध सामग्री सैनिकों हाथियों तथा अनन्त एवं अथाह खजानों के अतुलनीय संग्रह को एकत्रित करने में निहित थी।

हेमू अध्यवसायी और अश्रिचित था। यद्यपि उसे अधिक घुड़सवारी नहीं आती थी यह कहा जाता है कि वह हाथियों के हौदों में आराम रहने का आदी हो गया था। कल्पना कीजिए एक आदमी की जो एक रणभूमि से दूसरी रणभूमि को कभी अजमेर में तो कभी अलवरपुर टांडा में ग्वालियर से चुनार तथा कालपी को कालपी से आगरा को कभी पीछे को कभी आगे को घूम रहा हो। यदि कोई उस समय का अनुपात निकालने का यत्न करे तो उसने तीन वर्ष की अल्प अवधि में १६ वीं शताब्दी के भारत में विभिन्न स्थानों में यात्रा की होगी जो बहुत आश्चर्यजनक है। कहा जाता है कि उसके युद्ध के हाथी इतने द्रुतगामी थे कि घोड़े भी उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। संभव है वे विस्मयकारी अथवा द्रुत गति के आदर्श रहे होंगे नहीं तो ३ वर्ष उससे भी कम की संक्षिप्त अवधि में कोई भी सेना-नायक इतने युद्ध नहीं लड़ सकता था और विपक्षियों के विरुद्ध उत्तर में पूर्व में तथा पश्चिम में भी अपने को स्थिर नहीं रख सकता था।

हेमू दूरदर्शी था। वह जानता था कि शान्ति तभी स्थापित की जा सकती थी जब कि अड़ियल विरोधी अथवा विद्रोही अफगान कुलीनों को अवरुद्ध किया जा सके। उसने उन्हें सीधा दिखाने उन्हें शिकार बनाने तथा बंगाल की सीमाओं तक

उनका पीछा करने में संकोच नहीं किया। उसने इब्राहीम को उसके गढ़ों से निकाल बाहर किया और परिणामतः दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए मार्ग साफ कर लिया। उसने सिकन्दर सूर से, जो मुगलों से युद्ध करने में लगा था अपना संघर्ष बचाया। जब हुमायूं दिल्ली में अपना शासन पुनः स्थापित करने में सफल हुआ हेमू ने उतावलेपन में कोई कार्यवाही नहीं की। उसने अवसर की प्रतीक्षा की। हुमायूं की मृत्यु ने वह अवसर प्रदान किया। उसने उसे ग्रहण किया और इतनी शक्तिशाली सेना एकत्रित की कि दिल्ली में उसके सामने से मुगलों को भागना पड़ा। विजय के समय भी उसने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। संकटपूर्ण पीछा करने से वह दूर ही रहता था और बिना अपनी स्थिति को दृढ़ किए वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ता था। यह दूर दर्शिता उसकी सफलता की कुंजी थी।

हेमू प्रमुखतः १६ वीं शताब्दी की देन था और उसको 'शताब्दी का सबसे अधिक विलक्षण व्यक्ति' ठीक ही कहकर पुकारा गया है। वह उस युग में रहा जो शूरवीरों राजनीतिज्ञों और प्रतिभावान व्यक्तियों से भरा था। एक ओर बाबर और शेरशाह तथा दूसरी ओर अकबर के कार्यों के शानदार एवं दर्पपूर्ण वर्णनों के कारण—हेमू की कीर्ति और सफलता छिप गई। उन सबमें हेमू के कार्यों की अवधि सबसे छोटी थी लेकिन अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के हेतु लिए गए समय में अनुपाततः हेमू सबसे आगे निकल जाता है। बाबर ने तीन प्रमुख युद्ध लड़े और समय के अभाव के कारण अधिक नहीं कर सका। उसने अपने पुत्र के लिए एक अस्थिर साम्राज्य छोड़ा। हुमायूं को सदैव संकट पूर्ण समय का सामना करना पड़ा। शेरशाह के जीवन-काल की हेमू के जीवन काल से उत्तम समानता है और ऐसा लगता है कि हेमू ने उसके पद चिन्हों का अनुसरण किया। लेकिन उस काल द्वारा निर्णय करने से जिसमें दोनों कीर्ति शिखर पर पहुँचे हेमू उससे कहीं अधिक उत्तम ठहरता है। हुमायूं के न रहने से शेरशाह का समय बड़ी सुगमता से बीत रहा था। लेकिन उसको राजा मालदेव और पूर्वोत्तर प्रदेश के विरुद्ध कड़ा युद्ध करना पड़ा और उसने कालिंजर में अपना अमूल्य जीवन खो दिया।

इसके विपरीत हेमू को बहुमुखी अराजकता का सामना करना पड़ा। अफगान सामन्तों में न तो कोई एकता थी और न एकमत। जब कि शेरशाह अफगानों की एक सम-सेना का नेतृत्व कर सका हेमू को एक विषम-सेना लेकर लड़ना पड़ा। शेरशाह के अपने सैनिक अफगानों से जातीय तथा धार्मिक खून के सम्बन्ध के बन्धन थे जबकि हेमू को जो न तो राजपूत था और न अफगान अपना मार्ग निर्धारित करने के लिए और उनकी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिए लड़ना पड़ा। उसको एक के बाद दूसरी विजय

मिलता है। एक सेनानायक के लिए यह वस्तुतः एक गौरवमय लेखा है विशेष कर उसके लिए जो पैदा या जन्म से नहीं बल्कि समय की आवश्यकताओं द्वारा एक योद्धा बन गया।

हेमू की युद्ध की तैयारियों और आवश्यकता से अधिक सावधानी से किए गए विवरण पाठकवृन्द को आज भी आश्चर्यान्वित कर देते हैं। पर्वत सदृश १२०० युद्ध-गजों को एकत्रित करने में उसकी प्रमुख सफलता निहित थी। उनको खिलाना पिलाना—और वह भी चावल मक्खन और शक्कर का भोजन—विशेषतः जब कि भारत के कुछ भागों में अकाल और महामारी का जोर था—बहुत ही विस्मयकारी कार्य था—यही नहीं युद्ध भी लड़े जाने थे शान्ति पुनः स्थापित की जाने वाली थी और दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी किया जाना था। युद्ध की सर्वाधीक तैयारियों के बिना यह सब संभव नहीं था। युद्ध की गतिविधि की कला में हेमू अपने समकालिकों को अतिक्रमित कर गया था। १५० हाथियों और हजारों घोड़ों सहित एक टिड्डीदल के समान सेना को पूर्णतः सुव्यवस्थित रखकर वह एक प्रकार का चमत्कार किया रहा था। सब लेखकों ने उसकी युद्ध की तैयारियों की प्रशंसा की है और उसके द्वारा प्राप्त की गई सफलता शस्त्रों युद्ध सामग्री सैनिकों हाथियों तथा अनन्त एवं अथाह खजानों के अनुमानीय समूह को एकत्रित करने में निहित थी।

हेमू कर्मव्यवसायी और अधिपिस था। यद्यपि उसे अधिक घुड़सवारी नहीं आती थी यह कहा जाता है कि वह हाथियों के हौदों में आराम रहने का आदी हो गया था। कल्पना कीजिए एक आदमी को जो एक रणभूमि से दूसरी रणभूमि को कभी अजमेर में तो कभी आगरा फतेहपुर टांडा में ग्वालियर से चुनार तथा कालपी को कालपी से आगरा को कभी पीछे को कभी आगे को घूम रहा हो। यदि कोई उस समय का अनुपात निकालने का यत्न करे तो उसने तीन वर्ष की अल्प अवधि में १६ वी शताब्दी के भारत में विभिन्न स्थानों में यात्रा की होगी जो बहुत आश्चर्यजनक है। कहा जाता है कि उसके युद्ध के हाथी इतने फुर्तीले थे कि घोड़े भी उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। संभव है वे विस्मयकारी अथवा द्रुत गति के आदी रहे होंगे नहीं तो ३ वर्ष *उससे भी कम की संक्षिप्त अवधि में कोई भी सेना-नायक इतने युद्ध नहीं लड़* सकता था और विपक्षियों के विरुद्ध उत्तर में पूर्व में तथा पश्चिम में भी अपने को स्थिर नहीं रख सकता था।

हेमू दूरदर्शी था। वह जानता था कि शान्ति तभी स्थापित की जा सकती थी जब कि अफ़ग़ान विरोधी अथवा विद्रोही अफ़गान मुखियों को अवरुद्ध किया जा सके। उसने उन्हें नीचा दिखाने उन्हें धिक्कार बताने तथा बंगाल की सीमाओं तक

उनका पीछा करने में संकोच नहीं किया। उसने इब्राहीम को उसके गढ़ों से निकाल बाहर किया और परिणामतः दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए मार्ग साफ कर लिया। उसने सिकन्दर सूर से, जो मुगलों से युद्ध करने में लगा था अपना संघर्ष बचाया। जब हुमायूं दिल्ली में अपना शासन पुनः स्थापित करने में सफल हुआ हेमू ने उतावलेपन में कोई कार्यवाही नहीं की। उसने अवसर की प्रतीक्षा की। हुमायूं की मृत्यु ने वह अवसर प्रदान किया। उसने उसे ग्रहण किया और इतनी शक्तिशाली सेना एकत्रित की कि दिल्ली में उसके सामने से मुगलों को भागना पड़ा। विजय के समय भी उसने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। सकटपूर्ण पीछा करने से वह दूर ही रहता था और बिना अपनी स्थिति का दृढ़ किए वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ता था। यह दूर दर्शिता उसकी सफलता की कुंजी थी।

हेमू प्रमुखतः १६ वीं शताब्दी की देन था और उसको 'शताब्दी का सबसे अधिक विलक्षण व्यक्ति' ठीक ही कहकर पुकारा गया है। वह उस युग में रहा जो शूरवीरों राजनीतिज्ञों और प्रतिभावान व्यक्तियों से भरा था। एक ओर बाबर और शेरशाह तथा दूसरी ओर अकबर के कार्यों के शानदार एवं दीर्घजीवी वर्णनों के कारण—हेमू की कीर्ति और सफलता छिप गई। उन सबमें हेमू के कार्यों का अवधि सबसे छोटी थी लेकिन अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए गए समय में अनुपाततः हेमू सबसे आगे निकल जाता है। बाबर ने तीन प्रमुख युद्ध लड़े और समय के अभाव के कारण अधिक नहीं कर सका। उसने अपने पुत्र के लिए एक अस्थिर साम्राज्य छोड़ा। हुमायूं को सदैव संकट पूर्ण समय का सामना करना पड़ा। शेरशाह का जीवन-काल की हेमू के जीवन काल से उत्तम समानता है और ऐसा जान पड़ता है कि हेमू ने उसके पद चिन्हों का अनुसरण किया। लेकिन उस काल द्वारा निर्णय करने से जिसमें दोनों कीर्ति शिखर पर पहुँचे हेमू उससे कहीं अधिक उत्तम ठहरता है। हुमायूं के न रहने से शेरशाह का समय बड़ी सुगमता से बीत रहा था। लेकिन उसका राजा मालदेव और पंजाब प्रदेश के विरुद्ध कड़ा युद्ध करना पड़ा और उसने कालिंजर में अपना अमूल्य जीवन खो दिया।

इसके विपरीत हेमू को अनुभूमी अवस्थाओं का सामना करना पड़ा। अफगान सामन्तों में न तो कोई एकता थी और न एकमत। जब कि शेरशाह अफगानों की एक युद्ध-सेना का नेतृत्व कर सका हेमू को एक विषम-सेना लेकर लड़ना पड़ा। शेरशाह के अपने सैनिक अफगानों से जातीय तथा धार्मिक खून के सम्बन्ध के बन्धन थे जबकि हेमू का था न तो राजपूत था और न अफगान अपना मार्ग निर्धारित करने के लिए और उनकी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिए लड़ना पड़ा। उसका एक के बाद दूसरी विजय

प्राप्त होना यह प्रकट करता है कि वह उनके बीच कितना लोक-प्रिय था। अकबर के यश और कीर्ति के कारण जो उसके गाजी बन जाने के पश्चात् प्राप्त की हेमू की सफलताओं को सन्देह धक्का पहुँचा। अकबर के दरबारी लेखकों ने हेमू पर विष उगलने के लिए अपना सम्पूर्ण ज्ञान समाप्त कर दिया था फिर भी अपने सम्राट की प्रशंसा करने के लिए अधिक उत्साह ने उनको ऐसे विवरण लिखने के लिए बाध्य कर दिया जिससे हेमू की ज्योतिर्मयी कीर्ति प्रस्फुटित होती है।

हेमू की पराजय के कल्पनात्मक कारण बताये गए हैं। वह पागलपन के लगभग निरा अभिमानी कहा गया था। उस पर इस्लाम के आदेशों को भंग करने का भी आरोप लगाया गया था। उसे अफगान सामन्तशाही जो उसको त्यागने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे समूल नष्ट करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। लेकिन ये सब आरोप बिना प्रमाण के आधार हीन तथा 'दोषपुक्त' हैं। वास्तविक तथ्य एक प्रसिद्ध-इतिहासकार डा० त्रिपाठी द्वारा एक वाक्य में कहा गया है।

उसकी पराजय के कारण थे—उसकी सशस्त्र सेना का बन्दी बना लिया जाना और वह आकस्मिक तीर जिसने उसे बेहोश कर दिया तथा उसकी सेना में आतंक फैला दिया। उसकी पराजय आकस्मिक थी और अकबर की विजय दैवी थी। यह सच है कि यदि यह दुर्घटना न हुई होती तो मुगल पराजित हुए बिना नहीं रह सकते थे। उनका केवल १ हजार घुड़सवारों का ही अवरोध था जो हेमू की प्रभावशाली सेना के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था और जो ऐक्य स्थापित करने वाली एक ही शक्ति थी जिसमें हेमू के विलक्षण व्यक्तित्व की झलक थी। यह भी सत्य है कि अपने अंतिम आक्रमण के अवसर पर हेमू आवश्यकता से अधिक उत्साहित हो गया था जबकि शत्रु को केवल एक अवरोध समझकर वह आगे बढ़ गया और शीघ्र विजय प्राप्त करने के हेतु अपने अमूल्य जीवन को संकट में डाल दिया। यदि उसने अपने हाथियों को आगे भेज दिया होता और अपने सेना नायकों को पहले आक्रमण करने दिया होता तो वह उन अविचलपूर्ण धनुर्धारियों के घातक संघर्ष से बच जाता जिन्होंने पराक्रम के अन्तिम दाव के रूप में कभी चूकने वाले तीर चलाए थे। लेकिन दैव ने अकबर के भाग्य का साथ दिया और एक ही प्रहार में राजनैतिक शतरंज के मैदान से उसका अकेला प्रभावशाली शत्रु लुप्त हो गया। हेमू के शहीद होने से भारत में मुगलों की प्रभुता स्थापित हुई और अकबर के महानता के शिखर पर पहुँचने के लिए मार्ग खुल गया। जो कुछ भी हुआ या होना था सत्य है कि हेमू ने एक गौरवमय जीवन व्यतीत किया और उसका संक्षिप्त लेकिन घटना पूर्ण अनिश्चित जीवन संसार के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा।

परिशिष्ट—'क'

प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि

धर्म मित्र साधू किशोरी शरण प्राचीन निवासी कानौड़ उर्फ महेन्द्र गढ़ की ओर से सकलपट्ट दीवान बहादुर सर पंडित दया किशन साहब कौंस (के सी ई) (सी. आई ई) प्रधान मंत्री रियासत पटियाला की सेवा में कस्बा कानौड़ की कानूनगोई व जागदार के हक के सम्बन्ध में प्रेषित प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि।

'शुभचिन्तक ८ अप्रैल १९२१' को स्थान पटियाला में पत्र द्वारा राय बहादुर पंडित पुरोहित गोपी नाथ जी एम० ए० (सी० आई० ई०) मंत्री अपपुर मंत्री मंडल से भेंट करके सम्मानित हुआ था तथा उल्लिखित विषय में वैधानिक रूप से प्रार्थनापत्र प्रेषित किया था और उसके समर्थन में एक प्रार्थना पत्र मार्फत जनरल रविन्द्र सभा आगरा से मंत्री से जनवरी १९२२ में भेजा था। श्री नाथ जी ने उस पर पर्याप्त ध्यान देकर कानौड़ की निजामत से सिलसिला मरासलाई की। निवेदन यह है कि यह हक सम्राट अकबर के राज्यारोहण के समय प्रदान हुआ है। जिसका ३६७ साल का समय हुआ। अकबरी रजाआ (फरमान) में ११ हजार प्रति वर्ष अंकित है और उसके साथ अन्य अधिकार भी थे। यह अधिकार अन्य सरकारों के समय में भी जो कानौड़ पर अधिकार पाए हुए थे पाओं का प्राप्त रहे। परन्तु पटियाला शासन के अधिकार पाने पर यह अधिकार कम होकर कुछ वर्षों तक प्राप्त रहा जैसा कि सिलसिले से स्पष्ट होगा। अब निवेदन यह है कि" " यह इमारत पटियाला के कानौड़ स्थित बागी पवन में स्थित पचायती इमारत भागवा के मन्दिर, जिसकी पूजा व भोग इत्यादि के व्यय की सहायतार्थ अब पटियाला सरकार प्रदान करती रही व वैसी ही अन्य पचायती इमारत धर्मशाला जो अवसर में देहरा में स्थित है"""अर्थात अन्य स्थान महात्मा रामचरण दास आचार्य जिनके सहायक महाराज अवसर हैं और जिन्होंने कुछ समय पहिले ही देहरा तक यात्रियों की सुविधा के लिए पक्की सड़क तैयार करा दी है, के निर्माण व पूरा करने हेतु अब भागवा जनरल सभा को प्रदान किया जाय। और भविष्य में वार्षिक जो पहुची रकम में सम्मिलित करके मन्दिर बागी के अतिरिक्त पूजा के व्यय हेतु जारी की जाय। ऐसा करने से श्री सरकार पटियाला का पुण्य बढ़ेगा और

हकदार अपने प्राचीन हक के पाने से वंचित न रहेंगे । द्वितीय आप जैसे प्रतिष्ठित व सम्मानित व धर्मपालक अधिकारी से इस बात की पुष्टि करना है कि आज कल लोग सांसारिक उन्नति की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं और आध्यात्मिक उन्नति को पूर्णतः भुला बैठे हैं और विश्वास भी नहीं करते हैं (कि) महात्मा नवल दास की योगबल से कैसे विशाल स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर बना कर बन्दी से गृह से निकल गए। महात्मा नवल दास जी की इस आध्यात्मिक शक्ति का उल्लेख दो विभिन्न स्थानों पर पूर्व समय का मिलता है—एक हेमू के भतीजे महीपाल की सन्तान जो कानौड में आबाद रही और अब भी है, के कागजात में दूसरे अनन्य रसिक माल पुस्तक जो राधा वल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन के यहाँ है में सम्मिलित है। मानों इस विषय में दोनों एक मत हैं। इन दो लेखों का प्रमाण भी इन दोनों बातों से भली प्रकार सिद्ध है। प्रथम तो अकबर जैसे भाग्य शाली के विषय में मिस्टर गिरट इत्यादि इतिहासकारों ने कुछ वाक्य लिखे हैं।

अतः ऐसे मुगल बादशाह का अपने धर्म अवलम्बियों से निडर होकर राधावल्लभी तिलक मस्तक पर लगाना हाथ में तुलसी की माला गले में तुलसी की कण्ठी और वस्त्र का होना क्या महात्मा नवल दास जी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव नहीं समझा जावेगा विशेष कर ऐसी दशा में जब कि साधारण हिन्दू भी तिलक लगाने में संकोच करते हैं। महान अकबर का वह हुलिया तथा वैष्णवी वेश भूषा असम्भव बातों में से था। राज्य जब अकबर के हाथ में आया और महात्मा नवल दास जी से भेंट हुई तो वह पूरे १४ वर्ष का भी न था। महात्मा नवलदास जी का " देख कर समझ लिया कि इससे बढ़कर और क्या सिफारिश हो सकती है।

अतः अकबर के हृदय पर महात्मा जी के चमत्कार का इतना महान प्रभाव पड़ा कि उसने राधा वल्लभी रूप धारण कर लिया। इस रूप में अकबर के चित्र मारखाम इत्यादि बहुत इतिहासों में दिए हुए हैं। द्वितीय हेमू अकबर का प्राचीन (पुश्तैनी) शत्रु था। अकबर के पिता हुमायूं को शेरशाह ने हिन्दुस्तान से निकाल दिया था और जब हुमायूँ ईरान के शाह से सहायता लेकर हिन्दुस्तान में आया तब उस समय सिकन्दर के राज्य पर ५ भीषण युद्धों का विजेता हेमू ही अधिकार किए हुए था। इसके विषय में अबुल फजल ने लिखा है 'अकबर हर आँखे कि हेमू अज बख्त मुसाइद करदा फरमांरवायान रा दर आंवक्त मैयस्सर न शुद शुद अर्थात वास्तव में हेमू ने सौभाग्य से जिस किसी वस्तु में मिलता की वह उस समय बादशाही को भी प्राप्त न थी'। अतः ऐसी दशा में अकबर के संरक्षक (मनालीक) बैरम खाँ के आदेश से हेमू के अनुयाइयों के साथ जो अन्याय हुआ वह भी इतिहास बतलाता है। इन

सब बातों के होते हुए भी हेमू के मंत्री महीपाल के पुत्र नयनसुख को रानूमगोई का मनसब व ग्यारह हजार रुपया वार्षिक आय की जागीर प्रदान करना क्या महात्मा नवल दास जी की (के) उस चमत्कार का प्रमाणित नहीं करता जैसा कि उन दोनों प्राचीन सेवों से स्पष्ट होता है। महीपाल का नाम तीन विभिन्न सेवा[1] में उल्लिखित है और दो सेवा से हेमू का मंत्री होना प्रमाणित है। असली अकबरी फरमान मौजूद है। उसमें नयनसुख पुत्र महीपाल लिखा है। परन्तु हस्तलिखित पुस्तक में सिकन्दर सिंघि में महीपाल (_____) लिखा था। नकल करने वालों ने परपाल लिख दिया। परपाल कोई नाम ही नहीं। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वृक्ष में मूरसे आमा (सर्वश्रेष्ठ पुरुष) महीपाल लिखा है। _____ कागजात स्वयं उपस्थित होकर आप का दिखा दिए जायेंगे। चूंकि धर्म मित्र पल्लीवाल सरकार की प्रजा में से महीपाल के वंश के हैं और पिता जयपुर में _____ हुए। अतः दोनों रियासतों का हृदय व जान से धुम चिन्तक प्रार्थना करता है। यहाँ भी एक प्रार्थना पत्र रियासत जयपुर के अधिकारियों की सेवा में कृपा कर प्रस्तुत की गई। उसमें यहाँ के महात्माओं की शक्तियों व चमत्कारों का धुम चिन्तक होने के प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया गया। एक प्रति उसकी भी आपके अवलोकनार्थ संलग्न है। इति।

१—सन १५५९ ई० के लिये सम्राट अकबर के दान-पत्र में महिपाल छूसर लिखा हुआ है।

परिशिष्ट—ख

हेमचन्द्र विक्रमादित्य विषयक

श्री राहुल सांकृत्यायन की खोज[1] व उसकी समीक्षा

१—बेरुखाह हरयादि के विषय में ..... ।

× × ×

२— 'प्राचीन काल से ही व्यापारियों के सार्थ (कारवाँ) और देशों की तरह मारवाड़ में भी चलते थे। कितने ही सार्थवाह उस समय लखपती करोड़पती थे। माल से भरी उनकी गाड़ियाँ हमारे देश की नदियों और समुद्रों में चलती थीं। जहाँ नाव की सुविधा नहीं थी वहाँ स्थल-मार्ग पर व्यापारी बैलगाड़ियों और बैलों पर माल लादे एक जगह से दूसरी जगह उन्हें बेचने जाते थे। कम्पनी के राज्य में भी बलिया के रौनियार सार्थवाह बैलों पर कपड़े लादकर नैपाल की राजधानी काठमाण्डू पहुँचते थे। साधारण सार्थवाह की गाड़ियाँ साधारण होती थीं। कितने ही रौनियार माड़ा (सादी) का मूसा कोरा या रँगा कपड़ा नैपाल ले जाते। सन् १८५० से कुछ साल पहले उनका बहुत सा माल बिका नहीं। माल लौटा लाना उनके लिए घाटे की चीज थी इसलिए वह उसे बेचने के लिए वहीं रह गये। आज भी उनके वंशज काठमाण्डू में रहते हैं। श्री शिवप्रसाद जी रौनियार उनके मुखिया हैं। विवाह सम्बन्ध ये बिहार या उत्तर प्रदेश के रौनियारों में करते हैं नहीं तो वह वैसे ही नैपाली हैं जैसे दूसरे।

रौनियार पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के सार्थवाह हैं। शिव प्रसाद के पूर्वजों की तरह उनमें कुछ हजार पूँजीवाले भी व्यापारी थे और दूसरे लाखों के स्वामी भी जिनकी कोठियाँ कटक और समुद्र के किनारे ही और बन्दरों में भी। अपने प्रदेश के बड़े-बड़े शहरों में भी उनका कारबार होता था। सार्थवाह का काम वे लोग नहीं कर सकते थे जिन्हें कि हम आजकल बनिया समझने के आदी हैं। सार्थ को जिन राज्यों में से गुजरना पड़ता था उनमें सभी अपने यहाँ शान्ति स्थापित करने में समर्थ नहीं थे। जहाँ समर्थ शासक थे वहाँ सार्थवाह भेंट पूजा देकर अपना काम बनाते थे। जहाँ अशान्ति थी वहाँ अपनी

१—सरस्वती मासिक पत्रिका में प्रकाशित लेख—मई १९२१ पृ० सं० १०९—१११।

रक्षा का भार वे खुद अपने ऊपर लेते थे। इसके लिए वे सैकड़ों और कभी हजारों की संख्या में चलते थे। उनके पास तलवार भाले तीर धनुष ही नहीं बल्कि उस समय का सबसे अत्याधुनिक हथियार पलीतेदार बन्दूकें भी होती थीं। नरम कलेजे वालों का सार्थ में गुजर नहीं था। इसलिए बैलों पर लादने बैल गाड़ियों को चलाने के लिए वही जवान लिये जाते जो मौका पड़ने पर सिपाही बन जाते। भोजपुरियों में सिपाहीपन की स्वाभाविक आदत थी।

सहसराम का एक ऐसा ही रौनियार सार्थवाह था जो अपने प्रदेश में धन-धैर्यमय उदारता और बहादुरी के लिए ख्याति रखता था। मामूली शासक नहीं बल्कि अपने-अपने इलाकों के प्रभु भी उसकी इज्जत करते और समय समय पर वह सार्थवाह अपने धन से उन्हें मदद करके अनुगृहीत भी करता। यदि घरमाह राजा होते हुए भी फावड़ा भाँज सकता था तो कराइपठी सार्थवाह भी साधारण बैल हाँकनेवाले अपने आदमी के सभी कामों को करने के लिए तैयार था। उसने अपनी जवानी में यह किया था और चाहता था कि उसका लड़का भी इसे अच्छी तरह सीखे। इतने भारी कारबार के लिए विद्या पढ़ना बहुत आवश्यक है। सार्थवाह ने अपने लड़के को उसे भी सिखलाया था और कई बार समुद्र (चट्टग्राम) की ओर जानेवाले बड़े सार्थों के और कितनी ही बार स्थल की बैलगाड़ियों के साथों के साथ भी भेजा था। लड़का न एक बार अपनी विद्या-बुद्धि से अपने पिता को प्रसन्न किया था तो दूसरी ओर अपनी बहादुरी को उसने कई बार डाकुओं के सामने दिखलाया था। इस लड़के का नाम हेमचन्द्र था जिसे प्यार से लोग हेमू भी कहा करते थे।

१—इधर पिता के स्थान को हेमचन्द्र ने सँभाला और उधर शेरशाह भारत के छत्रपति बनने के प्रयत्न में दूर तक भाग बढ़ चुका था और उसने सहसराम को अपनी राजधानी बनाया था। शेर खाँ मुगियों का पारखी था और हमेशा उनको कोष सिखलाने की फिक्र में रहता था। हेमचन्द्र कैसे उनकी नजर से ओझल हो सकता था? उसने बुलाकर हेमचन्द्र को अपना काज विभाग सौंप दिया। वह यह जानता था कि हेमचन्द्र में किसी भोजपुरी से कम बुद्धि की कमी की निपुणता नहीं है। पर राज्य के लिए कोष सेना से कम आवश्यक नहीं था। हेमचन्द्र ने कोष का इतनी योग्यता से प्रबन्ध किया कि शेरशाह की बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में भी वह कभी खाली नहीं हुआ। हुमायूँ का पीछा करते हुए शेरशाह कन्नौज दिल्ली और राजस्थान के रेगिस्तानों तक पहुँचा। वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि उसके सैनिकों का एक महीने का वेतन अगले महीने मिले। और हेमचन्द्र कुबेर भण्डारी थे। कोष क्यों कभी खाली होने लगा।

अपनी कार्यक्षमता के साथ साथ हेमचन्द्र शेरशाह का बहुत विश्वासपात्र

भी था। वह शेरशाह की सभी सफलताओं को अपनी ही सफलता समझता था। शेरशाह मुसलमान था और हेमचन्द्र हिन्दू, लेकिन दोनों अपने को एक देश और आदर्श की सन्तान मानते थे। शेरशाह ने जिस तरह दिल खोलकर हिन्दुओं को आगे बढ़ाया था और सदियों से चले आते भेद भाव को अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था, उसके कारण सभी हिन्दू शेरशाह के भक्त हो गए थे भोजपुरी तो उसे अपने ही जैसा भोजपुरी मानते थे इसलिए उसके साथ विशेष आत्मीयता रखते थे। यदि कम्पनी की सेना के साथ-साथ भोजपुरी सिपाही कलकत्ता से पेशावर तक पहुँचे थे तो इस काम से उन्होंने चार सौ वर्ष पहले शेरशाह के समय को ही दोहराया था।

१५१५ ई० में शेर खाँ शेरशाह का नाम धारण कर गौड़ में तख्त पर बैठा। १५४० ई० में हुमायूँ भारत छोड़ कर भागा। हुमायूँ के भागने के थोड़े ही दिनों बाद शेरशाह बंगाल से सिंध तक का बादशाह बन गया। वहाँ उसका शासन हुआ वहाँ खुशहाली और शान्ति व्यवस्था के स्थापित होने में देर नहीं हुई। उसमें काफी हाथ हेमचन्द्र का भी था। शेरशाह को पाँच ही साल भारत का अधिराज रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिंजर में अकस्मात् बारूद में आग लगने से शेरशाह को प्राण खोना पड़ा। उसके दिल्ली नहीं अपना सहसराम प्यारा था यह सभी जानते थे। इसलिए उसे वहीं लाकर दफनाया गया। आज भी तालाब के बीच में अपने विशाल मकबरे के भीतर वह बहादुर सो रहा है जिसने अकबर का पथ प्रदर्शन किया। कुछ बातों में यदि अकबर बड़ा था तो कितनी ही बातों में शेरशाह भी।

शेरशाह के मरने के बाद उसका पुत्र इस्लाम शाह गद्दी पर बैठा। उसके नौ वर्ष (१५४५-५४ ई०) के शासन में शेरशाह की शासन-व्यवस्था चलती रही और किसी हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं रहा। योग्यता का ध्यान करना प्रजा को सुख देना शासन का ध्येय था। इस सारे काम में हेमचन्द्र को और भी अपना कौशल दिखलाने का मौका मिला। पहले शेरशाह की छाया में होने के कारण वह उतना प्रकाशमान नहीं दीखता था अब वह शासन का सबसे बड़ा स्तम्भ था। सूबे की व्यवस्था में ही नहीं बल्कि सामरिक गुप्त-चर में भी वह असाधारण समझा जाता था। हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था। इस्लामशाह अपने पिता के इस योग्य सामात्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखता।

\+ \+ \+

४—इस्लामशाह के मरने के बाद घर में फूट पड़ गई। उसके नाबालिग पुत्र को मारकर शेरशाह के भतीजे आदिल शाह ने गद्दी हथियाली। हेमचन्द्र को यह पसन्द नहीं आया लेकिन कुछ करना संभव नहीं था। पठानों के आपसी

झगड़े से जो कमजोरी भीतर पैदा हुई उससे वह और भी चिन्तित था। हेमचन्द्र की योग्यता को देखकर आदिलशाह ने उसे अपना वजीर और सेनापति बनाया। घर में पठानों ने आग लगा दी थी इसलिए हेमचन्द्र का पहले बिहार को सँभालना था। आखिर वहीं की सेना सूरी वंश की सेना का मुख्य अंग थी। दिल्ली में हेमचन्द्र के न रहने पर वह अरक्षित हो गई और हुमायूँ ने आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इसके छः ही महीने बाद (१५५५ ई) ? हुमायूँ पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर दिल्ली में मरगया और उसके १३ वर्ष के पुत्र अकबर को बैरम खाँ की अभिभावकी में गद्दी सँभालनी पड़ी। हेमू अपने वीरों की सेना लेकर दिल्ली की तरफ दौड़ा और मुगलों को भागने में ही खैरियत मालूम हुई।

हेमचन्द्र को मालूम था कि जिस बड़े के लिए वह लड़ रहा है वह अब इस योग्य नहीं है कि इस बड़े भार को अपने कन्धे पर उठा सके। सभी सूरी नहीं बल्कि सभी पठान बादशाह बनने के लिए तुले हुए थे। ऐसी स्थिति में सेना का विश्वास किया जा सकता था। उसने सेना नायकों और सैनिकों में प्यार दिया और हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से १५५५ ई ? दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। पियौरा और जयचन्द के समय खोया सिंहासन को फिर हेमचन्द्र के रूप में हिन्दू शासक मिला। अब भी मुगल शक्ति का उच्छेद नहीं हुआ था। यदि पठानों में शेरशाह के समय की एकता होती तो हेमचन्द्र को यह कदम न उठाना पड़ता। पठान भी उस पर विश्वास रखने में इसलिए उसके झण्डे के नीचे लड़ने (के) लिये तैयार थे। हेमचन्द्र ने मुगलों की सेना को हार पर हार दी थी। तुगलकाबाद में हेमू की सफलता साधारण नहीं थी। लेखक के अनुसार बड़े-बड़े अस्त्रोंसे लदी तोपखानेदार अफगान और पंख के भारी सामान यमनूतों पठानों और मेवातियों की ५० हजार जबर्दस्त फौज एक हजार हाथी, ५१ दुर्भेद्यसंरक्षक तोपें ५०० पट्टनास और ईरनास जम्बूरक उसके साथ थे। यह विशाल सेना अपने स्थान से चली और रास्ते के मुगल हाकिम को रौंदती हुई दिल्ली पहुँच गई।

आखिरी फैसला पानीपत के मैदान में हुआ जहाँ अकबर का सेनापति खानेजमा अली कुली खाँ सीस्तानी अपनी फौज लिये खड़ा था। इस युद्ध के बारे में सम्भूम उसेमा मौलाना आजाद ने अपनी 'दरबार अकबरी' में लिखा है—"हेमू अपने हवाई नामक हाथी पर सवार हो सेना के मध्य को सँभालने खड़ा फौज को लड़ा रहा था। अन्त में मैदान का रंग-ढंग देखकर उसने हाथी हूल दिये। काले पहाड़ों ने अपनी जगह से हरकत की और काली घटा के साथ अकबरी लश्करवार पीछे हटे। भागे लेकिन अपने हाथ-हवास के साथ। काले पानी की बाढ़ को उन्होंने रास्ता दिया। लड़ते-भिड़ते हटते

चले गये। लड़ाई के समय सेना का रख और नदी का बहाव एक सा होता है, जिधर को फिर गया। उधर चला जाता है। घनु के हाथियों की पाँती बाद शाही फौज के एक पार्श्व को रेलती हो गई। खानेजमां अपनी जगह खड़ा था, और सेनापति की दूरबीन से चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा कि काली आंधी जो सामने से उठी बराबर को निकल गई। अब हेमू की सेना के मध्य को सिमे खड़ा था। एकाएक सेना को ललकार कर हमला किया। घनु हाथियों के घेरे में था उसके चारों ओर बहादुर पठानों का मुंड था। उसने फिर भी घेरे को ही ऐसा तर्क तीरों की बौछार करते हुए बढ़े। उधर से हाथी तलवार सूंड में फिराते और जंजीरें झुलाते आगे आये। हाथियों के हमले को होसले और हिम्मत से रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़ा। जब देखा कि बाढ़े हाथियों से भिड़ते हैं तो कूद पड़े और तलवारें खींचकर घनु की पांतियों में घुस गये। उन्होंने तीरों की बौछार से काल राक्षसों के मुंह फेर दिये और काले पहाड़ों को मिट्टी का ढेर सा बनादिया। अद्भुत घमासान रण पड़ा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक है। वह तराजू बाट को उठाने वाला खास पचाती का खाने वाला हौदे के बीच में सब सिर खड़ा था। सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।"" जीत और हार भगवान के हाथ में है।

आदीखान पठान जो हेमू के सरदारों की नाक था कटकर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना समाज के बालों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारों के नाम ले-लेकर पुकारता था कि समेटकर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतने में एक मौत का तीर उसकी आंख में लगकर आर पार हो गया उसने अपने हाथ से तीर खींच कर निकाला और आंख पर रूमाल बांध लिया मगर घाव से इतना बेहोश और बेकरार हुआ कि हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई। सब तितर-बितर हो गये।

पानीपत का मैदान अकबर के हाथ में रहा। खानेजमां ने मुगल सल्तनत की हिन्दुस्तान में नींव रखदी। मुकर्रम मुहर्रम महीने की दूसरी तारीख हिजरी सन ९६४ (५ नवम्बर १५५६ ई) का पानीपत का इस भारत के भाग्य के निपटारे की तारीख है।

सेना भग गई। तुर्कों ने हाथी को घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे। उन्हें अकबर के सामने ले आया गया। किसी सवाल का जवाब देना हेमचन्द्र ने अपनी शान के खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस यही हो सकता था कि युद्ध क्षेत्र से मैं जिन्दा क्यों लाया गया। बैरमखां ने अकबर से कहा कि अपने हाथ से इस काफिर को मारकर गाजी की पदवी धारण कीजिए। अकबर ने बैरमखां के ऊपर तलवार उठाने से इन्कार कर दिया। यदि अकबर

अभी १४ वर्ष का छोकरा न होगा और उसका ज्ञान और तजुर्बा परिपक्व होगा तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र का वह अपनी तरक्की करने की कोशिश करता और हेमू अकबर के नौरत्नों में होता।

हेमचन्द्र को मुसलमान इतिहास कारों ने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना आजाद ने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आज कल अपने को भार्गव ब्राह्मण कहते हैं। अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहास कार हेमचन्द्र के जन्मस्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारों ने उन्हें परिषम का ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के रौनियार वैश्यों में दूसरी ही परम्परा पाई जाती है जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है। उनके कथन के अनुसार हेमचन्द्र रौनियार थे। सहसराम के आसपास के ही रहने वाले थे और अपनी योग्यता से इतने ऊँचे पद पर पहुँच थे। श्री राममोहन सरन 'बिहारी' स्वयं रौनियार हैं। उन्होंने लेखक को बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं। मैंने उनसे उन गीतों का संग्रह करने के लिए कहा। ऐसे महत्व पूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ बूढ़ी ही रह गई हैं। जो दिन पर दिन खतम हो रही हैं। हेमचन्द्र का भोजपुरी भाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिए भी मालूम होता है कि शेरशाह की प्रभुता का आरंभ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेर शाह और उनके वंशजों का यहाँ के लोगों का अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभाविक था। हेमचन्द्र दाल-रोटी खाने वाले बनिये नहीं थे। रौनियार आज भी मांस मछली के प्रेमी हैं, और जैसा पहले कहा गया है सार्थवाह होने के कारण उनमें एक सैनिक की हिम्मत थी। भोजपुरी इलाके का हो हरएक जाति का व्यक्ति साफी और हिम्मत का धनी होता है।

चले गये। लड़ाई के समय सेना का रुख और नदी का बहाव एक सा होता है, जिधर को फिर गया। उधर चला जाता है। शत्रु के हाथियों की पाँती बाद शाही फौज के एक पार्श्व को रेलती हो गई। जानेजमाँ अपनी जगह खड़ा था, और सेनापति की दूरबीन से चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा कि काली आँधी आ सामने से उठी बराबर को निकल गई। अब हेमू की सेना के मध्य का सिये खड़ा था। एकाएक सेना को सत्कार कर हमला किया। शत्रु हाथियों के घेरे में था उसके चारों ओर बहादुर पठानों का झंड था। उसने फिर भी घेरे को ही रेला तर्क तीरों की बौछार करते हुए बढ़े। उधर से हाथी सवार सूंडें में फिराते और चंघाड़ें सुनाते आगे आये। हाथियों के हमले का हौसले और हिम्मत से रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियों से बिदकते हैं, तो कूद पड़े और तलवारें लेकर शत्रु की पाँतियों में घुस गये। उन्होंने तीरों की बौछार से काले राक्षसों के मुंह फेर दिये और काले पहाड़ों का मिट्टी का ढेर सा बनादिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक है। वह तराजू बाट का उठाने वाला दांत चपाती का खाने वाला हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा था। सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।"""" जीत और हार भगवान के हाथ में है।

बादीखान पठान जो हेमू के तरवारों की नाक का कटकर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाथ के दानों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारों के नाम ले-लेकर पुकारता था कि समेटकर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतने में एक मौत का तीर उसकी आँख में लगकर आर पार हो गया उसने अपने हाथ से तीर खींच-कर निकाला और आँख पर रूमाल बाँध लिया मगर बाण से इतना बेहोश और बेकरार हुआ कि हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई। सब तितर-बितर हो गये।

पानीपत का मैदान अकबर के हाथ में रहा। जानेजमा ने मुगल सल्तनत की हिन्दुस्तान में नींव रखदी। शुक्रवार मुहर्रम महीने की दूसरी तारीख हिजरी सन ९६४ (५ नवम्बर १५५६ ई०) का पानीपत का इस भारत के भाग्य के निपटारे की तारीख है।

सेना भग गई। तुर्कों ने हाथी को घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे। उन्हें अकबर के सामने ले जाया गया। किसी सवाल का अवाब देना हेमचन्द्र ने अपनी शान के खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस यही हो सकता था कि पूरा खेल ये मैं जिन्दा क्यों यहां आया। बैरमखाँ ने अकबर से कहा कि अपने हाथ से इस काफिर को मारकर गाजी की पदवी धारण कीजिए। अकबर ने मरणासन्न के ऊपर तलवार उठाने से इन्कार कर दिया। यदि अकबर

अभी १४ वर्ष का छोकरा न होता और उसका ज्ञान और तजुर्बा परिपक्व होता तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र को वह अपनी तरफ करने की कोशिश करता और हमू अकबर के नौरत्नों में होते।

हेमचन्द्र को मुसलमान इतिहास कारों ने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना आजाद ने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आज कल अपने को मार्गव क्षत्रिय कहते हैं। अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहास कार हेमचन्द्र के जन्मस्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारों ने उन्हें पश्चिम का ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के रौनियार वैश्यों में दूसरी ही परम्परा पाई जाती है जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है। उनके कथन के अनुसार हेमचन्द्र रौनियार थे। सहसराम के आसपास के ही रहने वाले थे, और अपनी योग्यता से इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे। श्री रामलोचन शरण 'बिहारी' स्वयं रौनियार हैं। उन्होंने सबक को बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं। मैंने उनसे उन गीतों को जमा करने के लिए कहा। ऐसे महत्व पूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ बूढ़ा ही रह गई हैं। जो दिन पर दिन कम हो रही हैं। हेमचन्द्र का भोजपुरी भाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिए भी मालूम होता है कि शेरशाह की प्रभुता का आरंभ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेर शाह और उनके वंशजों का यहाँ के लोगों को अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभाविक था। हेमचन्द्र बाप-बपौती खान आसे बनिये नहीं थे। रौनियार आज भी माँस मछली के प्रेमी हैं, और जैसा पहले कहा गया है, सार्थवाह होने के कारण उनमें एक सैनिक की हिम्मत थी। भोजपुरी इलाके का तो हरएक जाति का लड़का लाठी और हिम्मत का धनी होता है।

समीक्षा

श्री राहुल जी को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सभी जानते हैं परन्तु इतिहास अन्वेषण में योग देने का श्री राहुल जी का हेमू विषयक लेख सम्भवतः पहला प्रयास है। इसको पढ़कर प्रतीत होता है कि राहुल जी प्रचलित लोक गीतों के आधार पर तथा कुछ व्यक्तियों के कथनों के अनुसार इस निश्चय पर पहुँच गए हैं कि हेमू अथवा हेमचन्द्र रौलियार थे और सहसराम के आसपास के ही रहनेवाले थे। राहुल जी का यह कथन कि अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहासकार हेमचन्द्र के जन्म स्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते यह ठीक नहीं है। अकबर के समकालीन इतिहासकार व लेखकों ने स्पष्टतः हेमू को रिवाड़ी का निवासी बताया है।

(२) राहुल जी ने शेरशाह व हेमू को समकालीन एवं सहकर्मी बताया है, और शेरशाह की विजयों में हेमचन्द्र का भी काफी हाथ बताया है। परन्तु इसकी पुष्टि तथ्यों से नहीं होती। मुगल तथा अफगान इतिहासकारों ने एक-मत से यह कहा है कि सर्वप्रथम हेमू इस्लामशाह के शासन काल में बाजार अधीक्षक के रूप में नियुक्त हुआ था। यदि राहुल जी का कथन स्वीकार करके यह मान लिया जाये कि हेमू शेरशाह के साथ सेना सचालन में भाग ले रहा था तो उसकी मृत्यु के पश्चात् वह केवल बाजार-अधीक्षक का पद स्वीकार नहीं करता।

(३) राहुल जी का यह कथन कि इस्लामशाह के शासन-काल में 'हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था'—भी सत्य नहीं मालूम पड़ता। यह परिस्थिति तो आदिलशाह अथवा अरबी के शासन-काल में उत्पन्न हुई थी जब कि अफगान सामन्त तीन विभिन्न दलों में विभाजित होगए थे।

(४) हेमचन्द्र का सर्वप्रथम कार्य क्षेत्र पश्चिम में ही रहा—इस्लाम शाह की राजधानी का केन्द्र ग्वालियर था न कि सहसराम। बिहार क्षेत्र में हेमू केवल अरबी के चुनार में स्थापित हो जाने के पश्चात् सम्मान पाये। इस क्षेत्र में ही हेमू ने अपनी सैनिक दक्षता व अपूर्व वीरता का परिचय दिया जिसके फल स्वरूप उसे विक्रमादित्य की उपाधि प्रदान की गई। चुनार के भीषण युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् बंगाल व बिहार में हेमू की धाक जम गई। हेमू ने इस क्षेत्र को अरबी के लिए सुरक्षित जान कर वहीं रहने

की प्रार्थना की। स्वयं हेमू ने पूर्व में कलींजियों का पीछा किया व पश्चिम में काली तक धावा मारा। अबुलफजल द्वारा वीर्णत २२ यद्धों में हेमू ने अधिकतर युद्ध पश्चिमी क्षेत्र में ही लड़े। हेमू का ध्यान सदैव पश्चिमी क्षेत्रों के प्रमुख शक्ति के केन्द्रों—आगरा काली ग्वालियर तथा दिल्ली की ओर रहता था।

(५) दिल्ली व पानीपत के युद्धों के विस्तृत वर्णनों से स्पष्टत भाव होता है कि हेमू की सेना में सम्भल (आधुनिक मुरादाबाद जिले में) के शादी खाँ व अलवर के हाजी खाँ थे। दिल्ली में विजय भी प्राप्त करने में अलवर के हाजी खाँ का सबसे बड़ा हाथ था। पानीपत के युद्ध में भी शादीखाँ ने प्रमुख भाग लिया। इसके अतिरिक्त हेमू के भानजे रमैया भगवानदास व सग्रामखाँ का उल्लेख है। इनमें से कोई भी बिहार क्षेत्र का नहीं था।

(६) हेमू के सेनानायक शादी खाँ व भगवानदास की मृत्यु हेमू के आहत हो जाने के पश्चात् घमासान युद्ध में हुई थी न कि उसके पहले। हेमू की *आँख में तीर लगने के समय तक सेना अथवा सेना नायक भी युद्ध में तत्पर थे।*

(७) राहुल जी ने अपने लेख में बताया है कि श्री राम मोहन शरण "बिहारी" जो स्वयं रोमियार है, उन्होंने बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विवाह समयों में हेमू के गीत गाती हैं ऐसे महत्वपूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ बूढ़ा ही रह गई है। ऐसे गीतों का प्रचलन कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। क्यों कि हेमू ने इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम अपनी अद्भुत सैनिक प्रतिभा दिखलाई थी व इस क्षेत्र के निवासियों को अफगानों के शासन कुछ वर्षों के लिए शान्ति व संरक्षण प्रदान किया था, तो वहाँ के निवासी अवश्य ही उनके गुणगान करेंगे व करते रहेंगे।

(८) उपरोक्त विषयों पर विचार विनिमय करने से राहुल जी के निर्णय तक पहुँचने के लिए कोई अवलम्ब नहीं मिलता। दूसरी ओर प्रस्तुत पुस्तक में दिये गए अबुल फजल अलबदाऊँनी निजामुद्दीन फिरिश्ता आदि के कथनों से स्पष्ट हो जायेगा कि पानीपत के युद्ध में भाग लेने वाले हेमू का मुख्य कार्य क्षेत्र पश्चिमी क्षेत्र था न कि बिहार, तथा उनका जन्मस्थान अलवर प्रदेश में था न कि बिहार में। स्वयं शेरशाह मुख्यत "साकिन ए कस्बा सासौल" था न कि सहसराम का निवासी यद्यपि शेरशाह का प्रधान कार्य क्षेत्र बिहार ही बन गया था। अस्तु श्रीराहुल जी द्वारा प्रदत्त सामग्री को ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि न होने के कारण उनपर पृथक ही प्रकाश डाला जा सकता है। पाठक गण स्वयं ही उसका मूल्य आँक सकते हैं।

सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

DR. RAM KUMAR VARMA
M. A., Ph. D,

'Saket Phone No. 811
Hindi Vibhag

Ex-Hindi Professor Moscow (USSR.) Vishwavidyalaya Prayag

3. 8. 1958.

I have read the treatise HEMU AND HIS TIMES with great interest. It is divided into ten chapters and has a correct historical background. The matter has been gathered from authentic sources and an attempt has been made to make a coherent assessment of the historical events and personalities. The writer has discovered new facts and a co-relation has been established between reasons and realities. He has the capacity for the critical judgment and his conclusions are founded on rationalism and logic.

One fact must be brought into notice. The details of Hemu's biography are missing. The psychological background of Hemu's character and the gradual stages which switched him off from trade into politics should have been gathered and presented with authentic accuracy. For this, recourse should be made into persian records or the writings of the followers of Swami Hit Hari Vansh. Further research into realm of Hemu's mental make-up will improve the book which is a lasting contribution to an important chapter of history.

University of Allahabad,
ALLAHABAD

Sd/-RAM KUMAR VARMA
Head of Hindi Department

सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

DR. RAM KUMAR VARMA, M. A. Ph. D.,
Saket Phone No. 2816.
Hindi Vibhag

Ex Hindi Professor Moscow (USSR.) Vishwavidyalaya, Prayag

3 8. 1959

I have read the treatise HEMU AND HIS TIMES with great interest. It is divided into ten chapters and has a correct historical background. The matter has been gathered from authentic sources and an attempt has been made to make a coherent assessment of the historical events and personalities. The writer has discovered new facts and a co-relation has been established between reasons and realities. He has the capacity for the critical judgment and his conclusions are founded on rationalism and logic.

One fact must be brought into notice. The details of Hemu s biography are missing The psychological background of Hemu s character and the gradual stages which switched him off from trade into politics should have been gathered and presented with authentic accuracy For this, recourse should be made into persian records or the writings of the followers of Swami Hit Hari Vansh. Further research into realm of Hemu s mental make-up will improve the book which is a lasting contribution to an important chapter of history

University of Allahabad,
ALLAHABAD

Sd/ RAM KUMAR VARMA
Head of Hindi Department.